Bachelor of Arts (Sanskrit)

बैचलर ऑफ आर्ट्स (संस्कृत)

प्रथम सेमेस्टर

ABILITY ENHANCEMENT COURSE (AECC-S-101)

संस्कृत भाषा एवं साहित्य

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी-263139

Toll Free : 1800 180 4025
Operator : 05946-286000
Admissions : 05946-286002
Book Distribution Unit : 05946-286001
Exam Section : 05946-286022
Fax : 05946-264232
Website : http://uou.ac.in

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति **AECC-S-101**

कुलपति (अध्यक्ष)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
प्रोफेसर ब्रजेश कुमार पाण्डेय,
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन केंद्र,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रोफेसर गिरीश चन्द्र पन्त,
संस्कृत विभागाध्यक्ष, जामिया मिल्लिया
इस्लामिया विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
प्रोफेसर जया तिवारी,
संस्कृत विभागाध्यक्षा, कुमाऊँ विश्वविद्यालय,
नैनीताल

प्रोफेसर रेनू प्रकाश (संयोजक)
निदेशक, मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
डॉ0 देवेश कुमार मिश्र,
एसो0 प्रोफे0, इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय मुक्त
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
डॉ0 नीरज कुमार जोशी,
असि0 प्रोफे0-ए.सी.,संस्कृत विभाग
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

मुख्य सम्पादक	**पाठ्यक्रम समन्वयक एवं सह सम्पादक**
डॉ0 देवेश कुमार मिश्र	**डॉ0 नीरज कुमार जोशी**
एसो0 प्रोफे0, इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय मुक्त	असि0 प्रोफे0 ए.सी.,संस्कृत विभाग
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन	**खण्ड एवं इकाई संख्या**
डॉ0 नीरज कुमार जोशी	प्रथम खण्ड (सम्पूर्ण)
असि0 प्रोफे0 ए.सी.,संस्कृत विभाग	द्वितीय खण्ड (इकाई 1)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी	तृतीय खण्ड (इकाई 2 एवं 3)
प्रोफे0 ब्रजेश कुमार पाण्डेय	द्वितीय खण्ड (इकाई 2 एवं 3)
संस्कृत एवं प्राच्य विद्या अध्ययन केंद्र, जेएनयू, नई दिल्ली	
डॉ0 देवेश कुमार मिश्र	तृतीय खण्ड (इकाई 1)
एसो0 प्रोफे0, इन्दिरा गान्धी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	

प्रकाशक: (उ0 मु0 वि0, हल्द्वानी) -263139
कॉपीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
पुस्तक का शीर्षक- संस्कृत भाषा एवं साहित्य (AECC-S-101)
प्रकाशन वर्ष : 2023
ISBN No.
मुद्रक:

नोट :- इस अध्ययन सामग्री का प्रकाशन छात्र हित में शीघ्रता के कारण किया गया है। सम्पादित संस्करण का प्रकाशन अगले वर्ष सम्भव है । इस सामाग्री का उपयोग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित प्रशासनिक अनुमति के बिना अन्यत्र कहीं नहीं किया जा सकता।

अनुक्रम

खण्ड- एक (Section-A) संस्कृत भाषा का स्वरूप एवं लिपि ज्ञान	**पृष्ठ संख्या 01-04**
इकाई-1 भाषा का अर्थ एवं प्रकृति	05 से 17
इकाई-2 संस्कृत वाक्य एवं पद रचना	18 से 31
इकाई-3 वर्णोच्चारण प्रक्रिया एवं प्रकार	32 से 40
इकाई-4 कारक एवं विभक्ति : कर्ता-कर्म एवं क्रिया परिचय	41 से 51
इकाई-5 संख्या परिचय	52 से 62
इकाई-6 सरल वाक्य निर्माण प्रक्रिया	63 से 77
खण्ड- दो (Section-B) छन्द एवं अलंकार	**पृष्ठ संख्या 78**
इकाई-1 छन्द : लक्षण एवं प्रमुख छन्दों का परिचय	79 से 85
इकाई-2 अलंकार : लक्षण एवं प्रमुख शब्दालंकारों का परिचय	86 से 100
इकाई-3 प्रमुख अर्थालंकारों का परिचय	101 से124
खण्ड- तीन (Section-C) संस्कृत साहित्य का स्वरूप	**पृष्ठ संख्या 125**
इकाई-1 संस्कृत साहित्य का सामान्य परिचय : भाग-1	126 से 155
इकाई-2 संस्कृत साहित्य का सामान्य परिचय : भाग-2	156 से 187
इकाई-3 चाणक्यनीति परिचय एवं प्रतिपाद्य विषय	188 से 195

खण्ड- एक (Section-A)
संस्कृत भाषा का स्वरूप एवं लिपि ज्ञान

इकाई-1 भाषा का अर्थ एवं प्रकृति

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 भाषा का अर्थ एवं महत्त्व
1.4 भाषा की परिभाषा
1.5 भाषा की प्रकृति
1.6 भाषा का उद्गम
1.7 भाषा का विकास
1.8 सारांश
1.9 शब्दावली
1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.12 उपयोगी पुस्तकें
1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

भाषा ही वह दिव्य ज्योति है, जो सम्पूर्ण संसार को एकसूत्र में बाँधने की शक्ति रखती है। जो परस्पर एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करती है, भाषा रूपी दिव्य ज्योति से अज्ञान रूपी अंधकार को दूर किया जाता है। भाषा के विषय में कहा गया है कि भाषा सतत् गत्वर एवं प्रवाहमान है।

भाषा क्या है ? आंखिर मनुष्य को इसकी आवश्यकता क्यों हुई ? प्रस्तुत इकाई में भिन्न-भिन्न विद्वानों के द्वारा भाषा की परिभाषाओं व उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है, साथ ही साथ भाषा की उत्पत्ति व उसके विकास को भी आप समझ सकेंगे।

भाषा की उत्पत्ति को लेकर तो विद्वानों में कई मतभेद है। कुछ विद्वानों ने तो भाषा की उत्पत्ति के सिद्धान्त को ही भाषा विज्ञान के क्षेत्र से बाहर माना है। इस इकाई में आप भाषा की उत्पत्ति का अध्ययन विविध मतों के आधार पर कर सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- भाषा विज्ञान से सम्बन्धित विषय का अध्ययन करेंगे।
- भाषा के अर्थ को समझ सकेंगे।
- भाषा की परिभाषा से परिचित होंगे।
- भाषा की प्रकृति का वर्णन कर सकेंगे।
- भाषा की उत्पत्ति व उसके विकास के कारणों की व्याख्या कर सकेंगे।

1. 3 भाषा का अर्थ एवं महत्त्व

भाषा शब्द संस्कृत के भाष् धातु से बना है जिसका तात्पर्य स्पष्ट वाणी, मनुष्य की वाणी, बोलना या कहना है। भाषा का अर्थ सिर्फ बोलने से नहीं है बल्कि जो मनुष्य बोलता है उसके एक खास अर्थ से है। भाषा शब्द का प्रयोग पशु- पक्षियों की बोली के लिए भी होता है। इंगित को भी भाषा कहा जाता है, सिर, आँख, हाथ आदि को हिलाने आदि से भी कई अर्थों की अभिव्यक्ति की जाती है जिस प्रकार सिर नीचे करने हाँ और सिर को दाँये- बाँये हिलाने आदि से नहीं अर्थ प्रकट किया जाता है। देखा जाय तो अंगों के द्वारा किया गया अभिनय इंगित भाषा कहलाता है। सामान्य रूप से देखा जाय तो सभी प्राणी ध्वनि संकेतों में ही बोलते हैं। केवल मनुष्य के मुख से निकली ध्वनि जिसका एक खास अर्थ होता है, यही भाषा है, अध्ययन का विषय भी वही है। मनुष्य आपस में जो विचार विमर्श करते हैं उसका साधन केवल भाषा ही है, सभी प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम केवल भाषा ही है। देखा जाय तो संकुचित अर्थ में भाषा का अर्थ सिर्फ मनुष्य की भाषा से है। पाणिनीय शिक्षा के अनुसार मौखिक भाषा उत्कृष्ट व लिखित भाषा निकृष्ट के अन्तर्गत आती है। भाषा विज्ञान में जिस भाषा को ग्रहण किया गया है। वह केवल मानवीय भाषा ही है।

1.4 भाषा की परिभाषा

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक प्राणी होने के कारण वह आपस में अपने विचार व्यक्त करने पड़ते हैं, वह कभी शब्दों या वाक्यों के द्वारा अपने विचारों को प्रकट करता है

तो कभी वह संकेतों के द्वारा अपने विचारों को प्रकट करता है। वक्ता जो बोलता और श्रोता जो सुनकर भावों को ग्रहण करता है वही भाषा है। सामान्य रूप से देखा जाय तो भाषा वह साधन है जिसके माध्यम से हम सोचते हैं तथा अपने विचारों को व्यक्त करते हैं। जो बोला व सुना जाता है उसे भाषा कहते हैं।

भाषा विज्ञान के अन्तर्गत केवल स्पष्ट रूप से बोलने वाले मनुष्यों की वाणी ही आती है। भाषा शब्द का प्रयोग सामान्य रूप से अपने व्यापक अर्थ में किया जाता है। इसमें बोलने वाला भी भाषा बोलता है, सुनने वाला भी भाषा सुनता है और बोध भी भाषा रूप में होता है। देखा जाय तो एकान्त में रहने वाला व्यक्ति भी किसी भाषा का प्रयोग करता है, और एक सुविख्यात व्यक्ति भी किसी विशेष भाषा का प्रयोग करता है। विद्वानों ने भाषा की परिभाषा इस प्रकार दी है-पाणिनी के अष्टाध्यायी के महाभाष्य में महर्षि पतंजलि ने भाषा की परिभाषा इस प्रकार दी है-**'व्यक्तां वचि वर्णा येषां त इमे व्यक्तवाचः।'** यहां वर्णात्मक वाणी को ही भाषा कहा गया है।

डॉ0 मंगलदेव शास्त्री के अनुसार— भाषा मनुष्यों की चेष्टा या व्यापार को कहते हैं, जिससे मनुष्य अपने उच्चारणोपयोगी शरीरावयवों से उच्चारण किए गए वर्णात्मक या व्यक्त शब्दों के द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते हैं। मंगलदेव शास्त्री की परिभाषा में अर्थयुक्तता एवं प्रतीकात्मकता के निर्देश का अभाव है।

डॉ0 श्यामसुन्दर के अनुसार— मनुष्य और मनुष्य के बीच वस्तुओं के विषय में अपनी इच्छा और मति का आदान-प्रदान करने के लिए व्यक्त ध्वनि संकेतों का जो व्यवहार होता है उसे भाषा कहते हैं।

भोलानाथ तिवारी के अनुसार— "भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चरित मूलतः प्रायः यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा किसी भाषा-समाज के लोग आपस में विचारों का - आदान-प्रदान करते हैं।''

डॉ0 बाबूराम सक्सेना के अनुसार— जिन ध्वनि-चिह्नों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार-विनिमय करता है। उसकी समष्टि को भाषा कहते हैं। डॉ0 बाबूराम सक्सेना ने उच्चारण अवयवों का उल्लेख नहीं किया है।

मैक्समूलर के अनुसार— भाषा और कुछ नहीं है केवल मानव की चतुर बुद्धि द्वारा आविष्कृत ऐसा उपाय है जिसकी मदद से हम अपने विचार सरलता और तत्परता से दूसरों पर प्रकट कर सकते हैं और चाहते हैं कि इसकी व्याख्या प्रकृति की उपज के रूप में मनुष्य कृत पदार्थ के रूप में करना उचित है।

स्वीट के अनुसार—ध्वन्यात्मक शब्दों द्वारा विचारों को प्रकट करना ही भाषा है। संघटनात्मक रूप से देखा जाय तो भाषा-शास्त्रियों ने भाषा की परिभाषा इस प्रकार दी है- "भाषा यादृच्छिक वाचिक ध्वनि संकेतों की वह पद्धति है, जिसके द्वारा मानव परस्पर विचारों का आदान-प्रदान करता है।'' यदि हम इस परिभाषा को देखें तो इसमें चार बातों पर ध्यान दिया गया है।

प्लेटो के अनुसार— "विचार आत्मा की मूक बातचीत है पर वही जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है तो उसे भाषा की संज्ञा देते हैं।''

1- **भाषा एक पद्धति है**—

भाषा एक सुव्यवस्थित योजना है। जिसके अन्तर्गत कर्ता, कर्म, क्रिया आदि व्यवस्थित रूप से आ सकते हैं, इसमें वक्ता जो कुछ भी कहता है श्रोता वही समझता है। इसमें पद रचना के कुछ वाक्य

रचना के कुछ नियम हैं, जिनका पालन करना अनिवार्य है। तृतीया एकवचन में न् का ण् किन शब्दों में होगा, किन शब्दों में नहीं होगा, और किन शब्दों में तृतीया के एकवचन में आ लगेगा और कहां पर ना लगेगा, भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से कुछ विश्लेषण किया जाता है।

2- **भाषा संकेतात्मक है—**

किसी भी भाषा में जो ध्वनियां आती हैं, उनका किसी वस्तु या कार्य से सम्बन्ध होता है कोई भी ध्वनि किसी भाषा में किसी एक वस्तु का बोध कराती है। केवल हमें इस तथ्य पर ध्यान देना है कि भाषा की ध्वनियां केवल संकेतात्मक हैं।

3- **भाषा वाचिक ध्वनि संकेत है—**

मानव अपनी वागिन्द्रिय के द्वारा जिन संकेतों का उच्चारण करता है, केवल वे ही भाषा के अन्तर्गत आते हैं, वाचिक ध्वनि संकेत सूक्ष्म से सूक्ष्म, मूर्त और अमूर्त, निर्वचनीय और अनिर्वचनीय, दृश्य-अदृश्य सभी प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति में पूर्ण रूप से समर्थ है, देखा जाय तो ध्वनियों की एक विशिष्ट प्रकिया है, जिसका सूक्ष्म विश्लेषण सम्भव है।

4- भाषा यादृच्छिक संकेत है—

यादृच्छिक का अर्थ है, जैसी इच्छा या इच्छा के अनुसार भिन्न-भिन्न भाषाओं के अध्ययन से यह पूर्णतया स्पष्ट होता है कि किसी भी भाषा में जिन ध्वनि संकेतों का उपयोग किया जाता है, वे पूर्ण रूप से यादृच्छिक (ऐच्छक) है। यदि हम सामान्य रूप से बालक की भाषा-शिक्षण को ध्यान में रखकर विचार करें तो हमें यह ज्ञात होता है कि बालक अपने माता-पिता व सम्बन्धियों के द्वारा कहे गये ध्वनि संकेतों का अनुकरण करता है, वह इसका विवेचन नहीं करता है कि गाय को गाय और घोड़े को घोड़ा क्यों कहते हैं ।

1.5 भाषा की प्रकृति

इससे पूर्व के पृष्ठों में आप भाषा की परिभाषाओं से परिचित हुए, अब आप भाषा की कुछ प्रमुख प्रकृतिओं का अध्ययन करेंगे।

1-भाषा अर्जित सम्पत्ति— भाषा मनुष्य को जन्म से नहीं आती है । समाज या वातावरण से मनुष्य भाषा सीखता है।योग्यता के अनुसार ही मनुष्य बचपन में भाषा को अर्जित करता है।जिस प्रकार भेड़िये के साथ रहने वाला बच्चा वातावरण के अभाव के कारण मनुष्य की भाषा नहीं सीख पाता वहीं दूसरी ओर वह भेड़िये की भाषा को सीखता है । भाषा सीखी व अर्जित की जाती है, इसलिए यह अर्जित सम्पत्ति है।

2- भाषा पैतृक सम्पत्ति नहीं है—

मनुष्य को भाषा जन्म के साथ नहीं मिलती है।भाषा सीखनी पड़ती है, अर्जित की जाती है। लोगों का मानना है कि भाषा पैतृक सम्पत्ति की भाँति अनासाय ही प्राप्त हो जाती है यह कथन पूर्णतः गलत है।जिस प्रकारयदि कोई बच्चा बचपन से ही विदेश में रहेगा तो वह हिन्दी को न बोल सकेगा न ही समझ सकेगा विदेशी भाषा ही उसकी मातृभाषा होगी। यदि भाषा पैतृक सम्पत्ति होती तो बच्चा विदेशमें रहकर भी हिन्दी भाषा सीख व बोल लेता ।

3-भाषा सामाजिक वस्तु है—

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है समाज से ही वह अपने समस्त क्रिया कलापों को सीखता है। उसी प्रकार भाषा भी समाज से सीखता है। भाषा पूर्ण रूपेण आदि से अंत तक समाज से सम्बन्धित है।

भाषा के द्वारा ही हम सोचते विचारते हैं। देखा जाय तो जितनी विकसित भाषा होगी उतना ही विकसित वहां का समाज होगा। अतः भाषा एक सामाजिक वस्तु है।

4-भाषा सर्वव्यापक है—

मनुष्य के प्रत्येक कार्यों का संचालन भाषा के द्वारा ही होता है। व्यक्ति का व्यक्ति से व व्यक्ति का समाज से सम्बन्ध भाषा के ही द्वारा स्थापित होता है। चिन्तन मनन और सामाजिक कार्यों के लिए मनुष्य भाषा का ही सहारा लेता है। आचार्य भर्तृहरि के अनुसार सभी लौकिक कार्यों का आधार भाषा को ही माना गया है। अपने वाक्यपदीय नामक ग्रंथ में उन्हांने स्पष्ट किया है- **"इतिकर्तव्यता लोके सर्वा शब्दव्यपाश्रया"**

5- भाषा मानव की अक्षय निधि है—

मानव मात्र का अक्षय कोष भाषा ही है। भाषा ही मानव की पूँजी है। सृष्टि के प्रारम्भ से लेकर मानव ने जो कुछ देखा, सोचा व अनुभव किया, वही पूँजी के रूप में विद्यमान है यही बहुमूल्य निधि है।

6- भाषा चिरपरिवर्तनशील है—

सामान्य रूप से देखा जाय तो भाषा अनुकरण के द्वारा सीखी जाती है। भाषा का अनुकरण ही मौखिक रूप है। उसका लिखित रूप ही मौखिक पर आधारित है।देखा जाय तो मौखिक भाषा स्वंय अनुकरण पर आधारित है। दो मनुष्यों की भाषा में समानता नहीं पायी जाती है, मनुष्य अनुकरण प्राणी होने के कारण भी पूर्ण रूप से अनुकरण की कला में निपुण नहीं है।यही अनुकरण ही भाषा में परिवर्तन लाती है। परिवर्तन ही सृष्टि का नियम है अतः भाषा परिवर्तशील है।

7- भाषा की एक भौगोलिक सीमा होती है—

प्रत्येक भाषा की एक भौगोलिक सीमा होती है। भाषा में थोड़ा अन्तर स्थान भेद से होता है। भाषा का वास्तविक क्षेत्र उसकी सीमा के भीतर ही होता है।जिस प्रकार अवधी, भोजपुरी व्रज हिन्दी के अर्न्तगत आते हैं, वहीं दूसरी ओर मराठी, बंगला व गुजराती आदि भाषाएं हिन्दी से अलग हैं। इस प्रकार से यदि देखा जाय तो सबकी अपनी-अपनी भौगोलिक सीमा है।

8- भाषा का कोई अन्तिम स्वरूप नहीं है—

भाषा निरन्तर गत्वर एवं प्रवाहमान है, इसलिए इसका अन्तिम रूप नहीं हो सकता। जिस प्रकार समस्त वस्तुएं परिवर्तित होती हैं उसी प्रकार भाषा भी परिवर्तित होती रहती है। मृत शरीर की भाँति मृत भाषा का अन्तिम स्वरूप हो सकता है पर जीवित भाषा का नहीं।

1.6 भाषा का उद्गम

स्वभावतः देखा जाय तो सबसे पहला प्रश्न यह उठता है कि भाषा की उत्पत्ति कैसे हुई ? यह विषय अत्यन्त उलझा हुआ है, और इस विषय पर प्राचीन काल से ही विचार होता आया है, लेकिन वे अपूर्ण और अनिर्णयात्मक है।

भाषा की उत्पत्ति लाखों वर्ष पूर्व हो चुकी थी, इस पर केवल अनुमान ही किया जा सकता है। 1866 ई0 में पेरिस में भाषा विज्ञान की एक समिति की स्थापना हुई थी। उन्होंने अपने अधिनियम में यह निर्देश दिया है कि यहां भाषा की उत्पत्ति और विश्वभाषा-निर्माण इन दो बातों पर विचार नहीं किया है, भाषा की उत्पत्ति के दो सिद्धान्त प्रमुख हैं—

1-प्रत्यक्ष मार्ग

2- परोक्ष मार्ग

प्रत्यक्ष मार्ग में भाषा की उत्पत्ति के मुख्य बिन्दुओं के आधार को पकड़ने का प्रयास किया जाता है। इसके विपरीत परोक्ष मार्ग में भाषा के वर्तमान रूप से भूतकालिक रूप का सर्वेक्षण किया जाता है।भाषा की उत्पत्ति को कुछ विद्वान भाषा-विज्ञान का विषय मानते ही नहीं हैं। भाषा की उत्पत्ति के जितने भी सिद्धान्त विद्वानों ने दिये हैं वे पूर्णरूपेण तर्क संगत नहीं है। इस अध्याय में हम भाषा की उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्तों का विवेचन करेंगे-

दिव्योत्पत्ति सिद्धान्त—

भाषा की उत्पत्ति का यह सबसे प्राचीन मत है। जिस प्रकार परमपिता ब्रह्मा ने मानव सृष्टि की उसी प्रकार मानव को अपने भावों की अभिव्यक्ति करने के लिए एक परिष्कृत भाषा भी दी, संस्कृत भाषा ईश्वर द्वारा प्रदत्त है। देवी शक्ति ने ही इस सृष्टि के प्रारम्भ में हमें वेदों का ज्ञान प्रदान किया। मूल भाषा के रूप में वैदिक संस्कृत भाषा प्राप्त हुई, संस्कृत भाषा व उसके व्याकरण के मूल आधार पाणिनि के 14 सूत्र शिव के डमरू से निकले। वेद, उपनिषद, स्मृतियों और दर्शन ग्रंथों में वेदों की उत्पत्ति ईश्वर से हुई इस विषय में प्रमाण प्राप्त है- **देवी वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पश्वो वदन्ति। (ऋग्वेद 8-10)**

संस्कृत वाग्देवी भाषा को देवों ने ही उत्पन्न किया है और उसे सभी प्राणी बोलते हैं।नृत्तावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवप´चवारम्। इस मंत्र में भी भाषा की दैवी उत्पत्ति का स्पष्ट उल्लेख है, अ इ उ ण् आदि 14 महेश्वर सूत्रों की उत्पत्ति शिव के डमरू से मानी जाती है यह भी दैवी उत्पत्ति का सूचक है । संस्कृत भाषा को ईश्वर कृत होने के कारण विश्व की सभी भाषाओं को इसका मूल मानते हैं । बौद्ध, पाली को मूल भाषा मानते रहे हैं। जैनों के अनुसार अर्धमागधी केवल मनुष्यों की ही भाषा नहीं है बल्कि सभी जीवों की मूल भाषा है। ईसाइयों ने प्राचीन विधान की हिबूरभाषा व मुसलमानों ने अरबी को आदिभाषा घोषित किया है, जर्मन विद्वान सुसमिल्श भाषा की दैवी उत्पत्ति के सिद्धान्त के विषय में कहते हैं कि 'भाषा मानवकृत नहीं है, अपितु परमात्मा से साक्षात् उपहार रूप में प्राप्त हुई है। जर्मनी जर्मन भाषा को आदि भाषा एव देव भाषा कहते हैं।

संकेत—

सिद्धान्त-संकेत सिद्धान्त को निर्णय-सिद्धान्त आदि नामों से भी जाना जाता है ।संकेत सिद्धान्त के प्रवर्तक 18वीं शती के प्रसिद्ध फ्रेंच विचारक रूसो है,इनके अनुसार प्रारम्भ में मानव पशुओं के समान सिर हिलाने आदि आंगिक संकेतों से अपने भावों को व्यक्त करता था ।धीरे-धीरे इन संकेतों से काम नहीं चला तत्पश्चात् एक सभा की और नामों को निर्धारित किया गया, देखा जाय तो यह एक सामाजिक समझौता है ।इसके पश्चात् ध्वन्यात्मक संकेतों की उत्पत्ति हुई। भामह के काव्यालंकार में प्रस्तुत है-

इयन्त ईदृशा वर्णा ईदृगर्थाभिधायिनः।
व्यवहाराय लोकस्य प्रागित्थं समयः कृतः।। (काव्यालंकार6-13)

धातु सिद्धान्त—

इस सिद्धान्त को रणन सिद्धान्त, अनुरणात्मक अनुकरण,अनुकरण सिद्धान्त, डिंग-डांग वाद आदि नामों से जाना जाता है।इस सिद्धान्त के प्रवर्तक प्लेटो थे। जर्मन प्रोफेसर हेज ने इसे व्यवस्थित कर आगे बढ़ाया। मैक्समूलर ने पहले तो इस सिद्धान्त को अपनी पुस्तक में स्थान दिया

किन्तु बाद में निरर्थक कहकर छोड़ दिया। इस सिद्धान्त के अनुसार संसार की हर चीज में अपनी एक ध्वनि होती है।यह विशेष ध्वनि ही उसकी विशेषता होती है।टिन,लोहा,लकड़ीव काँच आदि पर हम चोट मारते हैं तो एक विशेष ध्वनि(नाद) निकलती है इसे रणन कहा जाता है।रणन सिद्धान्त के आधार पर ही लोहा,लकड़ी,टिन व काँच आदि में अन्तर किया जाता है।जिस प्रकार नदी कल-कल या नद-नद ध्वनि करती है तो उसी के आधार पर रित उसका नाम नदी रखा गया।इसी प्रकार से यदि देखा जाय तो 400-500 मूल शब्दों या धातुओं का निर्माण किया गया।

ध्वन्यानुकरण सिद्धान्त—

इस सिद्धान्त को अनुरणनमूलकतावाद, अनुकरण-सिद्धान्त सामान्यतहः अंग्रेजी में कुत्ते की ध्वनि को इवू.वू बाउ-वाउ कहते हैं देखा जाय तो हिन्दी में यह भों-भों वाद हुआ ।वास्तव में इस सिद्धान्त का मूल नाम 'ओनोमेटोपोइक थ्योरी' है जिसका अर्थ है ध्वन्यनुकरण सिद्धान्त। प्रो0 मैक्समूलर ने इस सिद्धान्त को उपहासास्पद बताया। इस सिद्धान्त के अनुसार पशु-पक्षियों आदि की ध्वनि के अनुकरण अलग-अलग वस्तुओं के नाम रखे गये हैं जो वस्तु जैसी ध्वनि करती है उसका वैसा ही नाम पड़ता है। जैसे-कू-कू से कोयल, काँव-काँव से कौवा और काक, पट्-पट् से पटाखा, झर-झर से झरना आदि है।ध्वनि साम्य के आधार पर भाषा में कुछ शब्द मिलते हैं ।जैसे-गुर्राना, मिमियाना, थपथपाना, रंभाना, खटखटाना, पट-पट, खट-खट, झम-झम आदि। संस्कृत में नद-नद के आधार पर ही नद या नदी आदि शब्द हैं। इसी प्रकार पत् धातु के आधार पर पत् ध्वनि गिरना है।

आवेग-सिद्धान्त—

यह सिद्धान्त को मनोभावाभिव्यक्तिवाद, मनोरागव्यंजक, मनोरागव्यंजक शब्दमूलकतावाद, पूह-पूहवाद आदिनामों से जाना जाता है। आवेग सिद्धान्त के अनुसार सृष्टि के प्रारम्भ में मानव विचार-प्रधान प्राणी न होकर पशुओं की भाँति भाव प्रधान था। मनुष्य ने अपने दुःख, हर्ष, शोक, विस्मय आदि भावों को प्रकट करने के लिए शब्दों या ध्वनियों का उच्चारण किया। धीरे-धीरे इन्हीं शब्दों से भाषा बन गई। हर्ष या खुशी में अहो, वाह आदि, शोक या दुःख में आह, हाय, रे, क्रोध में आः आदि शब्द हैं। अंग्रेजी में मनोभावसूचक चववी (पूह) पिम (फाई) वी (ओह) आदि शब्द हैं। धीरे-धीरे इन्हीं शब्दों से भाषा का विकास हुआ।

श्रम-ध्वनि-सिद्धान्त—

इस सिद्धान्त को यो-हे-हो सिद्धान्त या श्रम-परिहरणमूलकतावाद सिद्धान्त भी कहते हैं। न्यारे नामक भाषा शास्त्री इस सिद्धान्त के जन्मदाता हैं। उनके अनुसार जब मनुष्य शारीरिक परिश्रम करता है तो उसकी सांस तेजी से बढ़ जाती है। मांसपेशियों में ही नहीं बल्कि स्वरतंत्रियों में भी संकोच-विस्तार बढ़ जाता है, इस कारण कुछ ध्वनियां अचानक निकल जाती हैं जिस कारण परिश्रम करने वाले को कुछ आराम का अनुभव होता है। जिस प्रकार धोबी कपड़े धोते समय 'हियो' या 'छियो' कहता है। मल्लाह थकान के कारण यो-हे-हो कहते हैं।

इंगित-सिद्धान्त—

डॉ0 राये इस सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं। इसके पश्चात् डार्विन ने छह असम्बद्ध भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर इस सिद्धान्त को प्रमाणित किया। प्रो0 रिचर्ड ने 1930 में इस सिद्धान्त को पुनः अपनी पुस्तक में मौखिक इंगित सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत किया। इस मत के

अनुसार मनुष्य ने अपनी आंगिक अर्थात् अंगों की चेष्टाओं का वाणी के द्वारा अनुकरण किया और
उसी से भाषा बनी।

संपर्क सिद्धान्त—

इस मत के प्रर्वतक जी0 रेवेज नामक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक हैं। इस मत के अनुसार मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है उसमें एक दूसरे के प्रति पारस्परिक संपर्क की प्रवृत्ति जन्म से ही होती है। देखा जाय तो जब मनुष्य एक दूसरे से संपर्क करेंगे तो इसी आधार पर समाज बनता है।और उनमें प्रारम्भिक भावनाओं को जैसे भूख-प्यास आदि को एक दूसरे पर अभिव्यक्त करने के लिए तरह-तरह के सम्पर्क स्थापित किये जाते थे और साथ ही साथ मुखोच्चरित ध्वनियाँ भी सहायक रही होंगी भाषा उसी का विकसित रूप है। जैसे-जैसे संपर्क की आवश्यकता बढ़ती गई वैसे-वैसे उसकी स्पष्टता का अनुभव और ध्वनि का विकास भी होता गया।

सम्पर्क ध्वनि का विकास संसूचक ध्वनि से होता है। इसके अर्न्तगत चिल्लाना, पुकारना आदि सम्मिलित हैं। धीरे-धीरे जैसे-जैसे विचारों के स्तर पर सम्पर्क बढ़ता गया वैसे-वैसे भाषा भी विकसित हुई। जिस प्रकार 'माँ' का अर्थ माँ दूध दो या पानी दो आदि। इस प्रकार देखा जाय तो क्रिया पहले आयी और संज्ञा बाद में व व्याकरणिक दृष्टि से ये शब्द न होकर वाक्य होंगे,तत्पश्चात् विकास होने पर कई प्रकार के शब्दों को मिलाकर छोटे-छोटे वाक्य बने व निरन्तर संपर्क बढ़ने से भाषा का विकास हुआ।

संगीत सिद्धान्त—

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक डार्विन, स्पेंसर व येस्पर्सन हैं।इस सिद्धान्त के अनुसार मानव के संगीत से भाषा की उत्पत्ति हुई। यह सिद्धान्त प्रेम सिद्धान्त के नाम से भी जाना जाता है।सम्भवतः यह रहा होगा कि आदिम मनुष्य अत्यधिक भावुक व संगीत प्रिय रहा होगा, वह अपने खाली समय में कुछ गुनगुनाता रहा होगा। उसी गुनगुनाने से जो ध्वनियाँ बनीं उसी से भाषा की उत्पत्ति है।

टा-टा सिद्धान्त—

प्रारम्भ में जब आदिम मानव काम करते थे तो उस समय वे जाने अनजाने उच्चारण अवयवों से काम करने वाले अवयवों की गति का अनुकरण करते थे। बाद में इस अनुकरण से कुछ ध्वनियों और ध्वनि संयोगों से शब्दों का उच्चारण हो जाया करता था।

3-प्रारम्भिक निरर्थक ध्वनियों से भाषा का विकास कैसे हुआ इसका कहीं भी उत्तर नहीं दिया गया है।

समन्वय सिद्धान्त—

इस सिद्धान्त के प्रवर्तक व समर्थक हेनरी स्वीट नामक भाषा शास्त्री हैं।उन्होंने कोई नया सिद्धान्त प्रस्तुत न करके सर्वसिद्धान्त संकलन को अधिक उपर्युक्त समझा है। भाषा का प्रारम्भ अनुरणनात्मक, भावाभिव्यंजक और प्रतीक शब्दों एवं उपचार सिद्धान्त के समन्वित रूप से हुआ। प्रोफेसर स्वीट ने तीन प्रकार के शब्दों को तीन भागों में बाँटा है।

पहले प्रकार के शब्द अनुकरणात्मक हैं। जैसे-बिल्ली म्याऊँ-म्याऊँ, कौवा का-का व कोयल कु-कू शब्द करती है। दूसरे प्रकार के शब्द भावाभिव्यंजक या मनोभावाभिव्यंजक है। जैसे-ओह, हा्, धिक्, हाय आदि शब्द हैं। तीसरे प्रकार के शब्द प्रतीकात्मक हैं जैसे नर्सरी शब्द माता,पिता,भाई-बहन आदि शब्द हैं। भाषा में प्रारम्भिक शब्दों की संख्या बहुत अधिक रही होगी।

इस प्रकार यदि देखा जाय तो स्वीट के अनुसार भावाभिव्यंजक, अनुकरणात्मक तथा प्रतीकात्मक शब्दों से भाषा की उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् उपचार प्रयोग से शब्दों का विकास हुआ।

बोध प्रश्नः-

1- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजियेः-

(क) मनुष्य को भाषा.....के साथ नहीं मिलती है।

(ख) भाषा की उत्पत्ति.....वर्ष पूर्व हो चुकी थी।

(ग) भाषा का वास्तविक क्षेत्र उसकी..... के भीतर ही होता है।

(घ) भाषा निरन्तर गत्वर एवं.....है।

2-निम्न प्रश्नों के उत्तर लिखिए-

(1) भाषा की उत्पत्ति का सबसे प्राचीनतम सिद्धान्त है।

(क) संकेत सिद्धान्त (ग) दिव्योत्पत्ति सिद्धान्त

(ख) धातु सिद्धान्त (घ) आवेग सिद्धान्त

(2) समन्वय सिद्धान्त के प्रवर्तक कौन हैं?

(क) डार्विन (ग) स्पेंसर

(ख) हेनरी स्वीट (घ) डॉ0 राये

1.7 भाषा का विकास

परिवर्तन सृष्टि का नियम है क्योंकि संसार की प्रत्येक वस्तु में परिवर्तन है। देखा जाय तो इसी परिवर्तन को विकास कहते हैं, क्योंकि परिवर्तन से ही जीवन में चेतना है।मनुष्य जिस प्रकार पुराने वस्त्र को पुराने शरीर के समान त्यागकर नये वस्त्र के समान नये शरीर को धारण करता है उसी प्रकार भाषा में भी परिवर्तन होता है जैसे प्राचीन समय की वैदिक संस्कृत अपने पुराने रूप को त्यागकर लौकिक संस्कृत में परिवर्तित हो गयी और फिर शनैः-शनै पाली प्राकृत, अपभ्रंश और वर्तमान समय में हिन्दी भाषा के रूप में प्रस्तुत हुई है। विभिन्न भाषाओं के अध्ययन के पश्चात देखा जाय तो काल-भेद, स्थान-भेद और परिस्थिति भेद से भी भाषा में भिन्नता देखी गयी है। यदि हम देखें तो भाषा के विकास के विषय में प्राचीन समय से ही विचार होता रहा है संस्कृत में जिन शब्दशास्त्रियों ने इस विषय में विचार किया है उनमें आचार्य पाणिनि,यास्क पतंजलि, कात्यायन, काशिकाकार, जयादित्य वामन नागेश भट्ट हैं। वर्तमान समय में भी अनेक विद्वानों ने विशद विवेचन किया है। भाषा में विकास को हम दो भागों में बांट सकते हैं। **1. आभ्यन्तर या आन्तरिक , 2. बाह्य या बाहरी, आभ्यन्तर कारण** वे हैं जिनका सम्बन्ध भाषा की स्वाभाविक गति से है। बाह्य कारण वे हैं जो भाषा को बाहर से प्रभावित करते हैं इस इकाई में हम दोनों का अलग-अलग वर्णन करेंगे-

(क) आभ्यन्तर कारण—

1- अपूर्ण श्रवण- भाषा अर्जित सम्पत्ति है भाषा अपने पूर्वजों से,शिक्षकों से एवं समाज से सीखी जाती है। एक बच्चा अपने माता-पिता से भाषा सीखता है सीखने की प्रक्रिया में तीन बातें होती हैं।

1- सुनना 2- स्मरण रखना 3- पुनः उच्चारण। इसमें कितनी ही ध्वनियाँ इस प्रकार की होती हैं जो पहली बार सुनने पर हमें स्पष्ट नहीं सुनायी पड़ती है कि उनकी मात्रा ह्रस्व है या दीर्घ, व है या ब,श

है या स अनेक बार उच्चारण करने से ही शब्द स्पष्ट सुनाई देता है। यदि बच्चे से सुनने में अशुद्धि होती है तो वह उसका उच्चारण भी अशुद्ध ही करता है इसी प्रकार भाषा में अशुद्धियाँ हो गयी।

2- बल-बोलते समय किसी खास शब्द या ध्वनि पर विशेष बल दिया जाता है और किसी पर कम जिस कारण से वह अन्य ध्वनियों को कमजोर बना देता है। वे बातें बार-बार दोहरायी जाती है और वे जोर से बोली जाती हैं। इस कारण से बलाघात वाली ध्वनि अधिक प्रबल हो जाती है और उसके आगे-पीछे की ध्वनि निर्बल व कमजोर हो जाती है। इस कारण भी भाषा में विकास या परिवर्तन होता है।

3- अनुकरण की अपूर्णता-अपूर्ण अनुकरण भाषा में परिवर्तन का मुख्य कारण है। मनुष्य अनुकरण से ही भाषा का अर्जन करता है।अनुकरण पूर्ण है तो शब्दों का उच्चारण ठीक होगा। देखा जाय तो अधिकांशतः अनुकरण अपूर्ण ही होता है जैसे बच्चा बचपन में अपने माता पिता आदि के द्वारा उच्चारित शब्दों को सुनकर अनुकरण से बोलता है यदि बच्चे का उच्चारण स्पष्ट नही होता है तो उसे बार-बार उच्चारित करके ठीक कराया जाता है अनुकरण की अपूर्णता के कई कारण है-

(क) वागिन्द्रिय की विभिन्नता- प्रत्येक मनुष्य ध्वानि का उच्चारण अगों के सहारे करता है किन्तु प्रत्येक मनुष्य की वागिन्द्रिय एक समान नही होती है। प्रायः यह देखा गया है कि स्त्रियों और पुरूषों के उच्चारण में अन्तर होता है केवल इतना ही नहीं बच्चे, युवा व वृद्ध व्यक्ति के उच्चारण में बहुत विभिन्नता होती है। किसी की ध्वनि मोटी, किसी की पतली व किसी की बेसुरी होती है। आचार्य पाणिनी के अनुसार वर्णों को दबाकर नहीं बोलना चाहिए। ध्वनि कितनी स्पष्ट है यह वागयन्त्र पर निर्भर है।

(ख) अशिक्षा- अशिक्षा के अभाव में अनुकरण अपूर्ण रह जाता है शिक्षा के अभाव के कारण अधिकाशं ग्रामीण जन अशिक्षित हैं जिस कारण वे ध्वनियों का शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाते हैं इस कारण उच्चारण दोषयुक्त होता है और भाषा में परिवर्तन हो जाता है। ष को स, श को स, ब को व, व को ब एवं ण को न आदि उच्चारण किया जाता है। जैसे कक्षा को कच्छा, छात्र को क्षात्र, क्षत्रिय को छत्रिय,गुण का गुन, सगुण का सगुन, रिपोर्ट का रपट, गार्ड का गारद आदि शब्द हैं।

(ग) लिपि की अपूर्णता-यदि देखा जाय तो प्रत्येक भाषा में कुछ विशिष्ट ध्वनियां हैं जिनका स्पष्ट लेखन अन्य भाषा में सम्भव नही हैं, जिस प्रकार संस्कृत की ट वर्ग ध्वनियां, अंग्रेजी (z),अरबी की काकल्य ध्वनियां, जर्मन, फ्रेंच और रूसी ध्वनियाँ दूसरी भाषा में ठीक नहीं लिखी जा सकती हैं। देखा जाय तो विभिन्न संस्कृतियों के मिलने पर मूल भाषा की ध्वनियों में बहुत अन्तर आता है।

(घ) प्रयत्न लाघव- प्रयत्न लाघव भाषा में विकास लाने वाले कारणों में सबसे महत्वपूर्ण है। मानव की हमेशा से यह प्रवृत्ति रही है कि वह कम प्रयत्न से अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करना चाहता है। कम से कम प्रयत्न से लोग शब्दों को उच्चरित करना चाहते हैं।देखा जाय तो यदि लघुमार्ग से काम चल जाय तो वहाँ पर अधिक प्रयत्न क्यों किया जाय? प्रयत्न लाघव को 'मुखसुख' भी कहते हैं। मुखसुख का अर्थ है सरलता की प्रवृत्ति के कारण बड़े शब्दों को छोटा करके बोलना। जैसे मास्टर साहब का मास्साब, स्कूल का इस्कूल, स्नान का अस्नान, भारतवर्ष का भारत, बीबी जी का बीजी, आदि सरल शब्द के द्वारा बोलने का प्रयास है

4- जानबूझकर परिवर्तन- कभी-कभी भाषा में लेखक जानबूझकर भी परिवर्तन कर देते हैं। जिस प्रकार प्रसाद ने अलैक्जैंडर का अलक्षेन्द्र किया लेकिन यह परिवर्तन स्वाभाविक नही है। जैसे-

संस्कृत में साहित्यकारों ने इसी प्रकार देशज तथा विदेशी शब्दों का संस्कृतिकरण किया है जैसे अरबी में आफियून का अहिफेन आदि। उपयुक्त शब्द न मिलने पर कभी-कभी लोग जानबूझकर उससे मिलते नये शब्द का नये अर्थ में प्रयोग कर देते हैं इस प्रकार से भाषा में परिवर्तन हो जाता है।

5- प्रयोगाधिक्य- अत्यधिक प्रयोग के कारण जिस प्रकार वस्तुएं घिस जाती हैं भाषा में भी उसी प्रकार

(ख) बाह्य कारण—

1- भौगोलिक प्रभाव- भाषा पर सबसे अधिक प्रभाव भूगोल या जलवायु का पड़ता है। भाषा के परिवर्तन में जर्मन भाषा शास्त्री हाइनरिश मेयर बेन्फी और कोलित्स ने भौगोलिक प्रभाव को विशेष महत्व दिया है। जर्मन भाषाशास्त्री के अनुसार वर्ण-परिवर्तन का कारण भौगोलिक परिस्थितियां हैं। जलवायु का मनुष्य के जीवन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। मैदानी व उपजाऊ भूमि पर देखा जाय तो भाषा का प्रचार प्रसार अधिक होता है क्योंकि वहां जनसंख्या अधिक होती है जिस कारण लोगों को एक दूसर से मिलने का अवसर मिलता है। अधिक जनसंख्या के कारण विभिन्न जातियां मिलती हैं जिस कारण भाषा परिवर्तन सरलता से होता है मैदानी भागों की अपेक्षा पर्वतीय और दुर्गम स्थानों में भाषा में परिवर्तन व उसका प्रसार कम होता है।

मूल भाषा से वैदिक संस्कृत और अवेस्ता भाषाओं की उत्पत्ति हुई। देखा जाय तो भौगोलिक भेद के

कारण दोनों ही ध्वनियों में अन्तर हो गया। संस्कृत में स् अवेस्ता में ह् हो जाता है जिस प्रकार सिन्धु का हिन्दु,असि का अहि। भौगोलित भेद के कारण ही मूल भाषा से उत्पन्न होने के कारण भी गुजराती,मराठी, पंजाबी आदि पृथक्-पृथक् है। पतंजलि के अनुसार स्थान भेद से भाषा में अन्तर हो जाता है।

2- सांस्कृतिक प्रभाव- संस्कृति समाज का अभिन्न अंग व समाज का जीवन है अतः इस कारण भाषा पर उसका प्रभाव पड़ता है सांस्कृतिक प्रभाव भी कई कारणों से हो सकता है जिसका वर्णन हम करेंगे-

(क) सांस्कृतिक संस्थाएँ- सांस्कृतिक संस्थाएँ जहाँ एक ओर अपने धार्मिक विचारों का व्यक्त करती हैं वहीं दूसरी ओर प्राचीन शब्दों को फीर प्रस्तुत करती हैं उन्नीसवीं सदी के अन्त व बीसवीं सदी के प्रारम्भ में स्वामी दयानन्द के द्वारा संस्कृत युक्त हिन्दी शब्दों पर विशेष बल दिया गया। जिस कारण हिन्दी भाषा में संस्कृत युक्त शब्द प्रयुक्त होने लगे।

(ख) व्यक्ति- भाषा पर तभी महान व्यक्तियों का भी प्रभाव पड़ता है। जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने उत्तरी भाषा को प्रभावित किया तुलसीदास ने कई शब्दों को अपनी कविता में तुक आदि के लिए प्रयुक्त किया वे भी प्रचलन में आ गये। उनके बाद जितने भी कवि हुए उनकी शैली इनसे प्रभावित हुई।

(ग) संस्कृतियों का सम्मेलन- विभिन्न संस्कृतियों के मिलने से भाषा में एक नया रूप आ जाता है। भारत तो संस्कृतियों का देश है यहाँ अनेक संस्कृतियों का मिलन हुआ। जैसे आस्ट्रिक और द्रविड़, आर्य और द्रविड़, आर्य और यवन, आर्य और मुसलमान, आर्य और यूरोपीय इन संस्कृतियों के मिलन से भारतीय भाषा पर सैकड़ों शब्द प्रचलन में आ गये।

3. सामाजिक प्रभाव- भाषा ही समाज का दर्पण है। जिस प्रकार समाज में उन्नति और अवनति होती है ठीक उसी प्रकार से भाषा में भी ह्रास और विकास होता है। भारत में समय-समय पर विभिन्न विदेशी जातियों का आगमन हुआ इसका प्रभाव रहन-सहन के साथ-साथ भाषा पर भी पड़ा। देखा जाय तो अपभ्रंश काल का साहित्य भाषा परिवर्तन का युग है या हम कह सकते हैं कि एक उदाहरण है। विदेशी जातियों के आगमन से सहस्रों नये शब्दों की उत्पत्ति हुई जैसे- अदालत, गुलाम, कचहरी, तहसीलदार, बीबी, गर्वनर आदि शब्द इसी के प्रतीक हैं।

4. वैज्ञानिक प्रभाव- आज का युग विज्ञान का युग है। विज्ञान के प्रभाव से भाषा भी दूर नहीं है। जिस प्रकार विज्ञान में नये-नये आविष्कार और अनुसंधान हो रहे है उसी प्रकार नई शब्दावली भी बनती जा रही है। अन्य विषयों को यदि हम छोड़ भी दे तो भाषा विज्ञान और भाषा शास्त्र को ही लें तो हर वर्ष इसमें सैकड़ों नये शब्द आते हैं। विज्ञान में पारिभाषिक शब्दों की संख्या बढती जा रही है आधुनिक युग में संकेत शब्दों की ओर रूचि बढ़ती जा रही है।

(ग) सादृश्य-भाषा के विकास में जिस प्रकार आन्तरिक व बाह्य कारण का प्रभाव पड़ता है उसी प्रकार सादृश्य का भी बहुत महत्व है। सादृश्य विश्व की प्रत्येक भाषा में देखा गया है सादृश्य ध्वनि, शब्द, अर्थ और वाक्य रचना सभी को प्रभावित करता है।

जिस प्रकार द्वादश में द्वा$दश में आ की मात्रा आती है इसके विपरीत यदि देखें तो एकादश में एकदश में आ नही आना चाहिए था इसका कारण यह है कि द्वादश में मिथ्या सादृश्य से एकदश का एकादश हो गया। जिस प्रकार हिन्दी भाषा में सादृश्य के आधार पर अनेक शब्द बने, उसी प्रकार अंग्रेजी भाषा में भी शब्द बनें। जैसे Ring को Rang, Sing का Sang बनने लगे।इस प्रकार से यदि हम देखें तो सादृश्य भाषा के विकास के कारण के रूप में विश्व की सभी भाषाओं पर अपना प्रभुत्व बनाये रखता है।

3- नीचे जो वाक्य दिये गये हैं उनमें से तथ्य की दृष्टि से कुछ सही हैं और कुछ गलत हैं सही वाक्यों के सामने कोष्ठक में सही तथा गलत वाक्यों के सामने गलत का चिह्न लगाइये-

(क) अपूर्ण अनुकरण भाषा में परिवर्तन का मुख्य कारण है। ( )

(ख) प्रयत्न लाघव भाषा में विकास लाने वाले कारणों में महत्वपूर्ण नहीं है। ( )

(ग) भाषा अर्जित सम्पत्ति है ( )

(घ) संस्कृति समाज का अभिन्न अंग व समाज का जीवन है। ( )

4-रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये

(क) बोलते समय किसी खास शब्द या ध्वनि पर विशेष .....दिया जाता है।

(ख) विभिन्न .....के मिलने से भाषा में एक नया रूप आ जाता है।

(ग) प्रयत्न लाघव को.....भी कहते हैं।

(घ) आभ्यन्तर कारण को ..... कारण भी कहा जा सकता है

1.8 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भाषा के अर्थ व परिभाषाओं से परिचित हुए, साथ ही साथ आपने भाषा की प्रकृति का अध्ययन किया। भाषा की उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्तों को आपने जाना। यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि कोई भी सिद्धान्त भाषा की उत्पत्ति सम्बन्धी रहस्य का समाधान नहीं कर सका। भाषाशास्त्री भाषा के विकास या परिवर्तन को समझा सकते हैं किन्तु

भाषा की उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्त को स्पष्ट रूप से प्रतिपादित नहीं कर पाये। इस इकाई में आपने भाषा की उत्पत्ति के साथ ही साथ उसके विकास या परिवर्तन को भी जाना।

1.9 शब्दावली

सर्वव्याप्त - सभी जगह फैली हुई
अर्जित - सीखा जाना
प्रदत्त - प्रदान की गयी
आंगिक - अंगों की चेष्टाएँ
निर्विरोध - बिना विरोध के
प्रयोगाधिक्य - अत्यधिक प्रयोग
नर्सरी शब्द - प्रारम्भिक शब्द

1.10 बोध-प्रश्नों के उत्तर

1-(क) जन्म (ख) लाखों (ग) सीमा (घ) प्रवाहमान
2- (1) गः- दिव्योत्पत्ति
(2) खः- हेनरी स्वीट
3- (क) सही (ख) गलत (ग) सही (घ) सही
4- (क) बल (ख) संस्कृतियों (ग) मुख-सुख (घ) मौलिक

1.11 संदर्भ ग्रंथ सूची

(1) डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी-भाषा-विज्ञान एवं भाषा-शास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक वाराणसी।
(2) डॉ0 भोलानाथतिवारी, भाषाविज्ञान किताब महल, 22- सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद।

1.12 उपयोगी पुस्तकें

(1) भाषा-विज्ञान - डॉ0 श्याम सुन्दर दास
(2) भाषा और भाषा-विज्ञान - प्रो0 रामाश्रय मिश्र
(3) भाषा शास्त्र की रूपरेखा - डॉ0 उदयनारायण तिवारी

1.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1- भाषा किसे कहते हैं ? भाषा की प्रकृति पर प्रकाश डालिए।
2- भाषा के विकास को समझाइए।

इकाई .2 संस्कृत वाक्य एवं पद संरचना

इकाई की रूपरेखाः

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 संस्कृत वाक्य रचना : अर्थ एवं स्वरूप
2.4 वाक्य संरचना एवं प्रकार
2.5 संस्कृत पद रचना : अर्थ एवं स्वरूप
2.6 पद संरचना एवं प्रकार
2.7 सारांश
2.8 शब्दावली
2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.11 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री
2.12 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

संस्कृत वाङ्मय में वाक्य एवं पदसंरचना का विशेष महत्त्व है। प्रस्तुत इकाई में वाक्य एवं पदसंरचना का अनुशीलन किया गया है। संस्कृत वाङ्मय में वाक्य के सम्बन्ध में सम्यक् प्रकाश डाला गया है। विद्वानों का अभिमत है कि आकांक्षा योग्यता और सन्निधि युक्त पदों का समूह वाक्य है। यह भाषा-विज्ञान के अन्तर्गत आती है। इसमें संस्कृत वाक्य एवं पद-रचना से सम्बन्धित विषय का विश्लेषण किया गया है। संस्कृत वाक्य एवं पद-संरचना के सम्बन्ध में प्राचीन काल से विचार होता चला आया है।

वाक्य की रचना सार्थक शब्द समूह से होती है। वाक्य भाषा का महत्त्व पूर्ण अंग है। वाक्य के द्वारा सम्पूर्ण अर्थ प्रकट होता हैं। अतः भावप्रकाशन के लिये वाक्य विशेष महत्त्व रखता है। पद- संरचना का उद्देश्य पदों की सम्यक् रचना है। इस सम्बन्ध में यास्क, पाणिनि, कात्यापयन, पतंजलि भट्टोजिदीक्षित आदि आचार्यों ने अतिशय महत्त्व पूर्ण विचार प्रस्तुत किये हैं। इस इकाई में वाक्य एवं पद-संरचना के सम्बन्ध में वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, जिससे आप संस्कृत वाक्य एवं पद रचना को विधिवत् समझ सकेंगे और सम्बन्धित विषय में दक्षता प्राप्त कर सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप—

- संस्कृत वाक्यरचना को समझ सकेंगे।
- वाक्य से सम्बन्धित विविध विषयों की जानकारी पा सकेंगे।
- वाक्य रचना की प्रकृति को जान सकेंगे।
- आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि से युक्त ही पद वाक्य -रचना में सक्षम है, यह जान सकेंगे।
- संस्कृत वाक्य -रचना की अनेक मौलिक विशेषताएँ हैं, इसे जान सकेंगे।
- संस्कृत पद-संरचना को समझ सकेंगे ।
- संस्कृत पद-संरचना किस प्रकार होती है ? इसका ज्ञान कर सकेंगे।
- सुबन्त और तिङन्त को पद कहते है ? यह जान सकेंगे।
- धातुओं से होने वाले तिप् आदि 18 प्रत्ययों को जान सकेंगे।

2.3 संस्कृत वाक्यरचना : अर्थ एवं स्वरूप

संस्कृत वाक्य रचना का अर्थ संस्कृत में वाक्यरचना से सम्बन्धित विषयों का अध्ययन करना है। विभिन्न ध्वनियों के मिलने से पदों और शब्दों का निर्माण होता है। संस्कृत में सुबन्तऔर तिङन्त को पद कहा गया है। जब तक किसी शब्द में सुबन्त और तिङन्त प्रत्यय प्रयुक्त नहीं होंगे तब तक वे पद नहीं बन सकते और जब तक वे पद नहीं बन सकते तब तक उनका वाक्य प्रयोग नहीं हो सकता। विविध शब्दों का प्रयोग करके वक्ता अपने अभिप्राय को अभिव्यक्त करता है। इसी को वाक्य रचना कहते हैं। सार्थक ध्वनि समूह को शब्द कहते हैं। शब्द वाक्य के अनुरूप यथा स्थान कुछ विकार के साथ प्रयुक्त होता है। यह आवश्यक नहीं है कि भाव को समझने के लिए अनेक पदों का प्रयोग किया ही जाये। वाक्य कभी शब्दों का समूह भी होता है और एक से ही वाक्य का आशय समझ लिया जाता है। जैसे कोई प्रश्न करता है कि त्वं विद्यालयम् अगच्छः अर्थात् क्या तुम विद्यालय गये थे इसका उतर प्राप्त हुआ आम् = हाँ। यहाँ इन वाक्यों में किं त्वं विद्यालयम् अगच्छः यह शब्द समूहों का वाक्य है। इसके उत्तर में कहा गया है- आम् = यह पूर्ण वाक्य का अर्थ प्रकट कर रहा है।

इस प्रकार यह नहीं कहा जा सकता है कि वाक्य शब्दों का ही समूह होता है। परन्तु प्रायः वाक्य शब्दों का समूह होता है। आचार्यों का यह कथन सर्वथा उचित है कि आकांक्षा ,योग्यता और आसक्ति से युक्त पद समूह को वाक्य कहते हैं। छोटे-छोटे वाक्यों का समूह महावाक्य कहलाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि वाक्य रचना भाषा का सर्वाधिक महत्व पूर्ण अंग है। वक्ता अपने हृदयस्थ भाव को वाक्य द्वारा प्रकट करता है।

2.4 संस्कृत वाक्य रचना एवं प्रकार

ध्वनियों के मिलने से पदों तथा शब्दों का निर्माण होता है। संस्कृत में सुबन्त और तिङन्त को पद कहा गया है। (सुप्तिङन्त पदम्) पदों के मिलने से वाक्य बनता है। वाक्य की रचना सार्थक शब्द समूह के द्वारा होती हैं। महर्षि पतञ्जलि का कथन है कि वाक्य शब्दों का वह समूह है जिससे पूर्ण अर्थ प्रकट होता है। तर्क भाषा में कहा गया है कि आकांक्षा, योग्यता और सन्निधियुक्त पदों का समूह वाक्य है। इस प्रकार वाक्य भाषा का सर्वाधिक महत्व पूर्ण अंग है। विभिन्न पदों को एक साथ बोलकर वाक्यरचना होती है। वाक्य के द्वारा वक्ता अपना अभिमत प्रकट करता है। यद्यपि शब्दों की अपनी स्वतन्त्र सत्ता है, परन्तु वास्तविक अर्थ वाक्य में भली-भाँति प्रयुक्त होने पर जाना जाता है। शब्द और पद में भी अन्तर है। किसी सार्थक ध्वनि समूह को शब्द कहते हैं। परन्तु शब्द जब वाक्य के अनुरूप यथास्थान कुछ विकार के साथ प्रयुक्त होता है, तो उसे पद कहते हैं। पद और वाक्य में किसका महत्व अधिक है ? इस विषय में विद्वानों में मतभेद हैं। कुछ मनीषियों के मत में वाक्य की प्रमुख है तथा पद उसक खण्डित अंश है। इस मत को अन्विताभिधानवाद या भर्तृहरि का मत कहा गया हैं। अन्य मनीषियों के अनुसार पद का अस्तित्व ही प्रमुख है, वाक्य तो पदों का समूह है। इस मत को अभिहितान्वयवाद कहा जाता है। आधुनिक काल के अधिकांश विद्वानों के अनुसार वाक्य ही प्रधान है और वही भाषा की महत्वपूर्ण इकाई है जिससे पूर्ण अर्थ का ज्ञान होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सामान्यता वाक्य कहने से दो बातों को ध्यान आता है। प्रथम वाक्य पदों का समूह होता है तथा द्वितीय वह पूर्ण अर्थ को प्रकट करता है। परन्तु इस सम्बन्ध में विद्वान् एक मत नहीं है। वाक्य कभी शब्दों का समूह भी होता है और एक से ही वाक्य का आशय समझ लिया जाता है। जैसे कोई प्रश्न करता है कि त्वं विद्यालयम् अगच्छः अर्थात् क्या तुम विद्यालय गये थे इसका उत्तर प्राप्त हुआ आम् = हाँ। यहाँ इन वाक्यों में किं त्वं विद्यालयम् अगच्छः यह शब्द समूहों का वाक्य है। इसके उत्तर में कहा गया है- आम् = यह पूर्ण वाक्य का अर्थ प्रकट कर रहा हैं। इसके उत्तर में कहा गया है - आम् = यह पूर्ण वाक्य का अर्थ प्रकट कर रहा है। इस प्रकार यह पूर्णतः सत्य नहीं है कि वाक्य शब्दों का समूह होता है क्योंकि एक शब्द के द्वारा भी सम्पूर्ण वाक्य का अर्थ प्रकट हो जाता है। वाक्य की परिभाषा करते हुए विश्वनाथ ने लिखा है कि 'वाक्यं स्याद् योग्यताकांक्षासक्ति - युक्तः पदोच्चय।' अर्थात् आकांक्षा, योग्यता तथा आसक्ति से युक्त प्रयोग किये गये पदसमूह को वाक्य कहा जाता है। इन तीनों से रहित पदों के समुदाय को वाक्य नहीं कह सकते। योग्यता, आकांक्षा तथा आसत्ति के बिना कहे गये शब्द समूह वाक्य नहीं कहलाते, जैसे - गौः अश्वः, पुस्तकं, गृहम्, पुरूषः, हस्ती, बालिका, अजा आदि इसी प्रकार ''अहं विद्यालयं'' कहकर आकांक्षा करनी पड़ती है - गच्छामि। इस प्रकार आंकाक्षित पदों का प्रयोग करके वाक्य बनता है। आकांक्षा करने के साथ पदों में योग्यता बढ़ती है। एक वस्तु का दूसरी वस्तु के साथ सम्बद्ध करने पर रूकावट न होना योग्यता कहलाती है। ''अग्निनासिञ्चति'' यह वाक्य हो सकता था, परन्तु इसमें योग्यता गुण नहीं आता क्योंकि अग्नि जलाती है, सींचती नहीं। आकांक्षा तथा योग्यता के साथ पदों की सन्निधि आवश्यक हैं। जो वस्तुयें प्रकरण से सम्बन्धित होती है और उनके बीच में व्यवधान नहीं होता तो उसे सन्निधि या आसक्ति कहते हैं। व्यवधान भी दो तरह से होता है। वस्तु के बीच अधिक काल का होना या मध्य में अनुपयुक्त वस्तु का आ जाना, जैसे- रामः कहकर बहुत देर तक कुछ न कहकर यदि 'गच्छति' कहा जाय तो काल-व्यवधान से यह वाक्य नहीं होगा। इसी प्रकार ''बालकः विद्यालये वृक्षे फलानि'' कहकर

पठति कहा जाय तो यहाँ बालकः विद्यालये और पठति के बीच में वृक्षे फलानि अनुपयुक्त रूप में आने के कारण वाक्य नहीं कहलायेगा।

इस प्रकार आकांक्षा, योग्यता आसक्ति से युक्त पद समूह को वाक्य कहते हैं। छोटे-छोटे वाक्यों का समूह महावाक्य कहलाता है।

वाक्यों के प्रकार—

1. एक तो वाक्य होते हैं जिनका हम अपनी बातों में प्रयोग करते हैं। इस प्रकार के वाक्य छोटे-छोटे होते हैं और मौखिक रूप से प्रयुक्त होते हैं, जैसे अहं गच्छामि, ते पठन्तु बालकाः, रमेशः धावति आदि इन्हें बोलचाल के वाक्य कहा जाता है।

2. दूसरे प्रकार के वे वाक्य होते हैं जो लिखित रूप में होते हैं, जिनका प्रयोग शिक्षित समुदाय करता है। इन्हें लिखित वाक्य कहा जाता हैं। जैसे **- भारत में प्रियं राजते भूतले, यस्य दिव्यं यशः कोविदैर्गीयते। इत्यादि।**

सामान्यता वाक्यों के दो भाग होते हैं। प्रथम को अग्र और बाद वाले को पश्च कहते हैं। इन्हें अन्य नामों से भी सम्बोधित किया जाता है। जैसे - उद्देश्य, विधेय, कर्ता, क्रिया, सत्व , आख्यात आदि। इस प्रकार के भाग प्रायः अनपढ़ लोगों की बोली में अधिक पाये जाते हैं। शिक्षित समुदाय वाक्य को एक बार में ही कह देगा अथवा उसे कभी छोटे-छोटे वाक्यों में कहेगा। व्यक्ति के द्वारा जो कहा जाता है, उसे विधेय अथवा आख्यात कहते हैं। जिसके लिए कहा जाता है, उसे उद्देश्य या सत्व कहते हैं। जैसे रमेशः पठति इस वाक्य में रेमशः उद्देश्य तथा पठति विधेय है। दूसरे रूप में इन्हीं को कर्ता एवं क्रिया कह सकते हैं। वाक्यों में कर्ता, क्रिया, कर्म, सर्वनाम, विशेषण , क्रिया विशेषण, संयोजक एवं अव्यय शब्द पाये जाते हैं। किन्तु सभी का पाया जाना आवश्यक है। संस्कृत भाषा में वाक्य रचना करते समय कर्ता, कर्म, क्रिया आदि का कोई निश्चित स्थान नहीं है। उन्हें यथा अवसार आगे पीछे भी प्रयुक्त कर दिया जाता हैं। परन्तु इसका अर्थ या भाव एक ही रहता है। जैसे - 'रमेशः पुस्तकं पठति। इस वाक्य को 'पुस्तकं रमेशः पठति' 'पठति रमेशः पुस्तकम् के रूप में भी बोला जा सकता है परन्तु उसका अर्थ या भाव यही होगा कि रमेश पुस्तक पढ़ता है। परन्तु अंग्रेजी आदि भाषाओं में शब्दों के बदल देने से अर्थ में अन्तर आ जाता है। संस्कृत में तीन वाच्य होते हैं- 1.कर्तृवाच्य, 2.कर्मवाच्य, 3.भाववाच्य सकर्मक धातुओं के रूप में कर्तृवाच्य तथा कर्मवाच्य में होते हैं और अकर्मक धातुओं के रूप में कर्तृवाच्य तथा भाववाच्य में होते हैं।

1. कर्तृवाच्य- कर्तृवाच्य वाक्य में कर्ता की प्रधानता रहती है। कर्ता में प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है। कर्म में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है। क्रिया के पुरूष और वचन कर्ता के पुरूष तथा वचन के अनुसार लगते हैं। जैसा कि कहा गया है-

प्रयोगे कर्तृवाच्यस्य कर्तरि प्रथमा भवेत्।
द्वितीया कर्मणि तथा क्रिया कर्तृपदान्विता।।

जैसे - रमेशः ग्रामं गच्छति = रमेश गांव को जाता है ।

2. कर्मवाच्य- कर्मवाच्य के वाक्य में कर्म की प्रधानता रहती है। कर्ता में तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है। कर्म में प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है तथा क्रिया के पुरूष और वचन कर्ता के पुरूष तथा वचन के अनुसार होते हैं। जैसा कि कहा गया है-

प्रयोगे कर्मवाच्यस्य तृतीया स्यात्तु कर्तरि।
कर्मणि प्रथमा चैव क्रिया कर्मानुसारिणी।।

जैसे - त्वया पाठः पठ्यते = तुम्हारे द्वारा पाठ पढा़ जाता है।

3. भाववाच्य- भाववाच्य में कर्ता में तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है, कर्म होता नहीं है और क्रिया में सर्वदा प्रथम पुरूष का एक वचन ही रहता है।

जैसा कि काहा भी कहा गया है-

कर्माभावः सदाभावे तृतीया चैव कर्तरि।

प्रथमः पुरूषश्चैकवचनश्च क्रियापदे।।

जैसे - अस्माभिः स्थीयते = हम लोगों के द्वारा ठहरा जाता है।

व्याकरणिक रचना के दृष्टिकोण से वाक्यों के तीन प्रकार हैं-

1. साधारण वाक्य- इस वाक्य में एक उद्देश्य तथा एक विरोध होता है।
2. संयुक्त वाक्य - इस वाक्य में दो या अधिक प्रधान उपवाक्य होते हैं।
3. मिश्रित वाक्य - इस तरह के वाक्य में एक प्रधान उपवाक्य तथा दूसरे आश्रित उपवाक्य होते हैं।

आश्रित वाक्य- संज्ञा वाक्य, विशेषण उपवाक्य तथा क्रिया विशेषण उपवाक्य होते हैं।

अर्थ अनुसार वाक्य कई प्रकार के होते है, जैसे -

क- विस्मय बोधक

ख- संदेह बोधक

ग- आज्ञा बोधक

घ- प्रश्न बोधक

ङ- निषेध बोधक

च- इच्छा बोधक

2.5 संस्कृत पद संरचना - अर्थ एवं स्वरूप

संस्कृत पद संरचना का अर्थ संस्कृत में पदों की रचना करना है। वस्तुतः किसी शब्द का वाक्य में तभी प्रयोग किया जा सकता है, जब उसे पद बना लिया हो। पद बनने के लिए शब्द का सुबन्त या तिङन्त होना अनिवार्य है। अतएव यह स्पष्ट है कि जब किसी शब्द के आगे सुप् या तिङ् प्रत्यय जुड़ता है तभी वह पद कहलाता है। इनके अभाव में कोई शब्द पद नहीं कहलायेगा और जब तक वह पद नहीं बनेगा तब तक उसका वाक्य में प्रयोग नहीं हो सकता। इस प्रकार प्रकृति मूल रूप और प्रत्यय सम्बन्ध तत्व के मिलने से पद या रूप बनता है। इस प्रकार मूल शब्द में प्रत्यय का योग आवश्यक है जैसे - 'रामः गच्छति' में राम मूल रूप है। परन्तु उनका प्रयोग तभी होगा जब उसमें सुप् प्रत्यय जुड़कर वह 'रामः' बन जायेगा।

2.6 पद संरचना एवं प्रकार

शब्द का वाक्य में प्रयोग किया गया रूप पद कहलाता है। वाक्य में प्रयुक्त होने पर शब्द में कुछ परिवर्तत या विकार आ जाता है, उसे पद कहते हैं। संस्कृत के प्रख्यात वैयाकरण महर्षि पाणिनि ने पद की परिभाषा इस प्रकार दी है-'सुप्तिङन्तं पदम्' अर्थात् 'सुबन्त' और 'तिङन्त' को पद कहते हैं। इसका आशय यह है- किसी शब्द के आगे जब कोई सुप् प्रत्यय या तिङ् प्रत्यय जुड़ता है तभी वह पद कहलाता है। जब तक किसी शब्द के अन्त में सुप् और तिङ् प्रत्यय नहीं लगेंगे तब तक उसे पद नहीं कहा जा सकता। संस्कृत में 21 प्रत्ययों को सुप् कहते हैं। 'सु' से प्रारम्भ कर 'सुप्' पर्यन्त प्रत्ययों का प्रत्याहार 'सुप्' है। ये प्रत्यय सात विभक्तियों और तीन वचनों को लेकर निर्धारित किये गये हैं। इन प्रत्ययों का स्वरूप इव प्रकार है-

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	सु	औ	जस्
द्वितीया	अम्	औट्	शस्
तृतीया	टा	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी	ङे	भ्याम्	भ्यस्

पंचमी	ङसि	भ्याम्	भ्यस्
षष्ठी	ङस्	ओस्	आम्
सप्तमी	ङि	ओस्	सुप्

इस प्रकार 'सु' लेकर सुप् के 'प्' तक 'सुप्' कहलाता हें इस सुप् के अन्तर्गत उपर्युक्त सभी 21 प्रत्यय जाते हैं। सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति का ही प्रयोग होता है। इन प्रत्ययों के व्यावहारिक रूप को सझने के लिए निम्नलिखित चक्र को सावधानी से पढ़े-

कारक	**विभक्ति**	**चिह्न**	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
कर्ता	प्रथमा	ने	रामः	रामौ	रामाः
कर्म	द्वितीया	को	रामम्	रामौ	रामान्
करण	तृतीया	से, द्वारा	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः
सम्प्रदान	चतुर्थी	के लिए	रामाय	रामाभ्याम्	रामैभ्यः
अपादान	पंचमी	से	रामात् (द)	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
सम्बन्ध	षष्ठी	का, के,की	रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
अधिकरण	सप्तमी	में, पर	रामे	रामयोः	रामेषु
सम्बोधन	प्रथमा	हे, र	हे राम	हे रामौ	हे रामाः

'तिङ्' प्रत्याहार में 'तिप्' से लेकर 'महिङ्' तक 18 प्रत्यय होते हैं। ये प्रत्यय धातुओं से होते हैं।

परस्मैपद—

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरूष	तिप्	तस्	झि
मध्यम पुरूष	सिप्	थस्	थ
उत्तम पुरूष	मिप्	वस्	मस्

आत्मनेपद—

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरूष	त	आताम्	झ
मध्यम पुरूष	थास्	आथाम्	ध्वम्
उत्तम पुरूष	इट्	वहि	महिङ्

परस्मैद प्रत्यय से युक्त पठ् = पढना धातु के लट् लकार के रूपों का अवलोकन करें-

परस्मैपद—

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरूष	पठति	पठतः	पठन्ति
मध्यम पुरूष	पठसि	पठथः	पठथ
उत्तम पुरूष	पठामि	पठावः	पठामः

इसी प्रकार आत्मनेपद से युक्म शी = शयन करना, धातु के लट् लकार के रूपों का अवलोकन करें-

आत्मनेपद—

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथम पुरूष	शेते	शयाते	शेरते
मध्यम पुरूष	शेषे	शयाशे	शेध्वे
उत्तम पुरूष	शये	शेवहे	शेमहे

इस प्रकार सुबन्त, तिङ्न्त' युक्त शब्दों को ही पद कहते हैं। वाक्य में उन्हीं का प्रयोग होता है। प्रकृति (मूल रूप) तथा प्रत्यय (सम्बन्ध तत्व) के मिलने से 'पद' या 'रूप' बनता है । पतंजलि के इन शब्दों के अनुसा 'नापि केवला प्रकृतिः प्रयोक्तव्या नापि केवलः प्रत्यय' अकेले 'प्रकृति' या 'प्रत्यय' का प्रयोग नहीं किया जाता सकता अर्थात् इन दोनों के योग से बने 'पद' या 'रूप' का वाक्य में प्रयोग किया जाता है। 'रामः गच्छति' में 'राम' रूप है, शब्द है किन्तु 'रामः' पद है।

वाक्यों में प्रयुक्त पदों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम वह भाग जिससे अर्थ का ज्ञान होता है जो मूल रूप में रहता है अर्थात् मूल शब्द तथा द्वितीय वह भाग जो मूल रूप से संयुक्त होकर अर्थ प्रकट कतर है अर्थात् मूल शब्द से जुड़ने वाले सम्बन्ध बोधक शब्दद्व विभक्ति तथा प्रत्यय आदि। इनमें प्रथम भाग 'अर्थतत्व कहलाता है तथा दूसरा भाग 'सम्बन्धतत्व' कहलाता हैं। सम्बन्धतत्व अर्थ तत्व के पारस्परिक सम्बन्ध को बताता है। वाक्य के गठन के लिए सम्बन्धतत्व की आवश्यकता होती है। अर्थततवों आपसी सम्बन्ध बताने वाले शब्दों (रूा रूपों), पर विवेचना करने के कारण रूप-विज्ञान, (या पद विज्ञान रूप विचार, पद रचना आदि) कहा जाता है।

सम्बन्ध तत्वों के भेद—

सम्बन्ध तत्वों के विद्वानों के अनके भेद प्रस्तुत किये हैं जो कि इस प्रकार है-

1.स्वतन्त्र शब्द— अनेक भाषाओं में स्वतन्त्र शब्द के प्रतीक अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखते हैं अर्थात् सम्बन्ध तत्त्व से संयोजित न होकर स्वतन्त्र रहते हैं। जैसे संस्कृत में इति, अपि, एव, अथ, आदि, च, न, व आदि।

2. शब्दस्थान— किन्हीं-किन्हीं भाषाओं में वाक्य में शब्द के स्थान पर सम्बन्ध तत्त्व का ज्ञान होता है। संस्कृत के **समासों में शब्दस्थान की विशेष महत्त्व है-**

राजपुत्र	=	राजा का पुत्र (राजकुमार)
पुत्रराज	=	पुत्रों का राजा (श्रेष्ठ पुत्र)
राजसदन	=	राजा का घर
सदनराज	=	घरों का राजा (श्रेष्ठ घर या अच्छा घर)

3.प्रत्यय— अर्थतत्त्व के साथ सम्बन्ध तत्व प्रारम्भ, मध्य तथा अन्त में आवश्यकतानुसार प्रत्यय जोड़े जाते हैं। संस्कृत में प्रायः इन प्रत्ययों का प्रयोग शब्द के आगे होता है-

जैसे-	विनाउदात्त	ढ्क्	=	वैनतेय।
	राष्ट्र	घ	=	राष्ट्रिय।
	बुद्धि	मतुप्	=	बुद्धिमान्।
	प्रशस्य	इष्ठन्	=	श्रेष्ठ इत्यादि।

संस्कृत शब्दों में लगने वाली विभक्तियाँ अन्त प्रत्यय ही है।

बालक स्य	=	बालकस्य

4. ध्वनि गुण (मात्रा, स्वर, बलाघात)— ध्वनि गुण अर्थात् मात्रा, स्वर तथा बलाघात से सम्बन्ध तत्व का बोध होता है। कतिपय भाषाओं में इनका विशेष महत्व है। वैदिक संस्कृत, ग्रीक आदि भाषाओं में स्वर का विशेष महŸव था।

5. अपश्रुति (आन्तरिक परिवर्तन) — अन्तर्मुखी विभक्ति प्रधान भाषाओं में अर्थतत्व अर्थात् मूल शब्द के मूल में सम्बन्ध तत्व मिल जाता है। जैसे- दशरथ, पुत्र से पौत्र, भवत् से भवदीय, प्रशस्य से श्रेयान् यशस् से यशस्वी, माया से मायावी आदि।

6. द्वित्व ध्वनियों—शब्दों की कई बार आवृत्तियों से सम्बन्ध तत्व का ज्ञान होता है। यह आवृत्तियों अर्थ तत्व के प्रारम्भ, मध्य एवं अन्त में हो सकती है। जैसे - पंट्पटाकरोति। दिनं-दिनं प्रति = प्रतिदिनम्।

7. ध्वनि विनियोजन— अर्थतत्व की ध्वनियों को कम करके अथवा बढ़ाकर सम्बन्ध तत्व को बना लिया जाता है। जैसे- प्रशस्य शब्द के ज्येष्ठ।

8- अभावात्मक— जब अर्थ तत्व (मूल शब्द) में कुछ जोड़ा नहीं जाता तथा शब्द से ही सम्बन्ध तत्व का काम निकाल लिया जाता है, तो उसे अभावात्मक या शून्य सम्बन्ध तत्व कहते हैं। संस्कृत में इस प्रकार के शब्द विद्युत्, मरूत्, नदी, जल, मुक्, वारि आदि हैं। इनके ये रूप ही बिना विकार के प्रथमा एक वचन को प्रकट करते हैं। अतः इनमें शून्य सम्बन्ध तत्व का बोध होता है।

सम्बन्ध तत्व तथा अर्थतत्व का सम्बन्ध— सम्बन्ध तत्व तथा अर्थतत्व में पारस्परिक सम्बन्ध सब भाषाओं में समान नहीं माना जाता है। इन दोनों में सम्बन्ध इस प्रकार होते हैं।-

1. पूर्ण सहयोग— जब अर्थतत्व और सम्बन्ध तत्व परस्पर घनिष्ठ भाव से मिल जाते हैं तो उसे पूर्ण सहयोग कहते हैं। एक ही शब्द के द्वारा दोनों तत्वों का बोध होता है। संस्कृत भाषा में विभिन्न शब्द रूपों में अर्थतत्व तथा सम्बन्ध तत्व परस्पर घनिष्ठ भाव से मिल जाते हैं। जैसे रामः (राम ने), रामम् (राम को), रामाय (राम के लिए) आदि रूप हैं। अंग्रजी में भी इस प्रकार के शब्द पाये जाते हैं, जैसे - ब्रिंग (bring) से ब्राट (brought)।

2. अपूर्ण संयोग— इस प्रकार के संयोग में किसी शब्द में मिलने वाले अर्थ तत्व तथा सम्बन्ध तत्व पूरी तरह, से मिलत नहीं अपितु दोनों की सत्ता बनी रहती है और उन्हें शब्द में स्पष्टता तथा पहिचाना जा सकता है। इनका संयोग तिलतण्डुलवत् होता है, नीरक्षीरवत् नहीं। जैसे—

पुस्तकम् (पुस्तक अम्)
केशवः (केश व)
मेधावी (मेधा विन्) इत्यादि

3. दोनों स्वतंत्र— कुछ भाषाओं में अर्थतत्व तथा सम्बन्ध तत्व दोनों की सत्ता पूरी तरह से स्वतंत्र होती है। जैसे - संस्कृत में इति, वा, तु, न आदि।

4. अर्थतत्व तथा सम्बन्धतत्व की समानता— कुछ भाषाओं में प्रत्येक अर्थतत्व के साथ एक सम्बन्धतत्व जोडा जाता है। अतः दोनों की संख्या समान होती है। वाक्य में एक सम्बन्धत्व के स्थान पर कई सम्बन्धतत्व हो जाते हैं। अतः सम्बन्धतत्व का आधिक्य हो जाता है।

जैसे-	रामाः	=	राम जस्, अर्थात् अनेक राम।
	फलानि	=	फल जस्, अर्थात् अनेक फल।
	कपयः	=	कपि जस्, अर्थात् बहुत से वानर।
	स्त्रियः	=	स्त्री जस्, अर्थात् बहुत सी स्त्रियाँ।

सम्बन्धतत्व से मुख्य रूप से लिंग, पुरूष, वचन, कारक एवं काल आदि की पहचान होती है। यही सम्बन्धतत्व के प्रमुख कार्य भी कहे जा सकते हैं।

लिंग— संस्कृत मे तीन प्रकार के लिंग होते हैं- पुँल्लिंग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसक लिंग। निर्जीव वस्तुओं को नपुंसक लिंग में रखते हैं। संस्कृत में एक ही शब्द या उसके समानार्थी स्त्रीलिंग, पुँल्लिंग तथा नपुंसक लिंग तीनों में पाये जाते हैं। जैसे - स्त्री का बोधक 'दारा' शब्द पुँल्लिंग है तथा 'कलत्रम्' नपुंसक लिंग है। 'पुस्तकम्' नपुंसक लिंग है। लेकिन 'ग्रन्थ' पुँल्लिंग है। कुछ शब्द सदैव पुँल्लिंग में प्रयोग किये जाते हैं। यद्यपि उनमें स्त्रीलिंग जाति (मादा) भी पायी जाती है। इसी प्रकार कुछ जीवों के सूचक शब्द स्त्रीलिंग में होते हैं, यद्यपि उनमें पुरूष (चर) जाति भी पायी जाती है। लिंग दो प्रकार से व्यक्त किये जातो हैं।-

1. प्रत्यय संयुक्त करके

जैसे - अज शब्द से टाप् प्रत्यय करके अजा बनता है।
कुमार शब्द से डीप् प्रत्यय करके कुमारी बनता है।

इन्द्र शब्द से ङीष् तथा आनुक् होकर इन्द्राणी शब्द बनता है।

2. स्वतंत्र शब्द जोड़कर

इसके उदाहरण - अंग्रजी भाषा में प्रायः प्राप्त होते हैं।

नर के साथ भ्म तथा मादा के साथ ैीम का प्रयोग करते हैं।

जैसे - भ्म हवंज (बकरा) और ैीम हवंज (बकरी)।

3. विपरीत शब्द प्रयुक्त करके

जैसे- भ्राता (पुँल्लिंग)

भगिनी (स्त्रीलिंग)

पिता (पुँल्लिंग)

माता (स्त्रीलिंग)

वर (पुँल्लिंग)

वधू (स्त्रीलिंग)

पुरूष- पुरूष तीन प्रकार के होते हैं प्रथम पुरूष, मध्यम पुरूष , उत्तम पुरूष ।

पुरूषों के प्रयोग के आधार-पर क्रिया -रूपों में अन्तर हो जाता है। जैसे –

सः गच्छति = वह जाता है। त्वम् गच्छसि = तुम जाते हो। अहं गच्छामि = मैं जाना हूँ।

वचन- संस्कृत में तीन वचन होते हैं-एकवचन, द्विवचन और बहुवचन। वचन के प्रयोग से संज्ञा, क्रिया एवं विशलेषण रूपों में अन्तर आ जाता है।

जैसे -	बालकः पठति	=	बालका पढ़ता है।
	बालकौ पठतः	=	दो बालक पढ़ते हैं।
	बालकाः पठन्ति	=	बालक पढ़ते हैं।

कारक - कारकों अर्थात् कर्ता, कर्म, करण, स्मप्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण, सम्बोधन के प्रयोग के द्वारा सम्बन्ध तत्व का ज्ञान होता है। जैसे- रामेण बाणेन हतो बाली। यहाँ राम में कर्ता और बाणेन में करण का प्रयोग हुआ है।

काल- अर्थात् समय तीन भागों मे विभक्त होता है-

1. वर्तमान काल
2. भूतकाल और
3, भविष्य काल।

पुनः उनके उपभेद किये जाते हैं। भिन्न-भिन्न कालों को प्रकट करने के लिए स्मबन्ध तत्त्वों की साध्यता ली जाती है। संसार की अनके भाषाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार से काल के विभाजन किये गये हैं। उदाहरण के लिए संस्कृत में केवल भूतकाल के ही तीन भेद हैं- अनद्यतन, परोक्ष तथा सामान्य। अनद्यतन के लिए लङलकार का प्रयोग होता है, परोक्ष भूतकाल के लिए लिट् लकार का प्रयोग होता है और सामान्य भूतकाल के लिए लृङ् लकार का प्रयोग होता है। वर्तमान काल में लट् लकार का प्रयोग होता है। भविष्य काल के लिए लुट् और लृट् लकारों का प्रयोग होता है। संस्कृत में 10 लकार हैं, जो कि विभिन्न स्थितियों के लिए प्रयुक्त होती है, जैसे विधि आदि के लिए विधिलिङ् लकार का प्रयोग होता है।

वाच्य - संस्कृत भाषा में तीन वाच्य पाये जाते है।-1.कर्तृवाच्य, 2.कर्मवाच्य, 3.भाववाच्य

जब किसी वाक्य में कर्ता पर अधिक बल दिया जाता है तो उसे कर्तृवाच्य कहते हैं, जब वाक्य में कर्म पर अधिक बल दिया जाता हैं तो उसे कर्मवाच्य नाम दिया जाता है तथा जब क्रिया पर अधिक बल दिया जाता है तो उसे

भाववाच्य नाम दिया जाता है। इन तीनों रूपों में कर्मवाच्य में सकर्मक का एंव भाववाच्य में अकर्मक धातुओं का प्रयो किया जाता है। वाच्य के निर्माण में सम्बन्ध तत्व की अपेक्ष होती है।

पद- संस्कृत में दो प्रकार की धातुएँ पाई जाती है ।1.आत्मनेपदी 2.परस्मैपदी ।

जब क्रिया का फल कर्ता के लिए होता है तो उसे आत्मनेपद कहते हैं, परन्तु जब क्रिया का फल दूसरे को प्राप्त होता है तो उसे परस्मैपद कहते हैं। ''पुस्तकं लभते'' यहाँ लभते रूप आत्मनेपदीय है किन्तु 'पुस्तकं पठति ' में पठति' रूप परस्मैपदीय है। प्रेरणार्थक इच्छार्थक, आदि क्रिया के भेद हैं।

प्रश्नोत्तर भाग—

प्रश्न 1- संस्कृत में पद किसे कहते हैं?

उत्तर - सुबन्त और तिङन्त को पद कहते हैं। तात्पर्य यह है कि किसी शब्द के आगे जब कोई सुप प्रत्यय जुड़ता है तभी वह पद कहलाता है।

प्रश्न -2 सुप् किसे कहते हैं?

उत्तर - सु से प्रारम्भ कर सुप् पर्यन्त प्रत्ययों का प्रत्याहार सुप् कहलाता है।

प्रश्न -3 सुप् प्रत्ययों का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

उत्तर - सुप् प्रत्यय इस प्रकार हैं-

विभक्ति	**एकवचन**	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	सु	औ	जस्
द्वितीया	अम्	औट्	शस्
तृतीया	टा	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी	ङे	भ्याम्	भ्यस्
पंचमी	ङसि	भ्यास्	भ्यस्
षष्ठी	ङस्	ओस्	आम्
सप्तमी	ङि	ओस्	सुप्

इस प्रकार 'सु' से लेकर 'सप्' के 'प्' तक 'सुप्' कहलाता है। इस सुप् के अन्तर्गत उपर्युक्त सभी 21 प्रत्यय आ जाते हैं।

प्रश्न- 4 सम्बोधन में किस विभक्ति का प्रयोग होता है?

उत्तर - सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है।

प्रश्न -5 तिङन्त किसे कहते हैं?

उत्तर - तिप् के ति से लेकर महिङ् के ङ् पर्यन्त तिङ् प्रत्याहार कहलाता है। तिप्, तस् आदि में सेकिसी भी प्रत्यय से युक्त क्रिया पद को तिङन्त कहते हैं ।

प्रश्न- 6 परस्मैपद और आत्मनेपद प्रत्ययों को उल्लेख कीजिए ।

परस्मैपद—

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरूष	तिप्	तस्	झि
मध्यम पुरूष	सिप्	थस्	थ
उत्तम पुरूष	मिप्	वस्	मस्

आत्मनेपद—

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरूष	त	आताम्	झ

मध्यम पुरूष	थास्	आथाम्	ध्वम्
उत्तम पुरूष	इट्	वहि	महिङ्

प्रश्न -7 क्या केवल प्रकृति या प्रत्यय का प्रयोग किया जा सकता है?

उत्तर -नहीं। केवल प्रकृति या प्रत्यय का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

प्रश्न -8 वाक्यों में प्रयुक्त पदों को कितने भागों में विभक्त किया जा सकता है?

उत्तर -वाक्यों में प्रयुक्त पदों को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है।

1.मूल शब्द।

2.मल शब्द से जुड़ने वाले सम्बन्ध बोध क शब्द्, पद और विभक्ति आदि।

प्रश्न -9 सम्बन्ध तत्वों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर -1. स्वतन्त्र शब्द।

2, शब्द स्थान।

3. प्रत्यय।

4, ध्वनिगुण।

5, अपश्रुति।

6, द्वित्व।

7, ध्वनिविनियोजन

8, अभावात्मक।

प्रश्न- 10 शब्द तत्व और अर्थतत्व में पारस्परिक सम्बन्ध किस प्रकार होते हैं?

उत्तर -शब्द तत्व और अर्थतत्व में पारस्परिक सम्बन्ध इस प्रकार होते हैं-

1.पूर्ण सहयोग।

2.अपूर्ण सहयोग।

3.दोनों स्वतन्त्र

4.अर्थ तत्व तथा सम्बन्ध तत्व की समानता।

5.लिङ्ग।

6.पुरूष।

7.वचन।

8.कारक।

9.काल।

10.वाच्य।

बोध प्रश्न—1

1.वाक्य की संरचना होती है-

क- सार्थक शब्द समूह से

ख - निरर्थक शब्द समूह से

ग - केवल शब्द समूह से

घ- अव्यय शब्द समूह से

2. आख्यात कहते हैं-

क- संज्ञा ख - सर्वनाम

ग- क्रिया घ - अव्यय

3. वाक्य में होनी चाहिये -

क - योग्यता ख - अयोग्यता

ख - विधि घ - प्रवृत्तियाँ

4. वाच्य होते हैं-

क- दो ख - तीन

ग- चार घ - पाँच

प्रश्न -5 सुप् कितने हैं?

(क) 15 (ख) 18

(ग) 21 (घ) 25

प्रश्न -6 सम्बोधन में होती है-

(क) प्रथमा (ख) चतुर्थी

(ग) षष्ठी (घ) सप्तमी

प्रश्न -7 तिङ् कितने हैं?

(क) 10 (ख) 12

(ग) 18 (घ) 24

प्रश्न -8 परस्मैपद के कितने प्रत्यय हैं?

(क) 9 (ख) 12

(ग) 15 (घ) 18

प्रश्न -9 आधाम् प्रत्यय है -

(क) परस्मैपदी (ख) आत्मेनपदी

(ग) उभय पदी (घ) कोई नहीं

प्रश्न -10 संस्कृत में कितनी विभक्तियाँ हैं -

(क) 6 (ख) 7

(ग) 8 (घ) 9

2.7 सारांश

इस इकाई के पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं किसी शब्द का वाक्य में जो रूप प्रयुक्त होता है, उसे पद कहते है । महर्षि पाणिनि का कथन है कि सुबन्त, और तिङन्त पद हैं। जब किसी शब्द के आगे कोई सुप् तिङ् प्रत्यय जुड़ता है, तभी वह पद कहलाता है। संस्कृत में सु, औ, जस् आदि 21 प्रत्यय सुप् हैं। तिप्, तस्, झि, आदि 18 प्रत्यय तिङ् हैं। महर्षि पतंजलि का स्पष्ट अभिमत है कि न तो केवल प्रकृति का प्रयोग करना चाहिए और न प्रत्यय का क्योंकि वाक्य में प्रयुक्त पद दो भागों में विभक्त हैं। प्रथम भाग से अर्थ का ज्ञान होता है जो कि मूल रूप में रहता है। द्वितीय भाग मूलरूप से संयुक्त होकर अर्थ प्रकट करता है। प्रथम भाग को अर्थ तत्व और द्वितीय भाग को सम्बन्ध तत्व कहते हैं। इसी प्रकार संस्कृत वाक्य -रचना की प्रकृति भी मौलिक है। वाक्य की संरचना सार्थक शब्दसमूह के द्वारा होती है क्योंकि अनेक पदों के मिलने से वाक्य का निर्माण होता है। कभी-कभी एक पद भी अर्थ प्रकाशन में समर्थ हो जाता है। वाक्य आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि से युक्त पदसमूह से निर्मित है। संस्कृत में तीन वाच्य है - कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य। सामान्यतया वाक्य तीन प्रकार के होते हैं-साधारण वाक्य, संयुक्त वाक्य और मिश्रित वाक्य । जिसका अध्ययन आप इस इकाई के माध्यम से करेंगे।

2.8 शब्दावली

सुप्- संस्कृत में 21 प्रत्ययों को सुप् कहते हैं। प्रथमा विभक्ति के एकवचन के सु से लेकर सप्तमी विभक्ति के बहुवचन के सुप् पर्यन्त प्रत्ययों को सुप् कहते हैं।

विभक्ति- संस्कृत में प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, पष्ठी और सप्तमी को विभक्ति कहते हैं।

तिङ्ग - तिङ्ग प्रत्याहार मे तिप् से लेकर महिङ् तक 18 प्रत्यय होते हैं।

सम्बन्ध तत्व - सम्बन्ध तत्व अर्थात तत्वों के पारस्परिक सम्बन्ध को बताता है। वाक्य के गठन के लिए सम्बन्ध तत्व की आवश्यकता होती है।

अर्थ तत्व - इसके द्वारा अर्थ का ज्ञान होता है। यह मूल रूप में रहता है। स्वतन्त्र शब्द- स्वतन्त्र शब्द के प्रतीक अपनी स्वतन्त्र रखते रहते हैं। जैसे- अथ, इति, वा, व आदि।

प्रत्यय- अर्थ तत्व के साथ सम्बन्ध तत्व प्रारम्भ और अन्त में आवश्यकतानुसार जोड़े जाते हैं। इन्हें प्रत्यय कहते हैं। जैसे - विनता उदात्त ढक् - वैनतेय। बुद्धि मतुप् - बुद्धिमान।

अपश्रुति - अन्तर्मुखी विभक्ति प्रधान भाषाओं के अर्थतत्व अर्थात् मूल शब्द के मूल में सम्बन्ध तत्व मिल जाता है। जैसे - माया से मायावी।

द्वित्व- ध्वनियों या शब्दों की कई बार आवृत्तियों से सम्बन्ध तत्व का ज्ञान होता है। जैसे -पदपटाकरोति।

ध्वनिविनियोजन- अर्थ तत्व की ध्वनियों को कम करके अथवा बढ़ाकर सम्बन्ध तत्व को बना लिया जाता है। जैसे- प्रशस्य से श्रेष्ठ और ज्येष्ठ।

वाक्य- पदों के मिलने से वाक्य निर्मित होते हैं। आकांक्षा, योग्यता और सन्निधि युक्त पदों का समूह वाक्य कहलाता है।

पद- संस्कृत में सुबन्त और तिङन्त को पद कहा गया है। जब किसी शब्द या धातु से आगे कोई सुप् प्रत्यय या तिङ् प्रत्यय लगता है, तभी उसकी पद संज्ञा होती है ।

शब्द -किसी सार्थक ध्वनि समूह को शब्द कहते हैं ।

अग्र और पश्च-प्रथम पद को अग्र और बाद वाले पर को पश्च कहते हैं। इन्हें उद्देश्य और विधेय भी कहा जाता है। जैसे - रमेशः पठति। इस वाक्य में रमेशः उद्देश्य है और पठति विधेय हैं।

कर्तृवाच्य- कर्तृवाच्य वाक्य में कर्ता की प्रधानता होती है। इस वाच्य के कर्ता में प्रथमा और कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। क्रिया के पुरूष और वचन कर्ता के वचन और पुरूष के अनुसार प्रयुक्त होते हैं ।

कर्मवाच्य-कर्मवाच्य के वाक्य में कर्म की प्रधानता होती है। इसके कर्ता में तृतीया और कर्म में प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है। क्रिया के पुरूष और वचन कर्ता के पुरूष और वचन के अनुसार होते हैं।

भाववाच्य- भाववाच्य के कर्ता में तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है। उसमें कर्म नहीं होता है और क्रिया में सदैव प्रथम पुरूष का एकवचन में प्रयुक्त होता है ।

साधारण वाक्य- इसमें एक उद्देश्य और एक विधेय होता है ।

मिश्रित वाक्य- इस प्रकार के वाक्य में एक प्रधान उपवाक्य और दूसरे आश्रित उपवाक्य होते हैं।

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर:-

बोधप्रश्नोत्तर—1

1. क– सार्थक शब्द समूह से
2. ग – क्रिया
3. क – योग्यता
4. ख – तीन

5. ग – 21
6. क – प्रथमा
7. ग –18
8. क – 9
9. ख – आत्मनेपदी
10. ख – 7

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची:-

1. यास्क, निरूक्त, सम्पादक डा0 शिवबालक द्विवेदी (सं0 2057) - संस्कृत नवप्रभात न्यास, शारदानगर, कानपुर।
2. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2003 ई0) संस्कृत व्याकरणम् - अभिषेक प्रकाशन, शारदानगर, कानपुर।
3. श्रीवरदराजाचार्य (सं0 2017) मध्यसिद्धान्त कौमुदी - चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी।
4. आप्टे वाम शिवराम (1939 ई0) संस्कृत हिन्दी कोश- मोती लाल बनारसीदास बंग्लो रोड, जवाहरनगर दिल्ली।
5. द्विवेदी डा0 शिवबालक (1879ई0) संस्कृत भाषा विज्ञान- ग्रन्थम रामबाग, कानपुर।

2.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री:-

1. तिवारी डा0 भोलानाथ (2005 ई0) भाषाविज्ञान - किताबमहल सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद।
2. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2005 ई0) भाषा विज्ञान - ग्रन्थम रामबाग, कानपुर।
3. द्विवेदी डा0 शिवबालक (2010 ई0) संस्कृत रचना अनुवार कौमुदी, हंसा प्रकाशन, चांदपोल बाजार , जयपुर।
4. शास्त्री भीमसेन (सं0 2006) लघुसिद्धान्तकौमुदी - लाजपतराय मार्केट दिल्ली।
5. महर्षि पतंजलि (1969 ई0) व्याकरण महाभाष्य - मोतीलाल बनारसी दास बंग्लोरोड ,जवाहरनगर, वारणसी।
6. शास्त्री चारूदेव (1969 ई0) व्याकरण चन्द्रोदय, मोतीलाल बनारसीदास, बंग्लोरोड, जवाहरनगर ,वारणसी।
7. डा0 रामगोपाल (1973 ई0) वैदिक व्याकरण - नेशनल पब्लिशिंग हाउस दिल्ली।

2.13 निबन्धात्मक प्रश्न:-

1. संस्कृत पद-संरचना पर प्रकाश डालिए।
2. सम्बन्ध तत्त्वों का निरूपण कीजिए।
3. सम्बन्ध तत्त्वों और अर्थ तत्व के सम्बन्ध पर प्रकाश डालिये।
4. संस्कृत के वाच्यों का निरूपण कीजिए।
5. निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

1. सुबन्त	2.तिङन्त	3.परस्मैय पद प्रत्यय	4.आत्मनेपद प्रत्यय
5. सम्बन्ध -तत्व	6.अर्थतत्व	7.पुरूष	8.वचन
9. कारक	10. काल	11.लकार	

6. संस्कृत वाक्य संरचना पर प्रकाश डालिये ।
7. वाक्य के भेदों का निरूपण कीजिये ।
8. किस पदसमूह को वाक्य कहते हैं ?
9. निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

1. आकांक्षा	2. योग्यता	3. सन्निधि	4. कर्तृवाच्य
5. कर्मवाच्य	6. भाववाच्य	7. मिश्रित वाक्य	

इकाई-3 वर्णोच्चारण प्रक्रिया एवं प्रकार

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 वर्णोच्चारण प्रक्रिया एवं प्रकार
    3.3.1 वर्णमाला परिचय
    3.3.2 उच्चारण स्थान परिचय
    3.3.3 प्रयत्न परिचय
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 उपयोगी पुस्तकें
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

संस्कृत भाषा एवं साहित्य से सम्बन्धित यह प्रथम खण्ड की तृतीय इकाई। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप बता सकेंगे कि संस्कृत व्याकरण क्या है ? इसमें वर्णोच्चारण प्रक्रिया किस प्रकार से हुई ? इसके उच्चारण स्थान कौन-कौन हैं ? वर्णों का प्रयोजन क्या हैं। किसी भी भाषा को जानने के लिये उस भाषा की वर्णमाला का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। वर्णों का सुव्यवस्थित समूह ही वर्णमाला कहलाता है। भाषा का प्रथम स्वरूप उसके वर्णों में ही दिखता है, क्योंकि वर्णों से ही पदों का निर्माण होता है और पदों से वाक्यों का निर्माण होता है । भाषा में वाक्यों की ही प्रमुखता होती है। वाक्यों से ही विचारों का आदान प्रदान होता है । संस्कृत भाषा वैदिक और लौकिक भेद से दो प्रकार की है । वैदिक संस्कृत का प्रयोग वेदादि में होता है । लौकिक संस्कृत में छयालिस (46) वर्णों का प्रयोग हुआ है । यहाँ हम लौकिक संस्कृत के ही संदर्भ में इस प्रक्रिया को पढेंगे । इस इकाई के अध्ययन के बाद आप वर्णोच्चारण के मुख्य विषयों से समझा सकेंगे तथा आधुनिक भाषा विज्ञान के ध्वनि संबंधी चिन्तनों का सम्यक विश्लेषण कर पाएंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- दैनिक जीवन में प्रयोग करने वाले वर्णों का उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न जान पाएंगे ।
- संस्कृत वर्णमाला की वैज्ञानिकता से परिचित हो सकेंगे।
- संस्कृतवर्ण माला के वर्णों के विषय में जानेंगे।
- स्वर-व्यञ्जन-संयुक्त वर्णों के भेद के विषय में जानेंगे।
- वर्णों के उच्चारण स्थान को जानने में समर्थ हो सकेंगे।
- वर्णों के उच्चारण स्थान एवं प्रयत्नों को जानकर आधुनिक भाषा विज्ञान के ध्वनियों का ठीक प्रकार से विश्लेषण कर पाएंगे ।
- वर्णों का उच्चारण लेखनादि का अभ्यास भी करेंगे ।
- वर्णों से पदों की निर्माण विधि के विषय में जानेंगे।
- स्वर एवं व्यन्जन वर्णो का भलीभॉति ज्ञान प्राप्त कर लेने से भाषा के आधारभूत तत्त्वों को समझ पाएंगे।

3.3 वर्णोच्चारण प्रक्रिया एवं प्रकार

वर्णोच्चारण प्रक्रिया एवं प्रकार से सम्बन्धित यह तृतीय इकाई है । जैसा कि आप जानते हैं कि वर्णमाला में स्वर होते हैं, व्यञ्जन होते हैं और संयुक्त वर्ण भी होते हैं । किसी भी भाषा के वर्णों का सुव्यवस्थित समूह ही वर्णमाला कहलाता है । जीवन का व्यवहार हो या अध्ययन का विषय, वर्णों के ज्ञान के बिना बात आगे नहीं बढती । संस्कृत व्याकरण को पाणिनि ने सूत्रों में प्रस्तुत किया है । इस तथ्य को आप इसके पहले की इकाई में ठीक प्रकार से जान चुके हैं। इसके अतिरिक्त यहॉ उपयोगिता के अनुरूप वर्णों का उच्चारण स्थान आदि का सम्यक् विवेचन प्रस्तुत है ।

3.3.1 वर्णमाला परिचय

वर्णमाला में स्वर होते हैं, व्यञ्जन होते हैं और संयुक्त वर्ण भी होते हैं । किसी भी भाषा के वर्णों का सुव्यवस्थित समूह ही वर्णमाला कहलाता है।

1. स्वर वर्ण— वर्णों में स्वर वर्णो का प्रमुख स्थान है, ये कहीं पर स्वयं और कहीं पर ह्रस्व व दीर्घ मात्राओं के रूप में भी कार्य करते हैं। जिनका उच्चारण अन्य वर्णों की सहायता के बिना स्वतन्त्ररूप से होता है, वे ही स्वर

कहलाते हैं। स्वर वर्णो के संयोग से ही व्यंजन वर्णो का महत्त्व है अर्थात् किसी भी व्यंजन वर्ण का पूर्ण उच्चारण स्वर की सहायता से ही होता है। स्वर वर्ण निम्नलिखित हैं—

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ए, ऐ, ओ, और औ ये सभी (अं- अनुस्वारः, अः विसर्गः कुल 13 वर्णा) स्वर हैं। आङ्ग्ल-भाषा में ये सभी vowels कहलाते हैं। स्वरवर्ण बहुत प्रकार के होते हैं – कुछ ह्रस्वस्वर होते हैं, यथा – अ, इ, उ इत्यादि। कुछ दीर्घ स्वर होते हैं, यथा – आ, ई, ऊ इत्यादि। और कुछ प्लुतस्वर होते हैं,यथा – अ३३३! (सम्बोधन आदि में प्लुत स्वरों का प्रयोग होता है, यथा - हे सीते३३३ !अत्र ए३३३ यह प्लुत स्वर है)

ह्रस्व-स्वराः	दीर्घ-स्वराः	प्लुत-स्वराः
अ	आ	अ३३३, आ३३३
इ	ई	इ३३३, ई३३३
उ	ऊ	उ३३३, ऊ३३३
ऋ	ॠ	ऋ३३३, ॠ३३३
ऌ	ए	ए३३३
-	ऐ	ऐ३३३
-	ओ	ओ३३३
-	औ	औ३३३

2. व्यञ्जनवर्ण— जिस प्रकार स्वर वर्ण हैं उसी प्रकार भाषा के अभिवर्धन के लिए 33 व्यञ्जन वर्ण भी हैं। इनका उच्चारण एवं लेखन स्वर वर्णों की सहायता से होता है। इनको संस्कृत की भाषा में 'क' आदि वर्ग, अन्तस्थ और उष्म, भी कहा जाता है। ये निम्नलिखित हैं-

क, ख, ग, घ, ङ.	-	क वर्ग
च, छ, ज, झ, ´	-	च वर्ग
ट, ठ, ड, ढ, ण	-	ट वर्ग
त, थ, द, ध, न	-	त वर्ग
प, फ, ब, भ, म	-	प वर्ग
य, र, ल, व	-	अन्तस्थ
श, ष, स, ह	-	उष्म 33 वर्णाः।

व्यञ्जनों का उच्चारण स्वरों के साथ होता है, यथा – क् + अ = क। यहाँ क् व्यञ्जन के साथ सभी स्वरों को मिला कर नीचे प्रदर्शित किया गया है।

क् + अ = क	क् + आ = का	क् + इ = कि	क् + ई = की	क् + उ = कु	क् + ऊ = कू
क् + ऋ = कृ	क् + ॠ =कॄ	क् + ए = के	क् + ऐ = कै	क् + ओ = को	क् + औ = कौ
ग् + अ = ग	ग् + आ = गा	ग् + इ = गि	ग् + ई = गी	ग् + उ = गु	ग् + ऊ = गू
ग् + ऋ = गृ	ग् + ॠ =गॄ	ग् + ए = गे	ग् + ऐ = गै	ग् + ओ= गो	ग् + औ = कौ
र् + उ = रु	र् + ऊ = रू				
श् + ऋ = शृ	श् + ॠ=शॄ				

3. संयुक्तवर्ण— दो अथवा दो से अधिक व्यंजन वर्णों के मेल से संयुक्त-वर्णों का निर्माण होता है। संस्कृत में कई वर्ण ऐसे हैं जो संयुक्त होने पर ही उच्चरित होते हैं, इनका निर्माण व्यंजन वर्णो एवं स्वर वर्णो के संयोग ही होता है। ये निम्नलिखित हैं- क्ष, त्र, ज्ञ, द्य, श्र-

क्+ष्+अ - क्ष
त्+र्+अ - त्र
ज्+ञ्+अ - ज्ञ
द्+य्+अ - द्य
श्+र्+अ - श्र

3.3.2 उच्चारण स्थान परिचय

संस्कृत-भाषा की वर्णमाला अत्यधिक सुव्यवस्थित और वैज्ञानिक है। व्याकरण के महान् विद्वान् पाणिनि ने वर्ण रचना अत्यन्त वैज्ञानिक पद्धति से की है, जिसमें उन्होंने सभी वर्णों को मुख के उद्घाटन और बन्द होने की स्थिति के अनुसार ही संयोजन किया है। जिनको उच्चारण स्थान के नाम से जानते हैं। वर्णों के उच्चारण स्थान निम्नलिखित हैं-

उच्चारण- स्थानानि	**वर्णाः**
कण्ठः	**अ, आ, क, ख, ग, घ, ङ्, विसर्गः**
तालुः	**इ, ई , च, छ, ज, झ, ञ, य, श**
मूर्धा	**ऋॠ ,,ट, ठ, ड, ढ, ण, र, ष**
दन्ताः	**लृ, त, थ, द, ध, न, ल, स**
ओष्ठौ	**उ, ऊ, प, फ, ब, भ, म**
कण्ठ-तालू	**ए, ऐ**
कण्ठ-ओष्ठौ	**ओ, औ**
दन्त-ओष्ठौ	**व**
नासिका	**ङ, ञ, ण, न, म, अनुस्वारः**
जिह्वामूलीयः	**क और ख**
उपध्मानीय	**प और फ**

उच्चारण स्थान ग्यारह हैं -1. कण्ठ, 2. तालु 3. मूर्धा 4. दन्त, 5. ओष्ठ, 6.कण्ठ एवं तालु, 7. कण्ठ एवं ओष्ठ, 8. दन्त एवं ओष्ठ 9. नासिका, 10. जिह्वामूल और 11. उपध्मानीय। इनमें कण्ठ, तालु, मूर्धा, दन्त ओष्ठ, जिह्वामूल एवं नासिका स्वतन्त्र रूप से वर्णों के उच्चारण स्थान हैं, परन्तु मुखनासिका, कण्ठ तालु कण्ठ ओष्ठ एवं दन्त ओष्ठ मिश्रित रूप से ही वर्णों के उच्चारण में अपना योगदान देते हैं। अब हम अधोलिखित पंक्तियों के माध्यम से उच्चारण स्थान एवं उनसे उच्चरित होने वाले वर्णों को जानेंगे-

1. कण्ठ - अकार (दीर्घ 'आ' एवं प्लुत 'आ३' के साथ), कवर्ग (क, ख, ग, घ, ङ,)हकार और विसर्ग का उच्चारण स्थान कण्ठ है। **'अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः'** यहॉ ध्यातव्य है कि 'कु' से कवर्ग, 'चु' से चवर्ग, 'टु' से टवर्ग 'तु'तवर्ग एवं 'पु' से पवर्ग का बोध होता है।

2. तालु-इकार (दीर्घ 'ई' एवं प्लुत 'ई३' के साथ), चवर्ग (च, छ, ज, झ ञ), य और श का उच्चारण स्थान तालु है। **'इचुयशानां तालु'।**

3. मूर्धा - ऋ (दीर्घ 'ॠ' एंव प्लुत 'ऋ३' के साथ), टवर्ग (ट, ठ, ड, ढ,ण), (रेफ) और ष का उच्चारण स्थान मूर्धा हैं। **'ऋटुरषाणां मूर्धा'।**

4. दन्त - लृ (प्लुत 'लृ३' के साथ), तवर्ग (त, थ, द, ध, न), ल और स का उच्चारण स्थान दन्त है। जैसा कि हमने पहले जाना है कि लृ का दीर्घ नहीं होता, केवल ह्रस्व और प्लुत होता है। **'लृतुलसानां दन्ताः'।**

5. ओष्ठ - उ (दीर्घ 'ऊ' एव के साथ), पवर्ग (प, फ, ब, भ, म), और उपध्मानीय का उच्चारण स्थान ओष्ठ है। प, फ से पूर्व आधे विसर्ग के समान ध्वनि को उपध्मानीय कहते हैं। यथा- दन प दन फ'।

6. उपर्युक्त स्थानों के साथ नासिका - ञ, म, ङ, ण और न का उच्चाकरण स्थान नासिका भी है। तात्पर्य यह है कि 'ञ' का उच्चारण स्थान तालु हैं। किन्तु इसके साथ ही 'ञ' का उच्चारण स्थान नासिक भी है। निष्कर्ष यह है कि 'ञ' का उच्चारण स्थान ओष्ठ एवं नासिका, 'ङ' का उच्चारण स्थान कण्ठ एवं नासिका, 'ण' उच्चारण स्थान मूर्धा एवं नासिक तथा न का उच्चारण स्थान दन्त एवं नासिका समझना चाहिये। **'ञमङणनानां नासिका च'।**

7. कण्ठ एवं तालु - ए और ऐ का उच्चारण स्थान कण्ठ एवं तालु है। **'एदैतोः कण्ठतालु'।**

8. कण्ठ एवं ओष्ठ-ओ औ का उच्चारण स्थान कण्ठ एवं ओष्ठ है। **'ओदौतोः कण्ठोष्ठम्'।**

9. व का उच्चारण स्थान दन्त एवं ओष्ठ है। **'वकारस्य दन्तोष्ठम्'।**

10. **जिह्वामूल**-जिह्वामूलीय का उच्चारण स्थान जिह्वामूल है। 'दन क दन ख' इस प्रकार 'क' 'ख' से पूर्व आधे विसर्ग के समान ध्वनि को जिह्वामूलीय कहते हैं। जिह्वामूल का अर्थ है जिह्वा का उद्गम स्थान अर्थात् जहॉ से जिह्वा आरम्भ होती है। **'जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्'**।

11. **नासिका**-अनुस्वार का उच्चारण स्थान नासिका है। **'नासिकानुस्वारस्य'**। यहॉ तक हमने वर्णों के उच्चारण स्थान के विषय में जाना। आगे हम वर्णों के उच्चारण में लगने वाले प्रयत्न के विषय में जानेंगे।

3.3.3 प्रयत्न परिचय

वर्णों के उच्चारण में जो चेष्ठा करनी पड़ती है उसे प्रयत्न कहने हैं। 'प्रकृष्टो यत्रः प्रयत्नः' अर्थात् वर्णों के उच्चारण से पहले सुनियोजित एवं सुविचारित रूप से जो चेष्टा होती है वह प्रयत्न कहलाता है। यह प्रयत्न दो प्रकार का है 'यत्नो द्विधा'- आभ्यन्तरो बाह्यश्च। वर्णों के मुख के बाहर आने से पहले मुख के अन्दर जो प्रयत्न होता है उसे आभ्यन्तर कहते हैं। यह प्रयत्न पहले होता है तथा इसके विना बाह्य प्रयत्न निष्फल है। बाह्य प्रयत्न वह है जो वर्णों के मुख से बाहर निकलते समय किया जाता है। उसका अनुभव सुननेवाला भी कर सकता है। प्रयत्नों को निम्नलिखित प्रकार से जान सकते हैं।-

आभ्यन्तर प्रयत्न - यह पॉच प्रकार का होता है। **'आद्यः पंचधा - स्पृष्टेषत्स्पृष्टेषद्विवृतसंवृतभेदात्'**

1. स्पृष्ट, 2. ईषत्स्पृष्ट, 3. ईषद्विवृत, 4. विवृत और 5. संवृत।

1.स्पृष्ट - स्पृष्ट प्रयत्न से तात्पर्य है वर्णो के उच्चारण के समय जिह्वा के द्वारा तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं स्पर्शानाम्'। 'क' से लेकर 'म' तक अर्थात् कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग के अन्तर्गत आनेवाले पच्चीस वर्ण स्पर्श कहलाते हैं। इन पच्चीस वर्णो के उच्चारण में जो प्रयत्न लगता है वह स्पृष्ट है।

2. ईषत्स्पृष्ट - इसका तात्पर्य है जिह्वा के द्वारा उच्चारण स्थानों के कुछ स्पर्श से। ईषत्स्पृष्ट अन्तःस्थों का होता है-'ईषत्स्पृष्टमन्तःस्थानाम्'।'यण्' प्रत्याहार के अन्तर्गत आनेवाले वर्ण यथा-य व र ल अन्तःस्थ कहलाते हैं। अन्तःस्थ का अर्थ है बीच में रहनेवाला। य, व, र, ल ये चार वर्ण स्वर और व्यंजन के बीच में स्थित है इसीलिए अन्तःस्थ कहलाते हैं। माहेश्वर सूत्रों के अन्तर्गत भी पाणिनि ने स्वरों के पश्चात एवं व्यन्जनों से पहले अर्थात् दोनों के बीच में अन्तःस्थों य,व,र,ल को स्थान दिया है। इस प्रकार य, व, र, ल स्वर एवं व्यंजन दोनों हैं, इन अन्तःस्थों का प्रयोग सन्धि प्रकरण में जान पाएंगे।इनके उच्चारण में जो प्रयत्न लगता है उसे ईषत्स्पृष्ट कहते हैं।

3. ईषद्विवृत - इसका तात्पर्य है वर्णो के उच्चारण के समय कण्ठ का थोड़ा खुलना। ईषद्विवृत उष्म वर्णों का होता है-'ईषद्विवृतमुष्मणाम्'। 'शल्' प्रत्याहार के अन्तर्गत आनेवाले श, ष, स, ह वर्ण ऊष्म कहलाते हैं-'शल् उष्माणः। इनके उच्चारण के लिये लगने वाले प्रयत्न को ईषद्विवृत कहते हैं।

4. विवृत - इस प्रयत्न से तात्पर्य है वर्णों के उच्चारण के समय कण्ठ का पूर्ण रूप से खुला रहना विवृत स्वरों अर्थात् अ, इ,उ,ऋ,ऌ, ए, ओ, ऐ तथा औ वर्णों का होता है-' विवृतं स्वराणाम् '। इन वर्णों के उच्चारण में लगने वाला प्रयत्न ही विवृत कहलाता है।

5.संवृत - जब ह्रस्व 'अकार' का सिद्ध रूप में प्रयोग होता है तब वहॉ संवृत प्रयत्न होता हैं, किन्तु प्रक्रिया की अवस्था में उसमें विवृत प्रयत्न होता है-'प्रक्रिया दशायां तु विवृतमेव'। यथा -'दण्ड आढकम्' यहॉ 'दण्ड' में 'ड्' के साथ आने वाला 'अ' का संवृत प्रयत्न है तथा 'आढकम्' का आदि वर्ण 'आ' का विवृत। लेकिन यहॉ समस्या यह है कि संवृत 'अ' तथा 'आ' की सवर्ण संज्ञा नहीं होने से अर्थात् दोनों के प्रयत्न समान नही होने से 'अकः सवर्णे दीर्घः; सूत्र से दीर्घ नही हो सकता, क्योंकि सवर्ण स्वर परे रहने पर ही दीर्घ संभव है। इसीलिये संधि काल में 'अ' अपने सिद्ध स्वरूप को त्यागकर साधन अवस्था में आ जाता है। साधन अवस्था ही प्रक्रिया की अवस्था है । इस प्रकार प्रक्रिया अवस्था में आने से दोनों में सवर्ण संज्ञा होती है जिसके कारण 'दण्डआढकम् में 'दण्डआढकम्' में 'दण्ड' का 'ड' के साथ रहने वाले 'अ' एवं 'आढकम् के आदि वर्ण 'आ' का दीर्घ होकर 'दण्डाढकम्' यह रूप सिद्ध होता है।

आभ्यन्तर प्रयत्न तालिका—

क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न प फ ब भ म - क से लेकर म तक वर्णों का स्पृष्ट प्रयत्न होता है। य व र ल इन वर्णों का ईषत्स्पृष्ट प्रयत्न होता है। श ष स ह इन वर्णों का ईषद्विवृत, प्रयत्न होता है। अ इ उ ऋ लृ ऐ ओ ऐ औ इन वर्णों का विवृत, प्रयत्न होता है।

वाह्य प्रयत्न- वाह्य प्रयत्न के ग्यारह भेद होते हैं –

1. विवार 2.संवार 3. श्वास 4.नाद 5.घोष 6. अघोष, 7. अल्पप्राण, 8. महाप्राण, 9.उदात्त, 10 अनुदात और 11. स्वरित।

खरो विवार: श्वासा अघोषाश्च – (खर् ख फ छ ठ थ च ट त क प श ष स ह) प्रत्याहार में आने वाले वर्णो का विवार श्वास अघोष प्रयत्नहोता है।

हश: संवारा: नादा घोषाश्च – हश् (ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द) प्रत्याहार में आने वाले वर्णों का संवार नाद और घोष प्रयत्न होता है।

हश् (ह य व र ल ञ म ङ ण न झ भ घ ढ ध ज ब ग ड द) प्रत्याहार में आने वाले वर्णों का संवार नाद और घोष प्रयत्न होता है।

अच् प्रत्याहार (अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ) के वर्णों का .उदात्त, अनुदात और स्वरित प्रयत्न होता है। वर्गाणां प्रथम- तृतीय पंचमा यणश्चाल्पप्राणा: वर्गों के प्रथम - तृतीय पंचम (यथा कवर्ग में प्रथम वर्ण क, तृतीय वर्ण ग, पंचम वर्ण ङ, यण्- य व र ल) वर्णों तथा यण् प्रत्याहार के वर्णों का अल्पप्राण होता है।

वर्गाणां द्वितीय- चतुर्थौ शलश्च महाप्राणा: वर्गों के द्वितीय- चतुर्थ (यथा कवर्ग में द्वितीय वर्ण ख, चतुर्थ वर्ण घ, शल्- श ष स ह) वर्णों तथा शल् प्रत्याहार के वर्णो का महाप्राण होता है।

1. विवार - जिन वर्णों के उच्चारण करते समय मुख खुलता है उन वर्णों प्रयत्न होता है।
2. संवार - जिन वर्णों के उच्चारण करते समय मुख संकुचित रहता है उन वर्णों का संवार प्रयत्न होता है।
3. श्वास - जिन वर्णों के उच्चारण करते समय भीतर की वायु स्वरतन्त्री को बिना झंकृत करती हुई बाहर आ जाती है, उन वर्णों के लिए यह श्वास प्रयत्न होता है।
4. नाद - जिन वर्णो के उच्चारण करते समय भीतर की वायु स्वरतन्त्री को झंकृत करती हुई बाहर आ जाती है उन वर्णो के लिए यह नाद प्रयत्न होता है।
5. घोषः- जिन वर्णों के उच्चारण में गॅूज होती है वह घोष -प्रयत्न होता है।
6. अघोष - जिन वर्णों के उच्चारण में गूज नहीं होती है वह अघोष प्रयत्न होता है।
7. अल्पप्राण-वर्णों के उच्चारण में प्राणवायु का अल्प प्रयोग अल्पप्राण प्रयत्न है।
8.महाप्राण- वर्णों के उच्चारण में प्राणवायु का अधिक उपयोग महाप्राण प्रयत्न कहलाता है।
9. उदात्त - तालु आदि स्थानों के ऊपरी भाग से उच्चारण किया जाना उदात्त प्रयत्न कहलाता है

10.अनुदात्त - तालु अदि स्थानों के निम्न भाग से उच्चारण किया जाना अनुदात्त प्रयत्न कहलाता है।

11. स्वरित- तालु आदि स्थानों के मध्य भाग से उच्चारण किया जाना स्वरित प्रयत्न कहलाता है। यहॉ यह जानना आवश्यक है कि मुख के भीतर कण्ठ, तालु आदि स्थान हैं। उन पर जब भीतर से प्रेरित वायु का आघात होता है तब वर्णों की उत्पत्ति होती है। उन सभी स्थानों के तीन भाग है - ऊपर, नीचे तथा मध्य। इसी दृष्टि से उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित प्रयत्नों को जानना चाहिये।

अनुस्वार और विसर्ग: ये दो हमेशा स्वर के ही आगे आते हैं, व्यंजनों के नहीं - अं अः इत्यचः परावनुस्वारविसर्गौ। उपरिवर्णित उच्चारण स्थानों एवं आभ्यन्तर प्रयत्नों का मुख्य प्रयोजन सवर्ण संज्ञा की सिद्धि है। बाह्य प्रयत्नों का सवर्ण संज्ञा में कोई उपयोग नहीं है। सवर्ण संज्ञा किस प्रकार होती है- इस विषय में पाणिनि का कथन है कि तालु आदि उच्चारण स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न ये दोनों जिस-जिस वर्णों के समान हों वे वर्ण परस्पर सवर्ण संज्ञा वाले होते हैं।

यहॉ 'दैत्य अरिः' इस स्थिति में 'य' के बाद आनेवाले ' अ ' के परे 'अरि' का आदि वर्ण 'अ' है, यहॉ पहले 'अ' और बाद आनेवाले दूसरे ' अ ' परस्पर सवर्ण हैं, क्योंकि दूसरे 'अ' का उच्चारण स्थान और प्रयत्न वही है जो पहले 'अ' का है। इस प्रकार दोनों 'अ' के उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न के समान होने से दोनों सवर्ण संज्ञक हुए एवं परिणामस्वरूप दोनों में दीर्घ सन्धि सम्भव हुई। यहॉ एक अपवाद है। 'ऋ' और ' ऌ ' वर्णो के उच्चारण स्थान भिन्न होते हैं, फिर भी इनकी परस्पर सवर्ण संज्ञा होती है- 'ऋऌवर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्' सवर्ण संज्ञा का प्रयोग संधि प्रकरण में विशेष रूप से दिखाया जाएगा।

अभ्यासार्थ प्रश्न—1

बहुविकल्पात्मक प्रश्न

1. प्रयत्न होते हैं।

(अ) दश (ब) चार (स) नव (द) दो

2. आभ्यन्तर प्रयत्न होता है।

(अ) दश (ब) चार (स) नव (द)पाच

3. बाह्य प्रयत्न होते हैं।

(अ) दश (ब) चार (स) नव (द) ग्यारह

4. त्रिमुनि हैं ?

क.पाणिनि ख. कात्यायन ग. पतंजलि घ.उक्त सभी

अभ्यासार्थ प्रश्न—2

निम्नलिखित रिक्तस्थानों की पूर्ति करें-

क. ह का उच्चारण स्थान.....है।

ख. तालु.....वर्णो का उच्चारण स्थान है।

ग. अनुस्वार का उच्चारण स्थान.....है।

घ. पवर्ग के अन्तर्गत .....वर्ण आते हैं।

ड़. प्रयत्न के भेद..... हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न—3

निम्नलिखित विकल्पों में से सही उत्तर चुने-

1. 'ष' का उच्चारण स्थान है-

(क) दन्त (ख) मूर्धा

(ग) तालु (घ) ओष्ठ

2. सवर्ण संज्ञा के लिये आवश्यक है-

(क) उच्चारण स्थान एवं आभ्यन्तर प्रयत्न

(ख) प्रत्याहार एवं उपदेश

(ग) बाह्यप्रयत्न एवं उच्चारण स्थान

(घ) संयोग एवं उदात्त

3.5 सारांश

संस्कृत भाषा शिक्षण की प्रथम सीढ़ी है – वर्णमाला का ज्ञान होना। वर्णमाला के ज्ञान से शुद्ध उच्चारण होता है, और भाषा सुसंस्कृतमय बनती है। संस्कृतभाषा की यह बड़ी विशेषता है कि इसमें जो लिखा जाता है, उसे वैसा ही पढ़ा जाता है। इसके पीछे कारण इसकी वर्णमाला, और वर्णमाला का शुद्ध उच्चारणकरना ही है। वर्णों के निश्चित उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न होते हैं। उच्चारण स्थान एवं प्रयत्न की समानता से वर्णों में सवर्णता आती है जिससे स्वर सन्धि सम्भव हो पाती है। संस्कृतभाषा की वर्णमाला अत्यधिक वैज्ञानिक और सुव्यवस्थित है। इसपाठ में हमने संस्कृतवर्णमाला के अन्तर्गतस्वर वर्ण, व्यञ्जन वर्ण और संयुक्त वर्णों को पढ़ा। वर्णों के उच्चारण स्थानों को जाना।

3.6 शब्दावली

1. प्रत्यय: धातु एवं शब्द के आगे जुड़ने वाले सुप्, तिङ् आदि प्रत्यय कहलाते हैं।

2. समय के अंश विशेष को मात्रा कहते हैं। सामान्यतः पलक गिरने अथवा चुटकी बजाने में लगने वाले समय से एक मात्रा का बोध होता है।

3.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न—1

1. (द) 2. (द) 3. (द) 4.(घ)

अभ्यास प्रश्न—2

(क) कण्ठ

(ख) इ, च, छ, ज, झ, ञ, य तथा श।

(ग) नासिका

(घ) प, फ ब, भ तथा म।

(ड़) आभ्यन्तर एवं बाह्य।

अभ्यास प्रश्न—3

1. (क) मूर्धा

2. (ख) उच्चारण स्थान एवं आभ्यन्तर प्रयत्न।

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वरदराज, लघुसिद्धान्तकौमुदी, व्याख्याकार एवं सम्पादक श्री धरानन्द शास्त्री (2000)मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली।

2. वरदराज, लघुसिद्धान्तकौमुदी, व्याख्याकार-महेशसिंह कुशवाहा, (1994) चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।

3.9 उपयोगी पुस्तकें

1. मिश्र कमलाकान्त, व्याकरण सौरभम्, (2002) एन. सी.ई.आर.टी. नई दिल्ली।

2. शास्त्री, चक्रधर नौटियाल 'हंस', बृहद् अनुवादचन्द्रिका, (1984) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

3. शास्त्री, नेमिचन्द्र, स्नातक संस्कृत व्याकरण, (संवत् 2032)ज्ञानदा प्रकाशन, पटना
4. संस्कृतरचना – श्री वामन शिवराम आप्टे - चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वर्णमाला से आप क्या समझते है।
2. वर्णों के उच्चारण स्थान को प्रस्तुत करें।
3. प्रयत्न से आप क्या समझते है।
4. आभ्यन्तर प्रयत्न पर टिप्पणी लिखें।
5. बाह्य प्रयत्न की भेद सहित प्रस्तुति करें।
6. व्याख्या करें।

(क) स्वर वर्ण

(ख) व्यञ्जन वर्ण

(ग) संयुक्त वर्ण

7. वर्णोच्चारण प्रक्रिया पर एक निबन्ध लिखें।

इकाई-4 कारक एवं विभक्ति

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 कारक परिचय (कर्तृ-कर्म एवं क्रिया)
4.4 विभक्ति परिचय
    4.4.1 प्रथमा एवं सम्बोधनं
    4.4.2 द्वितीया
    4.4.3 तृतीया
    4.4.4 चतुर्थी
    4.4.5 पञ्चमी
    4.4.6 षष्ठी
    4.4.7 सप्तमी
4.5 सारांश
4.6 शब्दावली
4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 उपयोगी पुस्तकें
4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

संस्कृत भाषा एवं साहित्य के अध्ययन से सम्बन्धित प्रथम खण्ड की चतुर्थ इकाई है, इस इकाई का विषय है कारक एवं विभक्ति है। व्याकरणशास्त्र के प्रणेता पाणिनि, कात्यायन एवं पतञ्जलि हैं। इन प्रणेताओं ने बड़े स्पष्ट रूप से विस्तार से कारक एवं विभक्ति के बारे में चर्चा की है। सामान्य रूप से वाक्य निर्माण की सामग्री के लिए कर्ता, कर्म और क्रिया की आवश्यकता होती है। वाक्य में कर्ता किसे कहते हैं, कर्म किसे कहते हैं, क्रिया पद की पहचान क्या है ? कर्ता में कौन सी विभक्ति, कर्म में कौन सी विभक्ति, क्रियापद में कौन सा वचन होता है ? प्रस्तुत इकाई में आप के अध्ययनार्थ इन्हीं विषयों की विस्तार से चर्चा की गयी है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- कारक किसे कहते है ? इनकी विशेषता क्या है आप बता सकेंगे।
- विभक्ति क्या है इनकी विशेषता क्या है ? आप बता सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप का भाषा कौशल विकसित होगा।
- वाक्य निर्माण के लिये कारक में कौन से नियम हैं, उनके अनुसार वाक्यों का अभ्यास करेंगे।
- इस पाठ से व्याकरण के अनुरूप भाषा पर अधिकार प्राप्त होगा।
- कर्ता, कर्म और क्रिया की आवश्यकता के विषय में जान सकेंगे। उनके अनुसार वाक्य निर्माण विधि सीखेंगे।

4.3 कारक परिचय (कर्तृ-कर्म एवं क्रिया)

'क्रियाजनकत्वम् कारकत्वम्' जो क्रिया का जनक हो उसे कारक कहते है। जैसा कि आप जानते हैं कि बहुत से अक्षरों के मिलन से एक शब्द बनता है। जैसे – अजय यहां पर अ , ज और य तीनों मिलकर के अजय शब्द को बनाते हैं। उसी प्रकार अनेक शब्द मिलकर के एक वाक्य की रचना करते हैं। जैसे – छात्रः विद्यालयं गच्छति। यहां पर छात्राः, विद्यालयं, गच्छति , इन तीनों के पदों का समूह वाक्य कहा गया। अतः इसे हम वाक्य कह सकते हैं। सामान्य रूप से वाक्य निर्माण की सामग्री के लिए कर्ता कर्म और क्रिया की आवश्यकता होती है। वाक्य में कर्ता किसे कहते हैं, कर्म किसे कहते हैं, क्रिया पद की पहचान क्या है ? कर्ता में कौन सी विभक्ति, कर्म में कौन सी विभक्ति, क्रियापद में कौन सा वचन होता है ? वाक्य क्या है ? वाक्य में कर्ता कौन होता है ? वाक्य में कर्ता वह होता है जो क्रिया को उत्पन्न करे। जैसे- 'अध्यापक जाता है' इस वाक्य में जाना क्रिया को अध्यापक उत्पन्न करता है क्योंकि अध्यापक के बिना जाना क्रिया संभव नहीं है जब तक अध्यापक अपने पैरों का उत्थापन अर्थात् बढ़ाना नहीं करता है तब तक जाना नही हो सकता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि जो क्रिया को उत्पन्न करे वह कर्ता होता है या जो क्रिया से युक्त हो उसे कर्ता कहते हैं। वाक्य में कर्म पद का मतलब संपूर्ण वाक्य में जो वस्तु कर्ता को सर्वाधिक रूप में अभीष्ट हो अर्थात् प्रिय हो या कर्ता जिस वस्तु को प्राप्त करने में उत्सुक तथा लालायित दिखलाई पड़े। उस वस्तु को कर्म कहते हैं, ऐसा समझें। उदाहरण- 'भिखारी चावल खाता है' यहां पर कर्ता भिखारी सर्वाधिक रूप में चावल रूप पदार्थ को प्राप्त करना चाहता है। इसलिए यहां ओदन रूप पदार्थ की कर्म संज्ञ होती है। क्रिया के विषय में भी आप लोग जानें, क्रिया के बिना कर्ता तथा कर्ता के बिना क्रिया की कदापि वाक्य में सम्भावना नहीं की जा सकती। पुनः वाक्य में जिन शब्दों की उपस्थिति से किसी कार्य का आरंभ या समाप्ति या स्थिति आदि का ज्ञान हो गए उसे क्रियाबोधक पद समझना चाहिए। क्रिया के उत्पादक को कर्ता कहते हैं। क्रिया के साथ मुख्य रूप से जिसका संबंध होता है उसे कर्ता कहते हैं। अर्थात् कर्ता क्रिया द्वारा जिस वस्तु को प्राप्त करना चाहता है उसे कर्म कहते हैं। क्रिया के माध्यम से

कर्ता की सर्वाधिक रूप में जिस पर इच्छा होती है उसको कर्म कहते हैं। इसी प्रकार कर्ता सर्वाधिक रूप में जिस वस्तु की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील दिखाई पड़ता है उसे कर्म कहते हैं। संस्कृतव्याकरण में छ: ही कारक माने गये हैं। सम्बन्ध एवं सम्बोधन की कारक में गणना नहीं है, सम्बन्ध कारक का क्रिया के साथ किसी प्रकार से जुड़ाव न होने से तथा सम्बोधन का कर्तृकारक में ही अन्तर्भाव होने से उपर्युक्त कारक ही ग्राह्य हैं। इन्हीं सभी बिन्दुओं को हम आगे के क्रम में विस्तार पूर्वक जानेंगे।

क्रम	कारक	कारक चिह्न
1	कर्ता कारक	ने
2	कर्म कारक	को
3	करण कारक	ने, से, के द्वारा
4	सम्प्रदान कारक	को, के लिए
5	अपादान कारक	से (अलग होने के अर्थ में)
6	अधिकरण कारक	में, पे, पर
7	सम्बन्ध कारक	का, के, की, रा, रे, री, ना, ने, नी
8	सम्बोधन कारक	हे, भो, अरे इत्यादि

नाम या सुबन्त शब्दों के साथ सात विभक्तियों के तीन वचनों में 21 प्रत्यय लगते हैं। इन विभक्तियों के साधारण ज्ञान प्राप्त करने के लिए हम यहा पर 'राम' शब्द के रूप दे रहे हैं।

पुंल्लिङ्ग राम शब्द

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा	रामः	रामौ	रामाः
द्वितीया	रामम्	रामौ	रामान्
तृतीया	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः
चतुर्थी	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
पंचमी	रामात्	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
षष्ठी	रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
सप्तमी	रामे	रामयोः	रामेषु
सम्बोधन	हे राम	हे रामौ	हे रामाः

सुबन्त के 21 प्रत्यय

	एकवचन	**द्विवचन**	**बहुवचन**
प्रथमा (ने)	सु	औ	जस्
द्वितीया (को)	अम	औट्	शस्
तृतीया (से के द्वारा)	टा	भ्याम्	भिस
चतुर्थी (के लिए)	ङे	भ्याम्	भ्यस्
पंचमी (से अलग)	ङसि	भ्याम्	भ्यस्
षष्ठी (का,की, के)	ङस्	ओस्	आम्
सप्तमी (मे,पै,पर)	ङि	ओस्	सुप्

4.4 विभक्ति परिचय

संस्कृत में वाक्यनिर्माण के लिए विभक्ति का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विभक्ति के ज्ञान से हम वाक्य का निर्माण कर सकते हैं। संस्कृत व्याकरण में सात विभक्तियाँ होती हैं सम्बोधन की गणना प्रथमा विभक्ति में ही होती हैं। जैसे— रमेशः पुस्तकं पठति- रमेश पुस्तक पढता है। इस वाक्य में पढने वाला रमेश है। रामः वनम् अगच्छत्- राम वन को गया। इस वाक्य में वन को जाने वाला राम है। उक्त दोनों वाक्यों में पढने वाला रमेश है और वन को जाने वाला राम है। क्रिया को करने वाले को कर्ता कहते हैं। अतः दोनों वाक्यों में रमेश और राम कर्ता हैं।

प्रथम वाक्य में पढने का विषय पुस्तक है तथा दूसरे वाक्य जाने का विषय वन है। पुस्तक और वन जाने के लिए ही कर्ताओं ने क्रियायें की, अतः मुख्यतः जो अभीष्ट होता है कर्ता उसी के लिए क्रिया को करता है, उसको कर्म कहते हैं। **नृपः हस्ताभ्यां भिक्षुकेभ्यः धनं ददाति-** राजा भिखारियों को धन देता है। इस वाक्य में राजा ने हाथ से दान दिया अतः हाथ से करण कारण हुआ तथा दान देने की क्रिया ब्राह्मणों के लिए हुयी, अतः सम्प्रदान कारक हुआ। उपर्युक्त वाक्यों में पढ़ना, वन जाना, देना आदि क्रियाओं के सम्पादन में जिन कर्ता, कर्म आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है उन्हें कारक कहते हैं। कारक वह वस्तु है जिसका प्रयोग क्रिया की पूर्ति के लिए किया जाता है। कारकों को जोड़ने के लिए कारक चिह्न का प्रयोग किया जाता है। कारकों के चिह्न को विभक्तियां कहते हैं तथा कारक का सम्बन्ध क्रिया से होता है। कारकों को आप तृतीय खण्ड में विस्तृत रूप से पढेगे। यहाँ पर केवल विभक्तियों का सामान्य बोध कराया जा रहा है।

विभक्तियों का स्वरूप

विभक्ति	अर्थ	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ने	सु	औ	जस् (अः)
द्वितीया	को	अम्	औट् (औ)	शस् (अः)
तृतीया	से, के द्वारा	टा (इन)	भ्याम्	भिस् (भिः)
चतुर्थी	के लिए	ङे (ए)	भ्याम्	भ्यस् (भ्यः)
पंचमी	से अलग	ङसि (आत्	भ्याम्	भ्यस(भ्यः)
षष्ठी	का, के, की	ङस् (स्य)	ओस् (ओः)	आम्
सप्तमी	में, पै, पर	ङि (इ)	ओस् (ओः)	सुप्

इन सात विभक्तियों तथा 21 प्रत्ययों को क्रमशः जोड़कर के रूप बनाये जाते हैं, यथा-राम शब्द से प्रथमा के एकवचन में रूप बनाना है तो सबसे पहले प्रथमा के एक वचन सु प्रत्यय लायेंगे, सु में उकार की उपदेशेऽजनुनासिक इत् इस सूत्र से इत्संज्ञा तस्य लोपः से लोप करते है और स् के स्थान में विसर्ग करते हैं तो रामः ऐसा प्रयोग बनता है। अन्य भी रूप ऐसे जोड़कर चलाया जाता है। इसे शब्द रूप कहते हैं। जैसे— राम शब्द का वाक्य में परिवर्तन

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा विभक्ति	रामः (राम)	रामौ (दो राम)	रामौ (रामो ने)
द्वितीया विभक्ति	रामम् (राम को)	रामौ (दो राम को)	रामान् (रामों को)
तृतीय विभक्ति	रामेण (राम से)	रामभ्याम् (दो रामसे	रामै: (रामो से)
चतुर्थी विभक्ति	रामाय (राम के लिए)	रामाभ्याम् (दो राम केलिए)	रामेभ्य: (रामो के लिए)
पंचमी विभक्ति	रामात् (राम से)	रामाभ्याम्(दो राम से)	रामेभ्य : (रामो से)
षष्ठी विभक्ति	रामस्य (राम का)	रामयो: (दो राम का)	रामाणाम् (रामो के)
सप्तमी विभक्ति	रामे (राम में)	रामयो:(दो राम में)	रामेषु (रामो में)
सम्बोधन विभक्ति	हे राम (हे राम)	हे रामौ (हे दो राम)	हे रामा (हे रामों)

जितने भी अकारान्त पुल्लिंग रूप होंगे सब राम के समान होंगे। जैसे— रमेश, सुरेश, उमेश, दिनेश आदि। जैसे—कुछ उदाहरणों के माध्यम से इसे समझने का प्रयास करते हैं।

शब्द	अर्थ
रामः गृहं गच्छति।	राम घर जाता है।
रामाः पुस्तकालये पठन्ति।	बहुत से राम विद्यालय में पढ़ते हैं।
त्वं रामं पश्य।	तुम राम को देखों।
तौ रामौ पश्यतः।	वे दोनों दो राम को देखो।
ते रामान् पश्यन्ति।	वे लोग रामों को देखते हैं।
यूयं रामेण क्रीडथ।	तुम लोग राम से खेलते हो।

उपपदविभक्ति—

इन प्रथमा आदि विभक्तियों से कारकों का ही निर्देश नहीं होता है अपितु इसके अतिरिक्त भी किसी विशेष शब्द के अर्थ के संयोग के कारण किसी विभक्ति का प्रयोग होता है तब उस विभक्ति को उपपद विभक्ति कहते हैं। **जैसे 'बालकेन सह माता गच्छति'-बालक के साथ माता जाती है।** यहाँ पर 'सह' का योग होने से तृतीया विभक्ति हो गयी। इसी प्रकार '**भवनम् उभयतः वृक्षाः सन्ति'-मकान के दोनों ओर पेड़ हैं,** इस वाक्य में 'मकान के' इस 'के' से यहाँ पर षष्ठी विभक्ति होनी चाहिए थी किन्तु 'उभयतः' का संयोग होने से 'भवनम्' में द्वितीया हो गयी।

4.4.1 प्रथमा एवं सम्बोधनं

जिस शब्द के सुनने से जिन अर्थों का सामान्यतः भान होता है वे प्रातिपदिकार्थ होते हैं। जैसे- राम शब्द सुनकर राम व्यक्ति में होने वाले संख्या, पुंल्लिंग, जाति, कर्ता आदि से सम्बद्ध भान, ये ही प्रातिपदिकार्थ हैं। परिमाणार्थबोधक, संख्यार्थवाचक (नाप, तौल) शब्दों के निर्देश होने पर प्रथमाविभक्ति का प्रयोग किया जाता है। **प्रातिपदिकार्थ लिङ्गपरिमाण वचन मात्रे प्रथमा 2/3/46।।** प्रातिपदिकार्थ मात्र में, लिंग मात्र की अधिकता होने पर, परिमाणमात्र में और वचन में प्रथमा विभक्ति होती है।

प्रातिपदिकार्थः – रामः, कृष्णः, गौतमः, वृक्षः आदिः।

लिङ्गं – नरः (पुंल्लिङ्गं), नारी (स्त्रीलिङ्गं), पुस्तकम् (नपुंसकलिङ्गम्) एवमेव तटः, तटी, तटम् आदि।

परिमाणं (Measurement) – द्रोणः (सोलह सेर, एक नाप) व्रीहिः (धान)।

वचनं (संख्या) – एकः, द्वौ, बहवः, चत्वारः, पञ्च।

सम्बोधनम् – 'सम्बोधन-अर्थे प्रथमा विभक्तिः प्रयुज्यते' किसी भी व्यक्ति को अपनी ओर करके कहना ही सम्बोधन कहलाता है। सम्बोधन अर्थ में प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे– भो छात्राः ! उत्तिष्ठत (ऐ छात्रों खड़े हो जाओ)। हे कृष्ण ! अत्र आगच्छ (हे कृष्ण यहाँ आओ)

4.4.2 द्वितीया

द्वितीया विभक्ति के ज्ञान करने के लिए कर्म पद का ज्ञान आवश्यक होता है कर्म पद के ज्ञान के बाद द्वितीया विभक्ति का ज्ञान किया जा सकता है। **कर्तुरीप्सिततमं कर्म 1/4/49** कर्ता को जो अपनी क्रिया के द्वारा अत्यन्त इष्ट अर्थात् जिसको विशेष रूप से अपना चाहता है, उस कारक की कर्म संज्ञा होती है। क्योंकि जो जो संज्ञावान् होता है वो वो फलवान् होता है इस नियम के तहत कर्म संज्ञा होने के बाद ही विभक्ति आती है। जैसे- मोहन मंदिर जाता है मोहन कर्ता, गमन क्रिया द्वारा मंदिर रूप वस्तु को प्राप्त करने हेतु प्रयासरत होता है अतः अतः मंदिर वाचक देवालय पद की कर्म संज्ञा होती है उसके बाद द्वितीया विभक्ति आती है।

कर्मणि द्वितीया 2/3/2 ।। अनुक्त कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है। हरिं भजति। इस उदाहरण में हरि अनुक्त कर्म है, उसमे द्वितीया विभक्ति होती है। क्योकि 'भजति' क्रिया के द्वारा साक्षात् सम्बन्ध भक्तादि कारक का है कर्म का नहीं।

अकथितं च 1/4/51।।

इस सूत्र के द्वारा जितने भी अकथित (अविवक्षित) जो कारक है उन सभी की कर्म संज्ञा प्राप्त है किन्तु **दुह्-याच्-पच्-दण्ड्-रूधि-प्रच्छि-चि-ब्रू-शासु-जि-मथ-मुषाम् कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नी-ह्व-कृष् वहाम्।** इस श्लोक के द्वारा दुह्, याच् पच्, दण्ड रूध, प्रच्छ चि , ब्रू, शास, जि, मथ् मुष, नी, ह्व कृष्, वह्, इन सोलह धातुओं के योग में ही जो अकथित अर्थात् वक्ता के द्वारा अपादानादि विभक्ति के रूप में अविवक्षित जो कारक उनकी कर्म संज्ञा होती है इन सोलह धातुओं को द्विकर्मक कहते है क्योंकि इसमें दो कर्म है। इन सभी सोलह धातुओं को उदाहरण दिया जा रहा है-"देवदत्त गाय से दूध दोहता है""। इस वाक्य में कर्ता देवदत्त, क्रिया दोहना, दोहनक्रिया द्वारा सर्वाधिक प्रिया वस्तु दूध, तथा उसकी कर्म संज्ञा पूर्वोक्त नियम से होती है। गाय को वक्ता अपादान कारक द्वारा कहना नहीं चाहता है अतः गाय वक्ता की विवक्षा का विषय न होने से 'अकथितं च' सूत्र द्वारा कर्म संज्ञा को प्राप्त होती है और वो अमुख्य कर्म होता है।

बलिं याचते वसुधाम्।(भगवान् वामन बलि से पृथ्वि माँगते हैं)

रमेशः तण्डुलान् ओदनं पचति। (रमेश चावल से भात पकाता है।)

गर्गान् शतं दण्डयति। (गर्गों से सौ रूपये जुर्माना लगाता है)

कृष्णः ब्रजमवरूणद्धि गाम् (भगवान् श्री कृष्ण गौ को रोकते है)

रमेशः माणवकं पन्थानं पृच्छति। (रमेश बालक से मार्ग पुछता है)

गीता वृक्षमवचिनोति फलानि (गीता वृक्ष से फल को तोड़ती हैं)

पिता माणवकं धर्म ब्रुते शास्ति वा। (पिता बालक को धर्म का उपदेश देता हैं)

उमेशः शतं जयति देवस्तम्। (उमेश देवदत्त से सौ रूपये जीतता है)

देवसुरा: सुधां क्षीरनिधिं मथ्नन्ति।(देव दान व समुद्र से अमृत मथते हैं)

यज्ञदत्त: देवस्तं शतं मुष्णाति। (यज्ञस्त देवस्त से सै रूपये चुराता है)

रमेशः ग्रामम् अजां नयति हरति कर्षति वहति वा। (रमेश ग्राम से बकरी को ले जाता हे, खिचता है, ढ़ोता है)

4.4.3 तृतीया

कर्मवाच्य और भाववाच्य के कर्ता में सदा तृतीया विभक्ति लगती है। करण कारक में अर्थात् साधन में तृतीया विभक्ति लगती है। **स्वतन्त्रः कर्ता 1/4/54 ।।** क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात्। क्रिया में स्वतन्त्र रूप विवक्षित अर्थ कर्तृ संज्ञक होता है, अनुवाद बनाने के लिए कर्ता, कर्म, क्रिया इन तीनों की आवश्यकता होती है ये पहले ,द्वितिया विभक्ति में कहाँ जा चुका है। कर्ता किसे कहते है इस सूत्र में विशेषरूप से बताया जायेगा। कर्ता, कर्म, क्रिया इन तीनों में जो प्रधान है या क्रिया की सिद्धि जिससे होती है वह कर्ता कहा जाता है। कर्ता ही क्रिया का जनक होता है। कर्ता के अनुसार क्रिया का प्रयोग किया जाता है **जैसे-** रामः पठति (राम पढ़ता है) इस वाक्य में पठति क्रिया है राम कर्ता है। क्योंकि कर्ता के बिना क्रिया की सिद्धि नहीं हो सकती। इस लिए राम को कर्ता माना गया है।

क्रिया की सिद्धि जिस उत्कृष्ट वस्तु की सहायता से पूर्ण होती है उसको साधन कहते हैं तथा व्याकरण शास्त्र में इसे करण नाम से कहा जाता है। राम के द्वारा बाण से बाली मारा गया। यहां हत शब्द द्वारा हननक्रिया (प्राणविसर्जन करना) कही गयी है , वो क्रिया राम में हो रही है अतः राम हुआ कर्ता , कर्मवाच्य वाक्य होने से राम में तृतीया विभक्ति, हनन क्रिया की सिद्धि में बाण का एक असाधारण साधन होने से बाण में भी तृतीया विभक्ति होती है। याद रहे बाण यहां प्रकृष्ट साधन है।

4.4.4 चतुर्थी

कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् 1/4/32।। 'दानस्य कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानसंज्ञः स्यात्' दान रूपी कर्म के द्वारा कर्ता को जो अभिष्ट हो उसकी सम्प्रदान संज्ञा होती है। कर्ता दान आदि कर्म के द्वारा जिस से संबंध स्थापित करना चाहता है उसकी संप्रदान संज्ञा होती है और क्रिया द्वारा कर्ता जिसके साथ संबंध स्थापित करना चाहता है उसकी भी संप्रदान संज्ञा होती है।

सम्प्रदान का अर्थ है सम्यक् प्रदानं सम्प्रदानम् जिसको अच्छी तरह से दे दिया गया हो, और देने बाद वापस न लिया जाय, उसी का नाम दान या सम्प्रदान है। जैसे विप्राय गां ददाति (विप्र को गाय देता है) यहा पर विप्र को गाय देता है कर्ता यजमान क्रिया ददाति, दान क्रिया के द्वारा अभिष्ट कारक गो है उसकी कर्म संज्ञा हुई। सम्प्रदान संज्ञा जहा पर होती है वहाँ पर चतुर्थी विभक्ति होती है चतुर्थी सम्प्रदाने सूत्र से। रजकस्य वस्त्रं ददाति यहाँ पर धोबी को कपड़ा देता है क्योंकि धोबी को कपड़ा वापस लेने के लिए देता है न कि सर्वदा के लिए। इसलिए सम्बन्ध सामान्य में षष्ठी विभक्ति हुई, चतुर्थी विभक्ति नहीं हुई।

चतुर्थी सम्प्रदाने 2/3/13 'सम्प्रदाने चतुर्थी स्यात्' सम्प्रदान अर्थ में चतुर्थी विभक्ति होती है। विप्राय गां ददाति यहॉ पर विप्र की सम्प्रदान संज्ञा होने के बाद चतुर्थी सम्प्रदाने सूत्र से चतुर्थी विभक्ति हुई है ।

नमस्स्वस्ति स्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च 2/3/16 ॥ एभिर्योगे चतुर्थी स्यात्। हरये नमः। प्रजाभ्यः स्वस्ति। अग्नये स्वाहा। पितृभ्यः स्वधा। अलमिति पर्याप्त्यर्थ ग्रहणम्, दैत्येभ्यो हरिरलं प्रभुः समर्थः शक्त इत्यादि ॥ नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलंवषट् के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। इस सूत्र से सम्प्रदान संज्ञा कारक संज्ञा की अपेक्षा नहीं होती है। नमस आदि जो ये छः शब्द जिस शब्द के साथ सम्बन्ध रखते है उनमें चतुर्थी विभक्ति होती है। उदाहरण हरये नमः। हरि को नमस्कार है। यहाँ पर हरि-शब्द नमः से सम्बन्ध या युक्त हैं क्योंकि हरि को ही नामस्कार किया गया हैं इस लिए नमस्स्वस्ति- इस सूत्र से हरि से हरि में चतुर्थी विभक्ति हुई।

प्रजाभ्यः स्वस्ति। प्रजाओं का कल्याण हो। यहाँ पर स्वस्ति शब्द प्रजा शब्द से युक्त है इस लिए नमस्स्वस्ति -इस सूत्र से चतुर्थी विभक्ति होती है।

पितृभ्यः स्वधा। पितरों को अन्नजल। यहा पर स्वधा-शब्द पितृ शब्द से युक्त है क्योंकि तर्पण इत्यादि पितरों के लिए दिया जाता है। इस लिए नमस्स्वस्ति-इस सूत्र से चतुर्थी विभक्ति होती है। **अग्नये स्वाहा।** यहा पर स्वाहा शब्द अग्नि शब्द से युक्त है। क्योंकि हविषान्न अग्नि शब्द का नामोच्चारण कर के ही दिया जाता है। इस लिए नमस्स्वति- इस सूत्र से चतुर्थी विभक्ति होती है। **अलमिति पर्याप्त्यर्थ ग्रहणम्।** इस सूत्र में अलम-शब्द का अर्थ पर्याप्त, समर्थ शक्त का अर्थ भी समर्थ पर्याप्त है, अतः इन सभी के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। उदाहरण दैत्येभ्यो हरिरलम्, दैत्येभ्यो हरिः प्रभुः दैत्येभ्यो हरिः समर्थ दैत्येभ्यो हरिः शक्तः इत्यादि वाक्यों में इन शब्दों का योग होने पर चतुर्थी विभक्ति हुई। दैत्यों को जीतने के लिए हरि समर्थ है।

4.4.5 पञ्चमी

'ध्रुवमपायेमपादानम्' पञ्चमीविभक्ति को जानने से पहले अपादान को जान लेना परमावश्यक है, जब कोई पदार्थ किसी उत्पत्ति केन्द्र बिन्दु से अलग होता है उस उत्पत्ति केन्द्र बिन्दु (अवधिभूत अर्थात् बचा हुआ) का बोधक पद अपादान कहलाता है। और आपादान होने के बाद पञ्चमी विभक्ति होती है। उदाहरणम् – बालकः धावतः अश्वात् पतति (बालक दौड़ते हुए घोड़े से दौड़ता है)

अपाय (अलगाव) होने में जो निश्चित सीमा है उसकी अपादान संज्ञा होती है। अलगाव या वियोग अर्थ जहा पर होता है उसमें पंचमी विभक्ति होती है। जैसे धावतो अश्वात् पतति। दौड़ते हुए घोड़े से गिरता है। यहा पर अलगाव या वियोग अश्व से होता है इस लिए अश्व की अपादान संज्ञा हुई और अपादाने पंचमी" इस सूत्र से पंचमी विभक्ति होती है। पंचमी विभक्ति का उदाहरण-

इदं फलं वृक्षात् पतति। यह फल वृक्ष से गिरता है।
कस्मात् वृक्षात् पत्रं पतति। किस वृक्ष से पत्ता गिरता है।
अस्मात् वृक्षात् पत्रं पतति। इस वृक्ष से पत्ता गिरता है।
कस्या: लतायाः पुष्पं पतति? किस लता से पुष्प गिरता है।
तस्मात् गिरे: बालकः पतति? उस पर्वत से बालक गिरता है।
अहं गृहाद् आगच्छामि। मैं घर से आता हूँ।
त्वं गृहाद् कुत्र गच्छसि? तुम घर से कहाँ जाते हो।

अभ्यास प्रश्न. 1

बहुविकल्पात्मकाः प्रश्न—

1-बालक शब्दस्य द्विवचनस्य रूपमस्ति-

अ. बालकम् ब. बालकेन स. बालकैः द. बालकौ

2-इदं शब्दस्य द्वितीया बहुवचनस्य रूपमस्ति-

अ. इमम् ब. अनेन स. इमौ द. इमान्

3. संस्कृत में अनुवाद बनाइये-

1. राम गाय से दूध दूहता है।
2. सुरेश राम से प्रश्न पूछता है।
3. गणेश चावल से भात पकाता है।
4. राम गर्गों से सौ रूपये दण्ड लगाता है।
5. सुरेश गॉव से बकरी को ले जाता है।

4.4.6 षष्ठी

षष्ठी शेषे 2/3/50।। सम्बन्ध अर्थ को बतलाने के लिए षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। कारक प्रातिपदिकार्थव्यतिरिक्तः स्वस्वामिभावादिसम्बन्धः शेषः तत्र षष्ठीस्यात्। राज्ञः पुरूषः।। कारक और प्रातिपदिकार्थ से भिन्न स्वस्वामिभावादि सम्बन्ध को शेष कहते है। उस शेष अर्थ में षष्ठी विभक्ति होती है। शेष अर्थात् वचा हुआ, प्रातिपदिकार्थ, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण संज्ञा जहाँ नहीं हो वह शेष है। जैसे स्वस्वामिभाव सम्बन्ध जहाँ पर हो वहाँ पर षष्ठी विभाक्ति होती है। राज्ञ: पुरूष:। राजा का पुरूष। यहाँ पर राजा स्वामी हैं और पुरूष स्व है। स्वस्वामिभाव सम्बन्ध मानकर षष्ठी शेषे से राजन् शब्द से षष्ठी विभक्ति हुई। षष्ठी विभक्ति का उदाहरण-

- कर्ता, कर्म, करण, अपादान और अधिकरण आदि संज्ञा जहाँ न हो, ऐसे स्थलों में षष्ठीविभक्त का प्रयोग होता है। उदाहरणम् - राज्ञः पुरुषः। यस्य बुद्धिः बलं तस्य। सतां गतम्। सर्पिषो जानीते। मातुः स्मरति (मातृसम्बन्धि स्मरणं करोति)।
- जहाँ पर हेतु शब्द हो और उस हेतु से सम्बन्धित जो फल हो तद्बोधक शब्द में षष्ठीविभक्ति होती है। अन्नस्य हेतोः वसति।
- सर्वनाम शब्दों का यदि हेतु-शब्द के साथ प्रयोग हो तो दोनों में अर्थात् सर्वनामशब्द और हेतु में तृतीया अथवा षष्ठी का प्रयोग करना चाहिए। कस्य हेतोः वसति (किस हेतु से रह रहे हो)। केन हेतुना वसति।
- दक्षिणतः, उत्तरतः, पुरः, पुरतः, पुरस्तात्, उपरि, उपरिष्टात्, अग्रे इत्यादि शब्दों के प्रयोग में षष्ठी विभक्ति होती है ।

- कृत्प्रत्यय निर्मित शब्दों (कृदन्तों) के कर्ता और कर्म के योग में षष्ठी विभक्ति होती है। उदाहरण – कृष्णः जगतः कर्ता (कृष्ण संसार का कर्ता है)।
- जिन शब्दों से समानता प्रकट हो ऐसे सादृश्यार्थ बोधक तुल्य, सदृश, सम, सकाश आदि शब्दों से जिसके साथ तुलना की जाय उस शब्द से उ तृतीया अथवा षष्ठी विभक्ति होती है। उदाहरण – कृष्णेन/ कृष्णस्य तुल्यः, सदृशः कोऽपि नास्ति (कृष्ण के बराबर कोई नहीं है)

4.4.7 सप्तमी

आधारो अधिकरणम् 1/4/45।। 'कर्तृकर्मद्वारा तन्निष्ठक्रियाया आधारः कारकमधिकरण संज्ञं स्यात्' कर्ता और कर्म के द्वारा उनमें रहने वाली क्रिया का आधार जो कारक उसकी अधिकरण संज्ञा होती है। वह आधार तीन प्रकार से होता है प्रथम औपश्लेषिक (जहाँ पर वस्तु का संयोग हो) द्वितीय वैषयिक (जो इच्छा का विषय हो) तृतीय अभिव्यापक (वस्तु का अपने आधार में व्याप्त होना) क्रिया साक्षात् किसी आधार में नहीं रहती किन्तु कर्ता या कर्म के द्वारा रहती है जैसे- कटे आस्ते देवस्तः देवदत्त चटाई पर बैठा है यहाँ पर आस्ते में आसन (रहना) क्रिया, देवदत्त कर्ता के द्वारा कट में है इस लिए कट की अधिकरण संज्ञा हुई। अधिकरण संज्ञा होने के बाद "सप्तम्यधिकरणे च" से अधिकरण जो कर्ता है उसमें सप्तमी विभक्ति होती है। सप्तमी विभक्ति का उदाहरण-

कस्याः ग्रीवायाम् आभूषणमस्ति। किसके गले में आभूषण है।
साबाला कस्मिन् स्थाने तिष्ठति। वह बालिका किस स्थान में बैठती है।
सा बाला द्वारे तिष्ठति। वह बालिका द्वार पर बैठती है।
त्वं कस्याम् उपविशति। तुम कहाँ पर बैठे हो ?
तस्यां वाटिकायां बालकः अस्ति। उस वाटिका में बालक है।

अभ्यास प्रश्न. 2

बहुविकल्पात्मक प्रश्न—

1. बालक शब्दस्य पंचमी एकवचनस्य रूपमस्ति

अ. बालकात्	ब. बालकस्य	स. बालकेन	द. बालकाय

2. इदं शब्दस्य पंचमी एकवचनस्य रूपमस्ति

अ. अस्याः	ब. अनया	स. अस्यै	द. अस्याम्

3. संस्कृत भाषा में अनुवाद बनाइये-

2. बानर वृक्ष से गिरता है।
3. मैं घर से जा रहा हूँ।
4. वृक्ष से पत्ता गिरता हैं
5. रमेश पर्वत से गिरता है।

4.5 सारांश

कारक शब्द का एक अर्थ कर्ता भी है। करोति क्रियां निवर्तयतीति कारकम् अथवा क्रियान्वयितवम कारकम् अथवा साक्षात् क्रिया जनकं कारकम् जो क्रिया का निमित्त बने अर्थात् जो क्रिया का निष्पादन करे, जो क्रिया के साथ अन्वय अर्थात् सीधे सम्बन्ध रखे अथवा जो क्रिया का जनक है, उसे कारक कहते हैं। ये कारक छः है- 'कर्ता कर्म च करणं सम्प्रदानं तथैव च। अपादानाधिकरणमित्याहुः कारकाणि षट्'।। अर्थात् कर्ता कारक, कर्मकारक, करण कारक, सम्प्रदान कारक, अपादान कारक और अधिकरण कारक। सम्बन्ध को कारक नहीं माना गया है। क्योंकि षष्ठी विभक्ति को छोड़कर अन्य सभी कारकों का क्रिया के साथ साक्षात् अन्वय है किन्तु सम्बन्ध का सीधे अन्वय न होकर परम्परया अन्वय होता है। जैसे रामः पठति में रामः कर्ता का पठति क्रिया के

साथ साक्षात सम्बन्ध है और क्रिया एक दूसरे से आकांक्षा युक्त है, अतः सीधे सम्बन्ध रखते हैं। इस तरह क्रिया के साथ अन्वय करने की योग्यता होने के कारण प्रथमा विभक्ति रामः यह कारक हुआ। इसी प्रकार यहां छः कारक एवं सातों विभक्तियों (सु,औ,जस् इति प्रथमा। अम् औट्, शस् इति द्वितीया। टा, भ्याम् भिस् इति तृतीया। ङे, भ्याम् भ्यस् इति चतुर्थी। ङसि, भ्याम् भ्यस् इति पंचमी। ङस्, ओस् आम इति षष्ठी। ङि ओस, सुप इति) का वर्णन किया गया है। कौन सी विभक्ति किस अर्थ में होती है। यह बात इस इकाई में बतायी जायेगी।

4.6 शब्दावली

सुबन्त शब्द - सुबन्त शब्दों के साथ सात विभक्तियों के तीन वचनों में 21 प्रत्यय लगते हैं।

विभक्तियां-संस्कृत व्याकरण में सात विभक्तियाँ होती हैं सम्बोधन की गणना प्रथमा विभक्ति में ही होती हैं। जैसे— रमेशः पुस्तकं पठति- रमेश पुस्तक पढता है।

संख्यार्थवाचक - नाप, तौल की वस्तुए।

अकथितं च-दुह्, याच् पच्, दण्ड रूध, प्रच्छ चि , बू, शास, जि, मथ् मुष, नी, ह कृष्, वह्, इन सोलह धातुओं के योग में ही जो अकथित अर्थात् वक्ता के द्वारा अपादानादि विभक्ति के रूप में अविवक्षित जो कारक उनकी कर्म संज्ञा होती है इन सोलह धातुओं को द्विकर्मक कहते हैं। क्योंकि इसमें दो कर्म है।

4.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 .

1.द

2. द

संस्कृत अनुवाद-

1. रामः गां पयः दोग्धि।
2. सुरेशः रामं प्रश्नं पृच्छति।
3. गणेशः तण्डुलान् ओदनं पचति।
4. रामः गर्गान् शतं दण्डयति।
5. सुरेशः ग्रामम् अजां नयति।

अभ्यास प्रश्न 2 .

1.अ 2. अ

संस्कृत अनुवाद-

1. बानरः वृक्षात् पतति।
2. अहं गृहं गच्छामि।
3. वृक्षात् पत्रं पतति।
4. रमेशः पर्वतात् पतति।

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी, भट्टोजिदीक्षित, गोपालदत्तपाण्डेय, चौखम्बा सुरभारती, वाराणसी।
2. लघुसिद्धान्तकौमुदी, वरदराजाचार्य, भीमसेन शास्त्री, भैमीप्रकाशन लाजपत नगर दिल्ली।
3. अनुवाद चन्द्रिका, हरेकान्तमिश्रः, हरेकान्तमिश्र चौखम्बा अमर प्रकाशन वाराणसी।
4. प्रौढमनोरमा, भट्टोजिदीक्षित, द्वारिका प्रसाद दिवेदी, चौखम्बा सुरभारती वाराणसी।
5. अनुवादचन्द्रिका, श्री कपिलदेव द्विवेदी, चौखम्बा सुरभारती वारणसी।
6. अनुवादरत्नाकरः - डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी – चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2001।

7. लघुसिद्धान्तकौमुदी – गोविन्दाचार्य व्याख्या, चौखम्बा।
8. संस्कृतरचना – श्री वामन शिवराम आप्टे - चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी।

4.9 उपयोगी पुस्तकें

1.लघुसिद्धान्तकौमुदी, वरढ़राजाचार्य, भीमसेन शास्त्री, भैमी प्रकाशन लाजपत नगर दिल्ली।
2.अनुवाद चन्द्रिका, हरेकान्तमिश्रः, हरेकान्तमिश्र,चौखम्बा प्रकाशन।
3. प्रौढरचनानुवादकौमुदी – आचार्य कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी ।
4. बृहद् अनुवाद चन्द्रिका - चक्रधर नौटियाल 'हंस' शास्त्री – मोतीलाल बनारसीदास ।

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अकथितं च इस सूत्र की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये ।
2. प्रातिपदिकार्थ लिङ्गपरिमाण वचन मात्रे प्रथमा इस सूत्र की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिये।
3. कारक किसे कहते है ? वर्णन कीजिये।
4. विभक्ति किसे कहते है ? विस्तार से वर्णन कीजिये।

इकाई-5 संख्या परिचय

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 संख्या परिचय
    5.3.1 संख्या उच्चारण एवं प्रयोग
    5.3.2 संख्या लेखन एवं अभ्यास
    5.3.3 संख्या लिंग भेद वर्णन
5.4 सारांश
5.5 शब्दावली
5.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.8 उपयोगी पुस्तकें
5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में आप संख्या के सन्दर्भ में जानेंगे। वर्तमान में व्यवहार वाक्यों में संख्या का प्रमुखता से प्रयोग होता है। बाहुल्य से हम देखते हैं संख्या उच्चारण पूर्वक व्यवहार अधिक कठिन लगता अर्थात् जब हम संख्या का उपयोग पूर्वक प्रयोग पूर्वक वाक्यों को लिखते हैं, तब हमारे वाक्यों में सहजता से दोष हो जाते हैं। संख्या के उपयोग पूर्वक वाक्य प्रयोग को करते हैं, वहाँ-वहाँ सब जगह दोषों का बाहुल्य होता है, क्योंकि संख्या का एक से चार तक विविध लिंगत्व होता है। अन्यत्र एक से चार तक लिंगभेद भी होता है। पाँच से उन्नीस तक कोई भी भेद नहीं होता है, तीनों लिंगों में समान रूप होते हैं। फिर बीस से निन्यानवे तक संख्या का स्त्रीलिंग और एकवचन होता है। इसको भी हम यहाँ पाठ के माध्यम से समझ सकेंगे। हम जानते हैं कि एक से चार तक संख्या तीनों लिंगों में होती है, पुनः उसका वचन भी निर्धारित होता है, परन्तु इस अभ्यास से पुन: पुनः छात्रों को संख्या का पूर्ण रूप से ज्ञान प्राप्त हो सकेगा, क्योंकि अधिकता से विशेषणादि नियम को हम जानते ही हैं। परन्तु यहाँ वह नियम सार्वत्रिक नहीं होता है, क्योंकि उस प्रयोग बल से हम वाक्यों की रचना कर सकते हैं। यहाँ विशेषण-विशेष्य नियम नहीं लगते हैं, क्योंकि संख्या में बीस के बाद एकवचन ही होता है, फिर सौ, हजार इत्यादि शब्द तो नपुंसकलिंग में ही होते हैं किन्तु एकवचन होता है। इसलिए यहाँ हमें इस विषय के सन्दर्भ में पूर्ण रूप से कैसे वाक्यों की रचना हो सकती है, उसको अभ्यास के बल से अपने मन में धारण करना चाहिए और हम संख्या को सुष्ठु रूप से कैसे प्रयोग करें इसे भी जानेंगे। फिर जहाँ-जहाँ वाम से अथवा उत्तर से संख्या का कथन होता है, उसको भी हमें जानना चाहिए, विशेष संख्याओं का, विशाल संख्या का कैसे उत्तरादि प्रयोग से हम व्यवहार कर सकते हैं इसका भी ज्ञान और अभ्यास बहुत ही अपेक्षित है। अत: प्रस्तुत इकाई के माध्यम से संख्या परिज्ञान को हम सर्वविध जान सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- संख्या के विषय में जान सकेंगे।
- संख्या का सभी प्रकार का विवरण प्राप्त कर सकेंगे।
- छात्र संख्या का तीनों लिंगों में प्रयोग करने में समर्थ होंगे।
- संख्या उच्चारण सामर्थ्य को प्राप्त कर सकेंगे।
- संस्कृत में संख्या प्रयोग विधि को जानने में समर्थ हो सकेंगे।
- व्यवहार में संख्या का प्रयोग कैसे होता है, इसे जानने में समर्थ हो सकेंगे।
- विंशति (20) के बाद संख्या के प्रयोग करने की सामर्थ्य प्राप्त कर सकेंगे।

5.3 संख्या परिचय

संस्कृत भाषा में संख्याओं को कैसे जाना जाय या गिनती करते समय संख्या को संस्कृत में कैसे गिनें, बोलें और लिखें, ऐसी जानकारी आपको आगे दी गयी तालिका से प्राप्त होगी। सारणी में दिए गए विवरण से आप एक से सौ तक की संख्या को संस्कृत में पढकर जानेगें और किसी भी अवसर पर आपको अपनी जन्मतिथि आदि लिखनें अथवा संस्कृत में संख्योच्चारण करनें में आसानी होगी। संख्या का सामान्य रूप से कैसे व्यवहार होता है इसे हम हिन्दी और आंग्लभाषा में सामान्य रूप से जानते ही हैं। कहीं पर संख्या शब्दों का उच्चारण भेद है, उनका ज्ञान यहाँ पर अपेक्षित है। वह एक एक करके हम जान सकेंगे।

एक से सौ तक संख्याओं का बोध हमें करना चाहिए। यदि संख्या का हम लिंगभेद जानना चाहें, तो लिंगभेद कैसे किया जा सकता है। एक, दो, तीन, चार तीनों लिंगों में इनके रूप होते हैं। एक, दो, तीन, चार ये

नियतलिंगक है तीनों लिंगों में और पाँच से उन्नीस तक (तीनों लिंगों में समान रूप होते हैं।) पाँच, छः, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह, बारह, तेरह, चौदह, पन्द्रह, सोलह, सत्रह, अठारह, उन्नीस इन सबके तीनों लिंगों में एक जैसे रूप होते हैं। फिर यदि लिंग समझना है तो बीस से अथवा उन्नीस से निन्यान्वे तक सभी संख्याएं स्त्रीलिंग में लिखनी चाहिए। फिर वहाँ पर सौ, हजार, दस हजार, लाख इत्यादि संख्या तो नंपुसक है। परन्तु कोटि शब्द तो स्त्रीलिंग में होता है, परन्तु इनका केवल एकवचन होता है।

सबसे पहले हम संख्या को कैसे व्यवहार किया जा सकता है इसका ज्ञान अत्यधिक अपेक्षित होता हैं। हम जानते हैं यहाँ लिखा है 1010 इसको हम क्या लिखें ? इसको दशोत्तरमेकसहस्रम्। हमको उत्तर संख्या पहले लिखनी होती है, उसके बाद आदि संख्या को लिखते हैं। यहॉ एक से सौ तक की संख्या का परिचय दिया जा रहा है।–

एकतः शतं यावत् संख्यापदानां परिचय—

संख्या	संस्कृतसंख्या	संख्या	संस्कृतसंख्या
1	एकम्	51	एकपंचाशत्
2	द्वे	52	द्विपंचाशत्
3	त्रीणि	53	त्रिपंचाशत्
4	चत्वारि	54	चतुष्पंचाशत्
5	पंच	55	पंचपंचाशत्
6	षट्	56	षट्पंचाशत्
7	सप्त	57	सप्तपंचाशत्
8	अष्ट	58	अष्टपंचाशत्
9	नव	59	नवपंचाशत्
10	दश	60	षष्टिः
11	एकादश	61	एकषष्टिः
12	द्वादश	62	द्विषष्टिः
13	त्रयोदश	63	त्रिषष्टिः
14	चतुर्दश	64	चतुष्षष्टिः
15	पंचदश	65	पंचषष्टिः
16	षोडश	66	षट्षष्टिः
17	सप्तदश	67	सप्तषष्टिः
18	अष्टादश	68	अष्टषष्टिः
19	नवदश	69	नवषष्टिः
20	विंशतिः	70	सप्ततिः
21	एकविंशतिः	71	एकसप्ततिः
22	द्वाविंशतिः	72	द्विसप्ततिः
23	त्रयोविंशतिः	73	त्रिसप्ततिः
24	चतुर्विंशतिः	74	चतुस्सप्ततिः
25	पंचविंशतिः	75	पंचसप्ततिः
26	षड्विंशतिः	76	षट्सप्ततिः
27	सप्तविंशतिः	77	सप्तसप्ततिः

28	अष्टाविंशतिः	78	अष्टसप्ततिः
29	नवविंशतिः	79	नवसप्ततिः
30	त्रिंशत्	80	अशीतिः
31	एकत्रिंशत्	81	एकाशीतिः
32	द्वात्रिंशत्	82	द्वयशीतिः
33	त्रयस्त्रिंशत्	83	त्र्यशीतिः
34	चतुस्त्रिंशत्	84	चतुरशीतिः
35	पंचत्रिंशत्	85	पंचाशीतिः
36	षट्त्रिंशत्	86	षडशीतिः
37	सप्तत्रिंशत्	87	सप्ताशीतिः
38	अष्टात्रिंशत्	88	अष्टाशीतिः
39	नवत्रिंशत्	89	नवाशीतिः
40	चत्वारिंशत्	90	नवतिः
41	एकचत्वारिंशत्	91	एकनवतिः
43	त्रिचत्वारिंशत्	93	त्रिनवतिः
44	चतुश्चत्वारिंशत्	94	चतुर्णवतिः
45	पंचचत्वारिंशत्	95	पंचनवतिः
46	षट्चत्वारिंशत्	96	षण्णवतिः
47	सप्तचत्वारिंशत्	97	सप्तनवतिः
48	अष्टचत्वारिंशत्	98	अष्टनवतिः
49	नवचत्वारिंशत्	99	नवनवतिः
50	पंचाशत्	100	शतम्

एकाधिकशतं तः संख्यापदानां परिचयः—

संख्या	**संस्कृतसंख्या**	**संख्या**	**संस्कृतसंख्या**
101	एकाधिकशतम्	110	दशाधिकशतम्
102	द्वयधिकशतम्	120	विंशत्यधिकशतम्
103	त्र्यधिकशतम्	130	त्रिंशदधिकशतम्
104	चतुरधिकशतम्	140	चत्वारिंशदधिकशतम्
105	पंचाधिकशतम्	150	पंचाशदधिकशतम्
106	षडधिकशतम्	160	षष्ट्यधिकशतम्
107	सप्ताधिकशतम्	170	सप्तत्यधिकशतम्
108	अष्टाधिकशतम्	180	अशीत्यधिकशतम्
109	नवाधिकशतम्	190	नवत्यधिकशतम्

एकतः पद्मपर्यन्तं संख्यापदानां परिचयः—

एकं दश शतं चैव सहस्रमयुतं तथा।
लक्षं च नियुतं चैव कोटिरर्बुदमेव च।।
वृन्दं खर्वो निखर्वश्च शंखः पद्मश्च सागरः।
अन्त्यं मध्यं परार्धं च दशवृद्धया यथाक्रमम्।।

संख्या	संस्कृतसंख्या	संख्या	संस्कृतसंख्या
1	एकम्	1000	सहस्रम्
10	दश	10000	अयुतम्
100	शतम्	100000	लक्षम्
200	द्विशतम्	1000000	नियुतम्
300	त्रिशतम्	10000000	कोटिः
400	चतुश्शतम्	100000000	अर्बुदम्
500	पंचशतम्	1000000000	वृन्दम्
600	षड्शतम्	10000000000	खर्वः
700	सप्तशतम्	100000000000	निखर्वः
800	अष्टशतम्	1000000000000	शंखः
900	नवशतम्	10000000000000	पद्मः

5.3.1 संख्या उच्चारण एवं प्रयोग

संख्या के उच्चारण काल में सन्धि के ज्ञान की विशेष आवश्यकता होती है, जिसके माध्यम से सन्धि प्राप्त होती है, वहाँ-वहाँ वह सन्धि करनी चाहिए। यद्यपि इस विषय को आप आगे सन्धि ज्ञान में समझेंगे। किन्तु यहाँ समान रूप से कैसे संख्या शब्दों को जोड़ना है इत्यादि ज्ञान अपेक्षित है। इसलिए (1+10) यहाँ पर दीर्घसन्धि होगी। तो बीच में आकार आयेगा। तब रूप बनेगा एकादश (11)। (2+10) दो शब्द है, दोनों को जोड़कर बनेगा द्वादश (12)। (3+10) ऐसे ही तीन शब्द है, तो त्रयोदश (13)। (4+10) चार शब्द है अर्थात् जब जोड़ते हैं, तो यह समझना चाहिए कि कहाँ विशेष रूप से आकार सुनायी दे रहा है। ऐसे ही द्वात्रिंशत् (32), अष्टात्रिंशत् (38) इन दोनों में भी समझना चाहिए। षट्त्रिंशत् (36) और चतुस्त्रिंशत् (34) यहाँ भी कुछ विशेष है इसको अपने मस्तिष्क में धारण करना चाहिए। त्रयस्त्रिंशत् (33) यहाँ भी सकार हो जाता है। पुनः चत्वारिंशत् के मध्य में द्विचत्वारिंशत् (42) द्वाचत्वारिंशत् इसको विकल्प से होता है, यहाँ दो रूप बनते हैं। इसी तरह त्रिचत्वारिंशत् (43) त्रयश्चत्वारिंशत् (44) यहाँ भी विकल्प से होता है ऐसा समझना चाहिए। फिर अष्टचत्वारिंशत् अष्टाचत्वारिंशत् (48) यहाँ भी विकल्प होता है। इसी तरह सभी संख्याओं में यह विकल्प समझना चाहिए। चालीस के बाद। द्विपञ्चाशत् द्वापञ्चाशत् (52)। त्रिपञ्चाशत् त्रय:पञ्चाशत् (53)। चतुःपञ्चाशत् (54)। अष्टपञ्चाशत् अष्टापञ्चाशत् (58)। नवपञ्चाशत् (59) यहाँ भेद नहीं है। पुनः द्विषष्टिः, द्वाषष्टिः (62)। त्रिषष्टिः, त्रय:षष्टिः (63)। इसके बाद अष्टषष्टिः अष्टाषष्टिः (68)। द्विसप्ततिः द्वासप्ततिः (72)। त्रिसप्ततिः त्रय:सप्ततिः (73)। इसके बाद अष्टसप्ततिः अष्टासप्ततिः (78)। इसके बाद यहाँ अस्सी के बाद सन्धि नियम/ज्ञान को समझना चाहिए। एकाशीतिः द्व्यशीतिः त्र्यशीतिः चतुरशीतिः पञ्चाशीतिः षडशीतिः सप्ताशीतिः अष्टाशीतिः नवाशीतिः (81 से 89) तक इन सभी में सन्धि हुयी है। पुनः द्विनवतिः द्वानवतिः (92)। त्रिनवतिः त्रयोनवतिः (93) यहाँ विकल्प से होता है, ऐसा समझना चाहिए। चत्वारिंशतः (40) के बाद दो-दो रूप उन स्थानों पर होते हैं। कैसे ? जब हमें दो इत्यादि हम जोड़ते हैं, त्रि इत्यादि जोड़ते हैं, आठ योजित करते हैं तो वहाँ विशेष रूप से नियम है इसे समझना चाहिए। षण्णवतिः (96) षट् यहाँ षट् संख्या है, जब उसका योजन करते हैं तो छियानवे को षण्णवतिः (96) कहते हैं। इसके उच्चारण काल में विशेष अवधान की आवश्यकता होती है। पुनः हजार, दस हजार, लाख, दस लाख, करोड़, दस करोड़, अरब, दस अरब, खरब, दस खरब, नील, दस नील, पद्म, दस पद्म, शंख, दश शंख, महा शंख तक संख्या शब्द होते हैं। यहाँ लिंगानुसार ही हमें चिन्तन करना चाहिए। कोटि (करोड़) शब्द ही केवल स्त्रीलिंग है। अन्य सभी शब्द यहाँ सौ से आगे वो नपुंसकलिंग में होते है। उच्चारण दृष्टि से इसे हमें समझना चाहिए। इसी को हम सारणी रूप से भी हम यहाँ देख सकते हैं।

क्र.सं.	संख्या	लेखनम्
1.	8	अष्ट/अष्टौ
2.	12	द्वादश
3.	13	त्रयोदश
4.	16	षोडश
5.	18	अष्टादश
6.	19	नवदश/ एकोनविंशतिः
7.	22	द्वाविंशतिः
8.	23	त्रयोविंशतिः
9.	24	चतुर्विंशतिः
10.	26	षड्विंशतिः
11.	28	अष्टाविंशतिः
12.	29	नवविंशतिः/ एकोनत्रिंशत्
13.	32	द्वात्रिंशत्
14.	33	त्रयस्त्रिंशत्
15.	34	चतुस्त्रिंशत्
16.	36	षट्त्रिंशत्
17.	38	अष्टात्रिंशत्/ अष्टत्रिंशत्
18.	39	नवत्रिंशत्/ एकोनचत्वारिंशत्
19.	42	द्वाचत्वारिंशत्/ द्विचत्वारिंशत्
20.	43	त्रिचत्वारिंशत्/ त्रयश्चत्वारिंशत्
21.	44	चतुश्चत्वारिंशत्
22.	46	षट्चत्वारिंशत्
23.	48	अष्टाचत्वारिंशत्/ अष्टचत्वारिंशत्
24.	49	नवचत्वारिंशत्/ एकोनपञ्चाशत्
25.	52	द्वापञ्चाशत्/ द्विपञ्चाशत्
26.	53	त्रिपञ्चाशत्/ त्रयःपञ्चाशत्
27.	54	चतुःपञ्चाशत्
28.	56	षट्पञ्चाशत्
29.	58	अष्टपञ्चाशत्/ अष्टापञ्चाशत्
30.	59	नवपञ्चाशत्/ एकोनषष्टिः
31.	62	द्वाषष्टिः/ द्विष्टिः
32.	63	त्रिषष्टिः/ त्रयःषष्टिः/ त्रयष्षष्टिः
33.	64	चतुःषष्टिः/ चतुष्षष्टिः
34.	66	षट्षष्टिः
35.	68	अष्टाषष्टिः/ अष्टषष्टिः
36.	69	नवषष्टिः/ एकोनसप्ततिः

37.	72	द्विसप्ततिः/ द्वासप्ततिः
38.	73	त्रिसप्ततिः/ त्रयःसप्ततिः
39.	74	चतुःसप्ततिः
40.	76	षट्सप्ततिः
41.	78	अष्टसप्ततिः/ अष्टासप्ततिः
42.	79	नवसप्ततिः/ एकोनाशीतिः
43.	82	द्वयशीतिः/द्वयशीतिः
44.	83	त्र्यशीतिः
45.	84	चतुरशीतिः
46.	86	षडशीतिः
47.	88	अष्टाशीतिः
48.	89	नवाशीतिः/ एकोननवतिः
49.	92	द्विनवतिः/ द्वानवतिः
50.	93	त्रिनवतिः/ त्रयोनवतिः
51.	94	चतुर्नवतिः
52.	96	षण्णवतिः
53.	98	अष्टनवतिः/ अष्टानवतिः
54.	99	नवनवतिः/ एकोनशतम्

5.3.2 सङ्ख्या लेखन एवं अभ्यास

लेखन काल में संख्या लेखन के अभ्यास के समय हमें दो संख्याओं का कैसे लेखन करना चाहिए, तीन संख्याओं का, चार संख्याओं का कैसे लेखन करना चाहिए उससे अधिक संख्याओं को कैसे लिखें इसका ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। उदाहरण रूप में जैसे – दो संख्याएं है तो 23 - त्रयोविंशति, 276, 2020, 3005, 40600 इत्यादि संख्याओं के लेखन का अभ्यास करना चाहिए। परन्तु इसके आधार पर संख्या ज्ञान को पहले अच्छी तरह समझ लेना चाहिए और उसके बाद भी हम इसे प्रयुक्त कर सकते हैं। पुनः वर्षों का लेखन कैसे करना चाहिए। यदि दो संख्या है तो दश (10), पञ्चदश (15) लिखते हैं, उसी तरह 56 षट्पञ्चाशत् लिखते हैं। इसी तरह संख्या लेखन अभ्यास दो संख्याओं का लेखन अभ्यास करना चाहिए, वह हम जानते ही है। तीन संख्याओं में यदि हमें 520 लिखना है तो विंशत्युत्तरपञ्चशतम् अर्थात् बीस अधिक पाँच सौ। अधिक पद या उत्तर पद योजित करें। इससे हमारा संख्या लेखन अभ्यास हो सकता है। अन्य संख्याओं का भी हम इसी तरह लेखन कर सकते हैं। पुनः चार संख्याओं का लेखन कैसे करें तो 5678 यह संख्या लिखनी है तो विपरीत क्रम से हम लिखेंगे। क्या लिखेंगे ? अष्टसप्तत्युत्तरषट्शतोत्तरपञ्चसहस्रम् अथवा अष्टसप्तत्यधिकषट्शताधिकपञ्चसहस्रम् ऐसा हम लिखेंगे। चार संख्याओं का हमें ऐसे लेखन करना चाहिए।

यदि हम वर्षों का लेखन करते हैं तो हमें तमट् प्रत्यय का प्रयोग करना चाहिए। जैसे एकविंशत्युत्तरद्विसहस्रतमं इतना वर्ष है, यहाँ तम पद अतिरिक्त लग गया। अथवा एकविंशत्यधिकद्विसहस्रतमं वर्षम् अधिक पद का उपयोग भी हम कर सकते हैं। पर तमट् प्रत्यय का प्रयोग अवश्य करना है। जैसे लिखना है 1817 तो क्या लिखेंगे ? सप्तदशोत्तराष्टादशशततमवर्षम् यह लिखेंगे, क्योंकि शततम है। उदाहरण रूप में 2018, 1276, 2020, 1805, 1712 इत्यादि संख्याओं का भी लेखन अभ्यास करना चाहिए। यहाँ उत्तर पद योजित है तो - अष्टादशोत्तरद्विसहस्रतमवर्षम्, अष्टादशोत्तरविंशतिशततमवर्षम् , अब अधिक पद योजित करके भी

अभ्यास कर सकते हैं। जैसे - अष्टादशाधिकद्विसहस्रतमवर्षम्, अष्टादशाधिकविंशतिशततमवर्षम्, ऐसे ही अन्य अभ्यासों को हम कर सकते हैं। जैसे- 2015, 2022, 2018, 2038, 2016।

इसी प्रकार हमें डट् प्रत्यय का भी प्रयोग करना चाहिए। जैसे अष्टादश केवल है तो वहाँ तमट् प्रत्ययः नहीं होता, वहाँ डट् प्रत्यय ही होता है, यह छात्रों को समझना चाहिए। जैसे – एकादश (ग्यारवां) ग्यारह से लेकर, बारह, तेरह, चौदह, पन्द्रह, सोलह, सत्रह, अठारह, उन्नीस यहाँ तक डट् प्रत्यय होता है। इसी प्रकार हमें लेखन अभ्यास करना चाहिए। परन्तु अधिक संख्याओं का भी लेखन अभ्यास करना चाहिए। जैसे - 5 लाख 8 सौ दस। तो क्या बोलेंगे ? दशोत्तर-अष्टशतोत्तरपञ्चलक्षम्।

उच्चारण के साथ संख्या लेखन का अभ्यास—

एकम्	-	---	---	---
द्वे	-	---	---	---
त्रीणि	-	---	---	---
चत्वारि	-	---	---	---
पंच	-	---	---	---
षट्	-	---	---	---
सप्त	-	---	---	---
अष्ट	-	---	---	---
नव	-	---	---	---
दश	-	---	---	---

5.3.2 संख्या लिंग भेद वर्णन

संख्या	**संस्कृतसंख्या**		**पूरणप्रत्ययान्तसंख्याः**	
त्रिषु लिंगेषु		**पुल्लिंगसंख्या**	**स्त्रीलंगसंख्या**	**नपुसंकसंख्या**
1	एकम्	प्रथमः	प्रथमा	प्रथमम्
2	द्वे	द्वितीयः	द्वितीया	द्वितीयम्
3	त्रीणि	तृतीयः	तृतीया	तृतीयम्
4	चत्वारि	चतुर्थः	चतुर्थी	चतुर्थम्
5	पंच	पंचमः	पंचमी	पंचमम्
6	षट्	षष्ठः	षष्ठी	षष्ठम्
7	सप्त	सप्तमः	सप्तमी	सप्तमम्
8	अष्ट	अष्टमः	अष्टमी	अष्टमम्
9	नव	नवमः	नवमी	नवमम्
10	दश	दशमः	दशमी	दशमम्
संख्यापदानां लिंगभेदानुसारं वाक्य—				
11	एकादश	एकादशः	एकादशी	एकादशम्
12	द्वादश	द्वादशः	द्वादशी	द्वादशम्
13	त्रयोदश	त्रयोदशः	त्रयोदशी	त्रयोदशम्
14	चतुर्दश	चतुर्दशः	चतुर्दशी	चतुर्दशम्
15	पंचदश	पंचदशः	पंचदशी	पंचदशम्
16	षोडश	षोडशः	षोडशी	षोडशम्

17	सप्तदश	सप्तदशः	सप्तदशी	सप्तदशम्
18	अष्टादश	अष्टादशः	अष्टादशी	अष्टादशम्
19	नवदश	नवदशः	नवदशी	नवदशम्
20	विंशतिः	विंशतितमः	विंशतितमी	विंशतितमम्
21	एकविंशतिः	एकविंशतितमः	एकविंशतितमी	एकविंशतितम्
30	त्रिंशत्	त्रिंशत्तमः	त्रिंशत्तमी	त्रिंशत्तमम्
31	एकत्रिंशत्	एकत्रिंशत्तमः	एकत्रिंशत्तमी	एकत्रिंशत्तमम्
40	चत्वारिंशत्	चत्वारिंशत्तमः	चत्वारिंशत्तमी	चत्वारिंशत्तमम्
41	एकचत्वारिंशत्	एकचत्वारिंशत्तमः	एकचत्वारिंशत्तमी	एकचत्वारिंशत्तमम्
50	पंचाशत्	पंचाशत्तमः	पंचाशत्तमी	पंचाशत्तमम्
51	एकपंचाशत्	एकपंचाशत्तमः	एकपंचाशत्तमी	एकपंचाशत्तमम्
100	शतम्	शततमः	शततमी	शततमम्
1000	सहस्रम्	सहस्रतमः	सहस्रतमी	सहस्रतमम्

संख्यावाचक अंकों का पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग में प्रयोग करने पर अंकवाचक शब्द पूरणप्रत्ययान्त हो जाते हैं जिसमें प्रथमः, प्रथमा, प्रथमम् तथा एक (01) से उन्नीस (19) तक नवदशः, नवदशी, नवदशम् होते हैं तथा बीस (20) संख्या से आगे विंशतितमः, विंशतितमी, विंशतितमम् प्रयोग होता है।

संख्या शब्द का विंशति के बाद में विशेषण रूप से भी विज्ञान हमें अवश्य करना है, क्योंकि विंशति (बीस) से या एकोनविंशति (उन्नीस) से लेकर निन्यानवे तक सभी संख्या शब्द स्त्रीलिंग और एकवचनान्त होते हैं। विशेषण के रूप में उनका प्रयोग होता है।

प्रयोग—

पुँल्लिंग में प्रयोग–

विंशतिः बालकाः सन्ति। विंशति: एकवचने बालकाः बहुवचने। बीस बालक है। बीस एकवचन में है, बालक बहुवचन में है।

पुनः विंशतिं बालकान् पश्यामि। पुनः बीस बालकों को देखता हूँ।

विंशत्या बालकैः सह गच्छामि। बीस बालकों के साथ जाता हूँ।

विंशतये बालकेभ्यः धनं ददामि। बीस बालकों के लिए धन देता हूँ।

स्त्रीलिंग में प्रयोग—

(1) विंशतिः बालिकाः सन्ति। बीस बालिकाएं हैं।

(2) विंशतिं बालिका: पश्यामि। बीस बालिकाओं को देखता हूँ।

(3) विंशत्या बालिकाभिः सह गच्छामि। बीस बालिकाओं के साथ जाता हूँ।

(4) विंशतये बालिकाभ्यः धनं ददामि। बीस बालिकाओं को धन देता हूँ।

नपुंसकलिंग में प्रयोग—

(1) विंशतिः फलानि सन्ति। बीस फल हैं।

(2) विंशतिं फलानि पश्यामि। बीस फलों को देखता हूँ।

(3) विंशत्या मित्रैः फलानि त्रोटयामि। बीस मित्रों से फलों को तुड़वाता हूँ।

बोधप्रश्न-1

1. अधोलिखित संख्याओं को लिखें।

10,8,55,96

2. इन संख्याओं को अंको में लिखें। षोडश, नवनवतिः, त्रयस्त्रिंशत्, अष्टाविंशतिः

3. निम्नलिखित वाक्यों को लिखें।

1. (10) बालकाः पठन्ति।

2. (3) बालिकाः भोजनं कुर्वन्ति।

3. (2) पत्रे पततः।

4. संख्याओं का मेल करें।

1. 10 (क) त्रिंशत्

2. 20 (ख) चत्वारिंशत्

3. 30 (ग) दश

4. 60 (घ) विंशति

5. 30 (ङ) षष्टिः

5. इन संख्याओं का स्त्रीलिंग में क्या रूप होते हैं ?

क. 20

ख. 30

ग. 40

घ. 53

6. इन संख्याओं का पुल्लिंग में क्या रूप होते हैं ?

क. 60

ख. 54

ग. 21

घ. 91

5.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आप तीनों लिंगों के प्रयोग एवं उसके तीनों लिंगों को कैसे जाना जा सकता है ? और कैसे व्यवहार होता है इसे जान सकेंगे। ऐसे ही डट् तमट् प्रत्ययों का प्रयोग कैसे विशेषण के रूप में होता है ? इसे दृढ़ता से समझ सकेंगे। ऐसे ही बीस के बाद विशेषण के रूप में जो नियम है, जो लिंग, वचन और विभक्ति है वही विशेष्य का लिंग, वचन और विभक्ति विशेषण के समान हो यह नियम यहाँ नहीं लगता है इसे जान सकेंगे। क्योंकि बीस से निन्यानवे तक या आगे भी संख्या सभी जगह एकवचनान्त होती हैं। इसे समझ सकेंगे और उसका प्रयोग करने में भी समर्थ होंगे। इस पाठ में संख्या का लिंग ज्ञान, संख्या का सामान्य उच्चारण एवं प्रयोग कैसे होगा इत्यादि विषय को आप पूर्ण रूप से जानने में समर्थ हो सकेंगे।

5.5 शब्दावली

एकम्	-	एक
चत्वारि	-	चार
त्रिंशत्	-	तीस
शतस्य	-	सौ लोगों
नवम्	-	नौ
षट्सप्ततिः	-	76
अष्टादशोत्तरद्विसहस्रतमवर्षम्	-	2018

5.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.दश, अष्टौ, पञ्चपञ्चाशत्, षण्णवतिः

2.16, 99, 33, 28

3. दश, तिस्रः, द्वे

4. 1-ग, 2-घ, 3-ख, 4-ङ, 5-क

5. क. 20 विंशी, विंशतितमी

ख. 30 त्रिंशी, त्रिंशत्तमी

ग. 40 चत्वारिंशी, चत्वारिंशत्तमी

घ. 53 त्रिपञ्चाशति, त्रिपञ्चाशत्तमी

6. क. 60 षष्टितमः

ख. 54 चतुःपञ्चाशः/चतुःपञ्चाशत्तमः

ग. 21 एकविंशः/एकविंशतितमः

घ. 91 एकनवतः/एकनवतितमः

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.अनुवाद चन्द्रिका - डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी - चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

2. बृहद् अनुवाद चन्द्रिका - चक्रधर नौटियाल 'हंस' शास्त्री – मोतीलाल बनारसीदास

3. शुद्धिकौमुदी – जनार्दन हेगडे – संस्कृत भारती, बैंगलुरम्

4. संस्कृतरचना – श्री वामन शिवराम आप्टे - चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी

5.8 उपयोगी पुस्तकें

1.वर्णमाला परिचयः - राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, नवदेहली।

2.भाषाप्रवेशः - संस्कृतभारती, नवदेहली।

3.संस्कृतगुणनकोष्टकम् - संस्कृतभारती, बैंगलूरू।

4. अनुवादचन्द्रिका –डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी – चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी

5.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. एक से लेकर तीस तक की संख्या को संस्कृत में लिखिए।

इकाई-6 सरल वाक्य निर्माण प्रक्रिया

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 सरल वाक्य निर्माण प्रक्रिया
6.3.1 वर्णमाला का सामान्य परिचय
6.3.2 संज्ञा-सर्वनाम-विशेषण परिचय एवं वाक्य प्रयोग
6.3.3 शुद्ध एवं अशुद्ध शब्दों का विचार
6.3.4 दैनिक-वाक्यप्रयोग एवं शिष्टाचार
6.3.5 सप्तककार एवं वाक्यप्रयोग
6.4 सारांश
6.5 शब्दावली
6.6 बोध प्रश्नों के उत्तर
6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.8 उपयोगी पुस्तकें

6.1 प्रस्तावना

संस्कृत भाषा एवं साहित्य से सम्बन्धित प्रथम खण्ड की अन्तिम इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में आपने संस्कृत भाषा के स्वरूप के बारे में अध्ययन किया। इस इकाई का विषय है - सरल वाक्य निर्माण प्रक्रिया। हम जानते ही हैं कि संस्कृत में व्यवहार करने के लिए अधिक अभ्यास अपेक्षित होता है । भाषा के अभ्यास से ही कोई भी व्यक्ति संस्कृत में व्यवहार कर सकता है और नये वाक्यों का निर्माण करने में भी समर्थ हो सकता है। इस इकाई में आप संस्कृत में प्रश्नोत्तर कैसे करें, संस्कृत में व्यवहार कैसे करे, यह जानने और पढ़ने में समर्थ होंगे । इसी प्रकार छोटे-छोटे वाक्यों का निर्माण कर संस्कृत में कैसे व्यवहार करना चाहिए यह जान सकते हैं। संस्कृत अभ्यास के द्वारा आती है । उसके लिए विभिन्नस्तरों पर संस्कृत के कुछ अभ्यास हम सबको निरन्तर करने चाहिए । इसके माध्यम से उनमें भाषा दक्षता और नये वाक्य निर्माण करने का सामर्थ आयेगा।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- अपने परिचय को संस्कृत भाषा में देने में समर्थ हो सकेंगे ।
- संस्कृत के लघु-लघु प्रयोगो का निर्माण करने में सक्षम हो सकेंगे।
- संस्कृत के समान्य व्यवहार को जानने में समर्थ हो सकेंगे।
- शुद्ध एवं अशुद्ध शब्दों की पहचान करने में समर्थ हो सकेंगे।
- संस्कृत भाषा में दैनिक-वाक्यप्रयोग कर सकेंगे।
- घर में संस्कृतमय व्यवहार कैसे करना चाहिए, यह जान सकेंगे।
- विद्यालय व्यवहार में समर्थता प्राप्त कर सकेंगे ।
- वाकयाभ्यास करके संस्कृत व्यवहार करनें में समर्थ हो सकेंगे
- संस्कृत को पढ़ने और धारण करने में समर्थ हो सकेंगे ।
- संज्ञा-सर्वनाम-विशेषण से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- सप्तककारों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

6.3 सरल वाक्य निर्माण प्रक्रिया

पद भाषा का मुख्य अंग होता है। पदों का समूह ही वाक्य कहलाता है और वाक्यों के समूह को ही भाषा कहा जाता है। भाषा में इन सभी का प्रयोग होता है। किसी भी भाषा को जानने के लिये उस भाषा की वर्णमाला का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। भाषा का प्रथम स्वरूप उसके वर्णों में ही दिखता है, क्योंकि वर्णों से ही पदों का निर्माण होता है और पदों से वाक्यों का निर्माण होता है। भाषा में वाक्यों की ही प्रमुखता होती है। वाक्यों से ही विचारों का आदान प्रदान होता है। कुछ उदाहरणों एवं नियमों के माध्यम से इस प्रक्रिया समझने का प्रयास करते हैं।

6.3.1 वर्णमाला का सामान्य परिचय—

सर्वप्रथम हम लौकिक संस्कृत के ही संदर्भ में वर्णमाला को पढेंगे। वर्णमाला में स्वर, व्यञ्जन एवं संयुक्त वर्ण भी होते हैं । किसी भी भाषा के वर्णों का सुव्यवस्थित समूह ही वर्णमाला कहलाता है। **स्वर वर्ण परिचय**– जिनका उच्चारण स्वतन्त्ररूप से होता है, वे ही स्वर कहलाते हैं। अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ए, ऐ, ओ, और औ ये सभी स्वर हैं । स्वरवर्ण ह्रस्व (अ, इ, उ इत्यादि) ,दीर्घ (आ, ई, ऊ इत्यादि) एवं प्लुत (अ३३३!) भेद से तीन प्रकार के है। संस्कृत भाषा में तेरह (13) स्वर हैं।

व्यञ्जन वर्ण परिचय— संस्कृतभाषा में तैंतीस (33) व्यञ्जनवर्ण हैं। जिन वर्णों का उच्चारण स्वर वर्णों की सहायता के बिना नहीं किया जा सकता, उन्हें हल् या व्यंजन कहते हैं। वर्णों के उच्चारण के समय मुख से जब वायु निकलती है, तब वायु का अवरोध होता है अर्थात् वायु टकराती है। यथा - क्, ख्, ग्, घ् इत्यादि सभी व्यञ्जनवर्ण हैं।) संस्कृत की भाषा में 'क' आदि वर्ग, अन्तस्थ और उष्म, भी कहा जाता है। ये निम्नलिखित हैं-

क, ख, ग, घ, ड.	-	क वर्ग
च, छ, ज, झ, ञ्	-	च वर्ग
ट, ठ, ड, ढ, ण	-	ट वर्ग
त, थ, द, ध, न	-	त वर्ग
प, फ, ब, भ, म	-	प वर्ग
य, र, ल, व	-	अन्तस्थ
श, ष, स, ह	-	उष्म 33 वर्ण

संयुक्तवर्ण परिचय— संस्कृत में कई वर्ण ऐसे हैं जो संयुक्त होने पर ही उच्चरित होते हैं, इनका निर्माण व्यंजन वर्णो एवं स्वर वर्णो के संयोग ही होता है। ये निम्नलिखित हैं- क्ष, त्र, ज्ञ, द्य, श्र। पूर्व में हमने संस्कृत वर्णमाला का परिचय प्राप्त किया। अब हम संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि शब्दों परिचय प्राप्त करेंगे

6.3.2 संज्ञा-सर्वनाम-विशेषण परिचय एवं वाक्य प्रयोग—

संज्ञा परिचय— किसी व्यक्ति का, किसी वस्तु का, किसी स्थान का, किसी समूह का, किसी भाव का, किसी जाति का नाम ही संज्ञा कहा जाता है। जैसे - राम, घर, दिल्लीनगर, सेना, बुढ़ापा, पशु, जाना इत्यादि। ये सभी संज्ञा पद हैं। संज्ञा पांच प्रकार के होते हैं, व्यक्तिवाचक संज्ञा, जातिवाचक संज्ञा, भाववाचक संज्ञा, द्रव्यवाचक संज्ञा और समूहवाचक संज्ञा। ये संज्ञा शब्द तीनों लिंगों, तीनों वचनों, सभी कालों, सातों विभक्तियों में विभक्त होकर अनेक रूपों में परिवर्तित होते हैं तथा संज्ञा शब्द क्रिया शब्द के साथ मिलकर सहस्र वाक्यों का निर्माण करते हैं, जैसे-

बालकः गच्छति	-	बालक जाता है।
महिला कार्यं करोति	-	महिला कार्य करती है।
वृक्षः फलति	-	वृक्ष में फल लगते हैं।
अश्वः धावति	-	घोड़ा दौड़ता है।
मानवधर्मः सर्वोत्तमः	-	मानव धर्म सर्वोत्तम है।
रामः गच्छति	-	राम जाता है।
माता वदति	-	माता कहती है।
पुष्पं विकसति	-	फूल खिलता है।
सेना रक्षति	-	सेना रक्षा करती है।
नृत्यं मनोहरम् अस्ति	-	नृत्य मनोहर है।

यहॉ पर प्रथम वाक्य के रूप में 'बालक जाता है' वाक्य में 'बालक' संज्ञा शब्द है और जाता है क्रिया शब्द है। इस प्रकार संज्ञा शब्दों और क्रिया शब्दों के संयोग से अनेक वाक्यों का निर्माण हो सकता है।

सर्वनाम परिचय— सर्वनाम शब्दों का उपयोग सामान्यरूप से संज्ञा शब्दों के स्थान में होता है। इनका प्रयोग तीनों लिंगों, सातों विभक्तियों में होता है, किन्तु सम्बोधन में नहीं होता है। यथा-

सः बालकः	-	वह बालक।
सा बालिका	-	वह बालिका।
तत् वाहनम्	-	वह वाहन।

कः बालक - कौन बालक?
का बालिकाः - कौन बालिका?
किं वाहनम् - कौन वाहन?
एषः बालकः - यह बालक।
एषा बालिका - यह बालिका।
एतत् वाहनम् - यह वाहन।

वाक्य प्रयोग विधि एवं नियम—

पुल्लिंग—

	एकवचनम्	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
प्रथमपुरुषः	सः (वह)	तौ (वे दो)	ते (वे सब)
मध्यमपुरुषः	त्वम् (तू)	युवाम् (तुम दो)	यूयम्
उत्तमपुरुषः	अहं (मैं)	आवाम् (हम दो)	वयम् (हम सब)

स्त्रीलिंग—

	एकवचनम्	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
प्रथमपुरुषः	सा (वह)	ते (वे दो)	ताः (वे सब)
मध्यमपुरुषः	त्वम् (तू)	युवाम् (तुम दो)	यूयम्(तुम सब)
उत्तमपुरुषः	अहं (मैं)	आवाम् (हम दो)	वयम् (हम सब)

नपुंसकलिंग—

	एकवचनम्	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
प्रथमपुरुषः	तत् (वह)	ते (वे दो)	तानि (वे सब)

युष्मद् और अस्मद् को छोड़कर सर्वनाम शब्द तीनों लिंगों में विशेष्य के अनुसार ही होते हैं। अब यहां हम तद् शब्द के तीनों लिंगों एवं सातों विभक्तियों में प्रयोग के माध्यम से जानने का प्रयास करते है।

पुल्लिंग सर्वनाम तद् शब्द

विभक्तिः	**एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
प्रथमा	सः बालकः	तौ बालकौ	ते बालकः
द्वितीया	तं बालकम्	तौ बालकौ	तान् बालकान्
तृतीया	तेन बालकेन	ताभ्यां बालकाभ्याम्	तैः बालकैः
चतुर्थी	तस्मै बालकाय	ताभ्यां बालकाभ्याम्	तेभ्यः बालकेभ्यः
पंचमी	तस्मात् बालकात्	ताभ्यां बालकाभ्याम्	तेभ्यः बालकेभ्यः
षष्ठी	तस्य बालकस्य	तयोः बालकयोः	तेषां बालकानाम्
सप्तमी	तस्मिन् बालके	तयोः बालकयोः	तेषु बालकेषु

अभ्यास—

1. सः बालकः गच्छति।
2. तौ बालकौ पठतः।
3. ते बालकाः धावन्ति।
4. तं बालकम् आह्वयतु।
5. तौ बालकौ प्रेषयतु।
6. तान् बालकान् पाठयतु।

7. तेन बालकेन कार्यं कृतम्।
8. ताभ्यां बालकाभ्याम् लेखः लिखितः।
9. तैः बालकैः चलचित्रं दृष्टम्।
10. तस्मै बालकाय मोदकं रोचते।
11. ताभ्यां बालकाभ्यां पानीयं ददातु।
12. तेभ्यः बालकेभ्यः गृहकार्यं दातव्यम्।
13. तस्मात् बालकात् कन्दुकं स्वीकरोतु।
14. ताभ्यां बालकाभ्याम् पंजीकरणशुल्कं गृह्णातु।
15. तेभ्यः बालकेभ्यः फलानि प्राप्नोतु।
16. तस्य बालकस्य नाम रमेशः अस्ति।
17. तयोः बालकयोः गृहं हरिद्वारे अस्ति।
18. तेषां बालकानां विद्यालयः नैनीताले अस्ति।
19. तस्मिन् बालके बहवः गुणाः सन्ति।
20. तयोः बालकयोः एकरूपता अस्ति।
21. तेषु बालकेषु एकः बुद्धिमान् अस्ति।

स्त्रीलिंगसर्वनाम तद्शब्द

विभक्तिः	**एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
प्रथमा	सा लता	ते लते	ताः लताः
द्वितीया	तां लताम्	ते लते	ताः लताः
तृतीया	तया लतया	ताभ्यां लताभ्याम्	ताभिः लताभिः
चतुर्थी	तस्यै लतायै	ताभ्यां लताभ्याम्	ताभ्यः लताभ्यः
पंचमी	तस्याः लतायाः	ताभ्यां लताभ्याम्	ताभ्यः लताभ्यः
षष्ठी	तस्याः लतायाः	तयोः लतयोः	तसां लतानाम्
सप्तमी	तस्यां लतायाम्	तयोः लतयोः	तासु लतासु

अभ्यास—

1. सा बालिका लता अस्ति।
2. तां लताम् विद्यालयं प्रेषयतु।
3. तया लतया सह वार्तालापं करोतु।
4. तस्यै लतायै पुस्तकं ददातु।
5. तस्याः लतायाः लेखनीं स्वीकरोतु।
6. तस्याः लतायाः गृहं सुन्दरम् अस्ति।
7. तस्यां लतायाम् लेखनक्षमता अधिका अस्ति।

नपुंसकलिंगसर्वनाम तद्शब्द

विभक्तिः	**एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
प्रथमा	तत् फलम्	ते फले	तानि फलानि
द्वितीया	तत् फलम्	ते फले	तानि फलानि
तृतीया	तेन फलेन	ताभ्यां फलाभ्याम्	तैः फलैः
चतुर्थी	तस्मै फलाय	ताभ्यां फलाभ्याम्	तेभ्यः फलेभ्यः

पंचमी	तस्मात् फलात्	ताभ्यां फलाभ्याम्	तेभ्यः फलेभ्यः
षष्ठी	तस्य फलस्य	तयोः फलयोः	तेषां फलानाम्
सप्तमी	तस्मिन् फले	तयोः फलयोः	तेषु फलेषु

अभ्यास—

1. तत् फलम् अस्ति।
2. तत् फलं खादतु।
3. तेन फलेन बुभुक्षां निवायतु।
4. तस्मै फलाय लवणमपि आवश्यकम्।
5. तस्मात् फलात् बींज निष्कासयतु।
6. तस्य नाम मधुकर्कटी अस्ति।
7. तस्मिन् आम्रफले बहु रसः अस्ति।

सर्वनाम अस्मद् शब्द

विभक्तिः	**एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
प्रथमा	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वितीया	माम्	आवाम्	अस्मान्
तृतीया	मया	आवाभ्याम्	अस्मभ्यम्
चतुर्थी	मह्यम्	आवाभ्याम्	अस्मभ्यम्
पंचमी	मत्	आवाभ्याम्	अस्मभ्यम्
षष्ठी	मम	आवयोः	अस्माकम्

अस्मद् शब्द के वाक्य प्रयोग—

1. अहं छात्रः अस्मि।
2. आवाम् विद्यालयं गच्छावः।
3. वयं सर्वे भारतीयाः स्मः।
4. मां बोधकथां श्रावयतु।
5. आवां गृहं प्रेषयतु।
6. अस्मान् व्याकरणं बोधयतु।
7. मया श्लोकः पठितः।
8. आवाभ्यां गीतायाः परायणं कृतम्।
9. अस्माभिः गुरुणां सेवा कृता।
10. मह्यं संस्कृतं रोचते।
11. आवाभ्यां ग्रन्थं ददातु।
12. अस्मभ्यं भोजनम् आनयतु।
13. मत् धनं स्वीकरोतु।
14. आवाभ्यां क्रीडनकं गृह्णातु।
15. अस्मभ्यं निःशुल्कं नीतिपुस्तकं नयन्तु।
16. मम नाम अभिनवः अस्ति।
17. आवयोः परीक्षाः श्वः भविष्यति।
18. अस्माकं देशः भारतदेशः अस्ति।

19. मयि विलक्षणप्रतिभा अस्ति।
20. आवयोः चांचल्यम् अधिकम् अस्ति।
21. अस्मासु एकता अस्ति।

सर्वनाम युष्मद् शब्द

विभक्तिः	**एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
प्रथमा	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वितीया	त्वाम्	युवाम्	युष्मान्
तृतीया	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः
चतुर्थी	तुभ्यम्	युवाभ्याम्	युष्मभ्यम्
पंचमी	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मभ्यम्
षष्ठी	तव	युवयोः	युष्माकम्
सप्तमी	त्वयि	युवयोः	युष्मासु

युष्मद् शब्द के वाक्य प्रयोग—

1. त्वं कोऽसि?
2. त्वाम् अहं जानामि।
3. त्वया उत्तमं कार्यं कृतम्।
4. तुभ्यं पुरस्कारं प्रयच्छामि।
5. त्वत् लेखनीं स्वीकरोमि।
6. तव कार्यालयः कुत्र अस्ति।
7. त्वयि आत्मीयतां पश्यामि।

विशेषण परिचय— जो शब्द संज्ञा पदों व सर्वनाम पदों की विशेषता बतलाते हैं, वे विशेषण पद कहलाये जाते हैं, यथा – सुन्दर पुष्प। पुष्प कैसा है ? पुष्प सुन्दर है। यहाँ 'सुन्दर शब्द' पुष्प की विशेषता बतलाता है, इसलिये 'सुन्दर' पुष्प का विशेषण है। विशेषण 4 प्रकार के होते हैं। 1.गुणवाचक विशेषण, 2.परिमाणवाचक विशेषण, 3.संख्यावाचक विशेषण, 4.सार्वनामिक विशेषण

6.3.3 शुद्ध एवं अशुद्ध शब्दों का विचार —

पद अपने अर्थ को तभी प्रकट करते हैं, जब वे शुद्ध होते हैं। अशुद्धताएँ बहुत प्रकार की होती हैं, यथा लिखने में अशुद्धता, उच्चारण में अशुद्धता इत्यादि। संस्कृत भाषा की यह विशेषता है कि इसमें जैसा लिखा जाता है, उसे वैसा ही पढ़ा जाता है। इसलिये अशुद्ध लेखन से पढ़ने व उच्चारण में अशुद्धता हो जाती है। संस्कृत भाषा अत्यन्त परिष्कृत व शुद्ध भाषा है, इसलिये संस्कृत के लेखन में व उच्चारण में शुद्धता अवश्य होनी चाहिये। सामान्य रूप से लोग जिन पदों का अशुद्ध रूप में उच्चारण करते हैं, उनके शुद्ध रूप यहाँ दिये गए हैं।

अशुद्धपदानि	**शुद्धपदानि**	**अशुद्धपदानि**	**शुद्धपदानि**
कृप्या	कृपया	धूम्रपानम्	धूमपानम्
नमस्कारम्	नमस्कारः	प्रसादम्	प्रसादः
श्रृङ्गारः	शृङ्गारः	दम्पतिः	दम्पती
राष्ट्रीयः	राष्ट्रियः	उज्जवलः	उज्ज्वलः
सन्यासी	संन्यासी	महत्वम्	महत्त्वम्
आर्शीवादः	आशीर्वादः	जगतस्य	जगतः
लिखिष्यति	लेखिष्यति	श्रीमति	श्रीमती

हनुमानाय नमः	हनुमते नमः	तत्वावधाने	तत्त्वावधाने
फ़लम्	फलम्	अत्याधिकम्	अत्यधिकम्
निरोगः	नीरोगः	उपरोक्त	उपर्युक्तम्
संसदस्य	संसदः	अनाधिकृतः	अनधिकृतः
अर्थात	अर्थात्	केन्द्रियः	केन्द्रीयः
ब्राम्हणः	ब्राह्मणः	चिन्हम्	चिह्नम्
निशुल्कम्	निःशुल्कम्	दुखम्	दुःखम्
ब्रम्हा	ब्रह्मा	ज्योत्सना	ज्योत्स्ना
स्त्रोतः	स्रोतः	जाग्रतिः	जागृतिः

6.3.4 दैनिक-वाक्यप्रयोग एवं शिष्टाचार—

1.	हरि ऊँ	-	हरि ऊँ। (हैलो)
2.	नमस्ते/नमस्कारः	-	नमस्कार। (हैलो)
3.	नमो नमः	-	बारबार नमस्कार। (हैलो)
4.	सुप्रभातम्	-	सुप्रभात। (गुड मार्निंग)
5.	शुभमध्याह्नः	-	शुभमध्याह्न। (गुड आफ्टर नून)
6.	शुभसन्ध्या	-	शुभसन्ध्या। (गुड इवनिंग)
7.	शुभरात्रिः	-	शुभरात्रि। (गुड नाईट)
8.	धन्यवादः	-	धन्यवाद। (थैंक्स)
9.	स्वागतम्	-	स्वागत। (वैलकम)
10.	मान्ये/महोदया	-	श्रीमती जी/ महोदया (मैडम)
11.	श्रीमन्/महोदय	-	श्रीमान् जी/ महोदय (सर)
12.	कः समयः	-	क्या समय हुआ?
13.	अस्तु	-	जी/ जी हाँ/ ठीक है।
14.	कृपया	-	कृपया। (पिलीज)
15.	अद्य किं दिनम्	-	आज कौन सा दिन है।
16.	चिन्ता मास्तु	-	कोई बात नहीं/चिन्तामतकीजिए। (डौन्ट वरि)
17.	क्षम्यताम्	-	क्षमा कीजिए। (सौरि)
18.	पुनः मिलामः	-	फिर मिलेंगे। (सी यू)
19.	साधु साधु	-	बहुत अच्छा। (वैरी गुड)
20.	उत्तमम्	-	अच्छा है। (गुड)
21.	बहुत समीचीनम्	-	बहुत अच्छा। (वैरी गुड)
22.	शुभाशयाः	-	शुभ की ईच्छा।
23.	शुभकामनाः	-	शुभकामनाएं। (कौग्रेच्यूलेशन)
24.	अभिनन्दनानि	-	अभिनन्दन।
25.	वर्द्धापनानि	-	बधाईयां।
26.	कः विचारः?	-	क्या विचार है।
27.	शुभदिनम्	-	शुभ दिन।
28.	शुभक्षणम्	-	शुभक्षणम्।

इन वाक्यों का प्रयोग प्रश्नोत्तर के माध्यम से करने का प्रयास करते हैं।

किम्/ वा/आम्/न का प्रयोग—

1.	प्रश्नः	-	बालकः वदति किम्?	-	बालक बोलता है क्या?
2.	उत्तरम्	-	आम्, बालकः वदति।	-	हाँ बालक बोलता है।
3.	प्रश्नः	-	गीता खादति किम्?	-	गीता खाती है क्या?
4.	उत्तरम्	-	न, गीता न खादति।	-	नहीं, गीता नहीं खाती है।
5.	प्रश्नः	-	अतुलः धावति वा?	-	अतुल दौड़ता है क्या?
6.	उत्तरम्	-	न, अतुलः न धावति।	-	नहीं,अतुल नहीं दौड़ता है।
7.	प्रश्नः	-	माता ताडयति वा?	-	मातापिटाई करती है क्या?
8.	उत्तरम्	-	न, माता न ताडयति।	-	नहीं, माता नहीं मारती है।

उपर्युक्त वाक्य में 'किम्' और 'वा' शब्द प्रश्नवाचक शब्द के रूप में प्रयुक्त हुये हैं तथा 'आम्' का अर्थ है 'हाँ' और 'न' का अर्थ है 'नहीं' है।

भवान्/भवती का प्रयोग—

1.	भवान् आगच्छतु।	-	आप आईये।
2.	भगिनी भवती अपि आगच्छतु।	-	बहिन आप भी आईये।
3.	कृपया भवान् उपविशतु।	-	कृपया आप बैठिये।
4.	भगिनि कृपया भवती उपविशतु।	-	बहिन कृपया आप बैठिये।
5.	भवान् जलं स्वीकरोतु पिबतु च ।	-	आप जल ग्रहण करें और पीवें।
6.	भवान् काफीं पिबति किम्?	-	आप काफी पीयेंगे क्या?
7.	आम्, अहं कफघ्नीं (काफीं) पास्यामि।	-	हाँ मैं काफी पीऊँगा।
8.	भवान् भोजनं करोति वा?	-	आप भोजन करेंगे क्या?
9.	न, अहं भोजनं न करिष्यामि।	-	नहीं, मैं भोजन नहीं करुँगा।

संस्कृत में 'भवान्' शब्द का पुल्लिंग में और 'भवती' शब्द स्त्रीलिंग में का प्रयोग 'आप' के लिए प्रयोग होता है। ये शब्द प्रथमा विभक्ति एकवचन के हैं अतः इनके साथ में क्रियाऐं भी प्रथमपुरुष एकवचन ही लगेंगी।

सरल वाक्यप्रयोग— अब सर्वप्रथम वाक्यनिर्माण करने की विधि को जानने का प्रयास करते हैं। और यह बात सर्वदा स्मरण में रखनी है कर्ता के अनुसार क्रिया का चयन किया जायेगा। जैसे—

संस्कृत में पुरूष एवं वचन

पुल्लिंग—

	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथम पुरुष	सः (वह)	तौ (वे दो)	ते (वे सब)
मध्यम पुरुष	त्वम् (तू)	युवाम् (तुम दो)	यूयम् (तुम सब)
उत्तम पुरुष	अहं (मैं)	आवाम् (हम दो)	वयम् (हम सब)

स्त्रीलिंग—

	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथम पुरुष	सा (वह)	ते (वे दो)	ताः (वे सब)
मध्यम पुरुष	त्वम् (तू)	युवाम् (तुम दो)	यूयम् (तुम सब)
उत्तम पुरुष	अहं (मैं)	आवाम् (हम दो)	वयम् (हम सब)

नपुंसकलिंग—

	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
प्रथम पुरुष	तत् (वह)	ते (वे दो)	तानि (वे सब)
मध्यम पुरुष	त्वम् (तू)	युवाम् (तुम दो)	यूयम् (तुम सब)
उत्तम पुरुष	अहं (मैं)	आवाम् (हम दो)	वयम् (हम सब)

युष्मद् और अस्मद् को छोड़कर सर्वनाम शब्द तीनों लिंगों में विशेष्य के अनुसार ही होते हैं

वर्तमानकाल में इस प्रकार अभ्यास करें-

धातवः	**पुरुषः**	**एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
पठ्	प्रथमपुरुषः	पठति	पठतः	पठन्ति
हस्	प्रथमपुरुषः	हसति	हसतः	हसन्ति
लिख्	प्रथमपुरुषः	लिखति	लिखतः	लिखन्ति

लट्लकारः (वर्तमानकालः) प्रथमपुरुषः, एकवचनम्

1. सः पठति - वह पढता है।
2. सा शिक्षिका गच्छति - वह शिक्षिका जाती है।
3. तत् पत्रं पतति - वह पत्ता गिरता है।

प्रथम वाक्य में पठति क्रिया का कार्य सः कर्ता है, द्वितीय में गच्छति क्रिया का कार्य सा कर्ता है, तृतीय वाक्य में पतति क्रिया का कार्य तत् कर्ता है, ये तीनों सः,साः,तत् कर्ता हैं क्योंकि क्रिया को करने वाला क्रिया होता है। इसी प्रकार अन्य वाक्यों का भी निर्माण किया जायेगा।

लट्लकारः (वर्तमानकालः) प्रथमपुरुषः, द्विवचनम्

1. तौ युवकौ क्रीडतः - वे दो युवक खेलते हैं।
2. ते छात्रे हसतः - वे दो छात्राऐं हँसती हैं।
3. ते पुष्पे विकसन्ति - वे दो फूल विकसित होते हैं।

लट्लकारः (वर्तमानकालः) प्रथमपुरुषः, बहुवचनम्

1. ते गायकाः गायन्ति - वे गायक गाते हैं।
2. ताः महिलाः पचन्ति - वे महिलायें पकाती हैं।
3. तानि वाहनानि चलन्ति - वे वाहन चलते हैं।

भूतकाल में इस प्रकार अभ्यास करें-

धातवः	**पुरुषः**	**एकवचनम्**	**द्विवचनम्**	**बहुवचनम्**
पठ्	प्रथममपुरुषः	अपठत्	अपठताम्	अपठन्
गी	प्रथममपुरुषः	अगायत्	अगायताम्	अगायन्
मृ	प्रथममपुरुषः	अमारयत्	अमारयताम्	अमारयन्

लङ्लकारः (भूतकालः) प्रथमपुरुषः, एकवचनम्

1. छात्रः श्लोकम् अपठत् - छात्र ने श्लोक पढा।
2. रेखा गीतम् अगायत् - रेखा ने गीत गाया।
3. सः लेखम् अलिखत् - उसने लेख लिखा।
4. पण्डितः सत्यम् अवदत् - पण्डित ने सत्य बोला।

लङ्लकारः (भूतकालः) प्रथमपुरुषः, द्विवचनम्

1. युवकौ अधावताम् - दो युवक दौडे।
2. वृद्धौ फलानि अखाद्यताम् - दो शिक्षकौ ने फल खाये।

3. महिले अहसताम् - दो महिलाऐं हँसी।
4. सैनिकौ चौरान् अमारयताम् - दौ सैनिकों ने चोरों को मारा।

लङ्लकारः (भूतकालः) प्रथमपुरुषः, बहुवचनम्

1. ब्रह्मचारिणः मन्त्रान् अवदन् - ब्रह्मचारियों ने मन्त्रों को पढा।
2. ताः लेखम् अलिखन् - उन्होने लेखं को लिखा।
3. धनिकाः भिक्षुकेभ्यः धनम् अददन् - धनिकों ने भिखारियों को धनं दिया।
4. युवानः अक्रीडन् - युवाओं ने खेला।

भविष्यकाल में इस प्रकार अभ्यास करें-

धातवः	पुरुषः	एकवचनम्	द्विवचनम्	बहुवचनम्
गम्	प्रथमपुरुषः	गमिष्यति	गमिष्यतः	गमिष्यन्ति
क्रि	प्रथमपुरुषः	केष्यति	केष्यतः	केष्यन्ति
लिख्	प्रथमपुरुषः	लेखिष्यति	लेखिष्यतः	लेखिष्यन्ति

लृट्लकारः (भविष्यकालः) प्रथमपुरुषः, एकवचनम्

1. अनिलः श्वः ऋषिकेशं गमिष्यति - अनिल कल ऋषिकेश जायेगा।
2. राकेशः गृहात् अद्य आगमिष्यति - राकेश घर से आज आयेगा।
3. बालकः लेखं लेखिष्यति - बालक लेख लिखेगा।
4. पुत्रः यानं क्रेष्यति - पुत्र यान खरीदेगा।

लृट्लकारः (भविष्यकालः) प्रथमपुरुषः, द्विवचनम्

1. छात्रौ प्रतियोगितायां गमिष्यतः - दो छात्र प्रतियोगिता में जायेंगे।
2. सेवकौ कार्यं करिष्यतः - दो सेवक कार्य करेंगे।
3. अधिकारिणौ कारयानेन आगमिष्यतः - दो अधिकारी कार से आयेंगे।
4. शिक्षकौ परश्वः पाठिष्यतः - दो शिक्षक परसों पढायेंगे।

लृट्लकारः (भविष्यकालः) प्रथमपुरुषः, बहुवचनम्

1. छात्राः विद्यालयं गमिष्यन्ति - छात्र विद्यालय जायेंगे।
2. ग्रामीणः बसयानेन आगमिष्यन्ति - ग्राँव के लोग बस से आयेंगे।
3. महिलाः आभूषणानि क्रेष्यन्ति - महिलायें आभूषण खरीदेंगे।
4. दुष्टान् देवाः दण्डयिष्यन्ति - दुष्टों को देवता दण्ड देंगे।

इसी प्रकार से अन्य कालों में भी वाक्यों का निर्माण किया जाता है।

अभ्यासप्रश्न –1 इन वाक्यों का संस्कृतभाषा में अनुवाद करें।

1. आपका नाम क्या है। -
2. मेरा नाम अभिनव है। -
3. आइये बैठिये। -
4. आपका विद्यालय कहॉ हैं। -
5. मैं चाय पी रहा हूॅ। -
6. क्या आप प्रातः पॉच बजे उठते हैं। -
7. क्या आप चिकित्सक हैं। -
8. नहीं मैं शिक्षक हूॅ। -
9. आप क्या करती हैं। -

10. आपके भाई का नाम क्या है। -

6.3.5 सप्तककार एवं वाक्यप्रयोग—

संस्कृतभाषा में प्रश्न करने के लिए किम्- क्या ? कुत्र- कहॉ ? कति- कितने ? कदा- कब ? कुतः- कहॉ से ? कथम्- कैसे ? किमर्थम्- क्यों ?/किसलिए ? इन सात प्रश्नवाचक विशेषेणों का प्रयोग किया जाता है। इन प्रश्नवाचक शब्दों को जानने से हम संस्कृत में सरलतया संवाद कर पाते हैं। जैसे—

1.	बालकः लिखति।	प्रश्नः- बालकः किं करोति?
2.	श्रीहरिः वैकुण्ठं गच्छति।	प्रश्नः- श्रीहरिः कुत्र गच्छति ?
3.	पाण्डवाः पंच आसन्	प्रश्नः- पाण्डवाः कति आसन् ?
4.	मातामही सप्तवादने आगतवती।	प्रश्नः- मातामही कदा आगतवती ?
5.	राष्ट्रपतिः देहलीतः आगमिष्यति।	प्रश्नः- राष्ट्रपतिः कुतः आगमिष्यति ?
6.	लतामंगेशकर मधुरं गायति।	प्रश्नः- लतामंगेश्कर कथं गायति ?
7.	शिशुः दुग्धार्थं रोदिति।	प्रश्नः- शिशुः किमर्थं रोदिति ?

1. 'किम्' का प्रयोग - अधोलिखित वाक्यों को ध्यान से अध्ययन करें-

सः शोधकार्यं करोति।	प्रश्नः- सः किं करोति ?
सुरेशः चित्रं पश्यति।	प्रश्नः- सुरेशः किं पश्यति।
माता तण्डुलं पचति।	प्रश्नः- माता किं पचति।
कृषकः बीजं वपति।	प्रश्नः- कृषकः किं वपति।
वैज्ञानिकः अन्वेषणं करोति।	प्रश्नः- वैज्ञानिकः किं करोति।
अभियन्ता भवनं निर्माति।	प्रश्नः- अभियन्ता किं निर्माति।

किम्, एक प्रश्नवाचक शब्द है, जिसका प्रयोग सामान्यतः प्रथमान्त व द्वितीयान्त शब्दों के साथ क्या इस अर्थ में प्रश्न करते समय होता है। 'किम् ?' शब्द का अर्थ है क्या ?।

2. 'कुत्र' का प्रयोग - अधोलिखित वाक्यों को ध्यान से अध्ययन करें-

दिनेशः वैद्यालयं गच्छति।	प्रश्नः- दिनेशः कुत्र गच्छति ?
रमणः काश्यां वसति।	प्रश्नः- रमणः कुत्र वसति ?
वीणा पूजागृहे अस्ति।	प्रश्नः- वीणा कुत्र अस्ति ?
राजेन्द्रः वाटिकायां कार्यं करोति।	प्रश्नः- राजेन्द्रः कुत्र कार्यं करोति ?

कुत्र एक प्रश्न वाचक शब्द है, जो स्थान वाचक शब्दों में प्रश्न करते समय प्रयोग होता हैं कुत्र शब्द का अर्थ है - कहॉ पर?

3. 'कति' का प्रयोग - अधोलिखित वाक्यों को ध्यान से अध्ययन करें-

नगरे दश देवालयाः सन्ति।	प्रश्नः - नगरे कति देवालयाः सन्ति?
तत्र विंशतिः कदलीफलानि सन्ति।	प्रश्नः - तत्र कति कदलीफलानि सन्ति?
विद्यालये शतं छात्राः सन्ति।	प्रश्नः - विद्यालये कति छात्राः सन्ति?
गृहे पंच प्रकोष्ठाः सन्ति।	प्रश्नः - गृहे कति प्रकोष्ठाः सन्ति?
मुखे द्वात्रिंशत् दन्ताः सन्ति।	प्रश्नः - मुखे कति दन्ताः सन्ति?
वृक्षे पंचदश फलानि सन्ति।	प्रश्नः-वृक्षे कति फलानि सन्ति?
भगवद्गीतायाम् अष्टादश अध्यायाः सन्ति।	प्रश्नः- भगवद्गीतायां कति अध्यायाः सन्ति?

'अस्ति और सन्ति' ये 'अस्' धातु के रूप हैं। 'अस्ति' वर्तमानकाल प्रथमपुरुष एकवचन का रूप है 'सन्ति' बहुवचन का रूप है। 'अस्' धातु का अर्थ है-होना। ऊपर लिखे गये सभी वाक्यों में संख्या का प्रयोग किया गया है। संख्या जानने के लिए प्रश्न करना है तो 'कति' (कितने) शब्द का उपयोग होता है।

उदाहरणम्- दश बालकाः सन्ति। कितने बालक हैं यह जानने के लिए प्रश्न वाक्य है - कति बालकाः सन्ति ? 'कति' यह शब्द सर्वदा बहुवचन में होता है इसलिए उत्तर यदि एक या दो है तो भी प्रश्न हमेशा कति सन्ति ? यही होगा।

4. 'कदा' का प्रयोग - अधोलिखित वाक्यों को ध्यान से अध्ययन करें-

सूर्योदयः प्रातः भवति।	प्रश्नः- सूर्योदयः कदा भवति ?
सीता सायं नृत्याभ्यासं करोति।	प्रश्नः- सीता कदा नृत्याभ्यासं करोति ?
पितामहः परश्वः आगमिष्यति।	प्रश्नः- पितामहः कदा आगमिष्यति ?
ते ह्यः आगताः आसन्।	प्रश्नः- ते कदा आगताः आसन् ?
अद्य कृष्णस्य जन्मदिनोत्सवः।	प्रश्नः- कृष्णस्य जन्मदिनोत्सवः कदा ?

कदा एक प्रश्नवाचक शब्द है जिसका प्रयोग काल वाची एवं समय वाची शब्दो के साथ प्रश्न करते समय होता है। कदा शब्द का अर्थ है -कब ? सूर्योदय प्रातः होता है। सूर्योदय कब होता है ?

5. 'कुतः' का प्रयोग - अधोलिखित वाक्यों को ध्यान से अध्ययन करें-

सावित्री देहरादूनतः आगतवती।	प्रश्नः- सावित्री कुतः आगतवती ?
राघवः घटीं विदेशतः आनयति।	प्रश्नः- राघवः घटीं कुतः आनयति ?
फलानि वृक्षात् पतन्ति।	प्रश्नः- फलानि कुतः पतन्ति ?
सा भोजनं गृहात् आनयति।	प्रश्नः- सा भोजनं कुतः आनयति ?
सः जपमालां काशीतः आनीतवान्।	प्रश्नः-सः जपमालां कुतः आनीतवान् ?

कुतः शब्द प्रश्नवाचक शब्द है, यह पंचमी विभक्ति तथा तसिल् प्रत्ययान्त शब्दों के साथ प्रश्न करते समय प्रयुक्त होता है। इन वाक्यों में दिए गए कुतः शब्द का अर्थ है कहॉ से।

6. 'कथम्' का प्रयोग - अधोलिखित वाक्यों को ध्यान से अध्ययन करें-

आम्रफलं मधुरं भवति।	प्रश्नः- आम्रफलं कथं भवति ?
गंगायाः जलं निर्मलम् अस्ति।	प्रश्नः- गंगायाः जलं कथम् अस्ति।
मयंकः विद्यालयः वाहनेन गच्छति।	प्रश्नः- मयंकः विद्यालयः कथं गच्छति।
हिमालयस्य शोभा उत्तमा अस्ति।	प्रश्नः- हिमालयस्य शोभा कथम् अस्ति।
घृतस्य निर्माणं नवनीतेन भवति।	प्रश्नः- घृतस्य निर्माण कथं भवति।

कथं शब्द प्रश्नवाचक शब्द है, यह सामान्यतः भाववाचक संज्ञा तथा तृतीयान्त शब्दों के साथ प्रश्न करते समय प्रयुक्त होता है। कथं शब्द का अर्थ है कैसे।

7. 'किमर्थम्' का प्रयोग - अधोलिखित वाक्यों को ध्यान से अध्ययन करें-

सः पठनार्थं विद्यालयं गच्छति।	प्रश्नः- सः किमर्थं विद्यालयं गच्छति ?
सा आरोग्यार्थं योगासनं करोति।	प्रश्नः- सा किमर्थं योगासनं करोति ?
अनिलः प्रवासार्थं विदेशं गच्छति।	प्रश्नः- अनिलः किमर्थं विदेशं गच्छति ?
गृहस्थः सन्तोषार्थं दानं करोति।	प्रश्नः- गृहस्थः किमर्थं दानं करोति ?

किमर्थम्, एक प्रश्नवाचक शब्द है, जिसका प्रयोग चतुर्थ्यन्त शब्दों के साथ के लिए इस अर्थ में प्रश्न करते समय होता है। 'किमर्थम् ?' शब्द का अर्थ है क्यों अथवा किस लिए?

अभ्यास प्रश्नाः 02 अधोलिखित वाक्यों के प्रश्नवाच शब्दों का निर्माण करें।

1. बालकः श्लोकं लिखति।
2. राजा शासनं करोति।
3. राष्ट्रपतिभवनं देहल्याम् अस्ति।
4. कोणार्क मन्दिरम् उडीसायाम् अस्ति।
5. भारते एकोनत्रिंशत् राज्यानि सन्ति।
6. उत्तराखण्डे त्रयोदशजनपदाः सन्ति।
7. सूर्योदयः प्रातः भवति।
8. संस्कृतदिवसः श्रावणपूर्णिमायां भवति।
9. गंगा हिमालयात् निःसरति।
10. फलानि वृक्षात् पतन्ति।
11. विराटकोहली सम्यक् क्रिकेटक्रीडां क्रिडति।
12. सोनूनिगमः उच्चैः गीतं गायति।
13. बालकः पठनार्थं विद्यालयं गच्छति।
14. सैनिकः देशरक्षार्थं युद्धं करोति।

6.4 सारांश

संस्कृत भाषा शिक्षण का प्रथम सोपान है। वर्णमाला का ज्ञान होना। वर्णमाला के ज्ञान से शुद्ध उच्चारण होता है, और भाषा सुसंस्कृतमय बनती है । संस्कृतभाषा की यह बड़ी विशेषता है कि इसमें जो लिखा जाता है, उसे वैसा ही पढ़ा जाता है । इसके पीछे कारण इसकी वर्णमाला, और वर्णमाला का शुद्ध उच्चारणकरना ही है । संस्कृतभाषा की वर्णमाला अत्यधिक वैज्ञानिक और सुव्यवस्थित है। इस इकाई में हमने संस्कृतवर्णमाला के अन्तर्गतस्वर वर्ण, व्यञ्जन वर्ण और संयुक्त वर्णोंको पढ़ा। वर्ण, पद और वाक्य भाषा के महत्त्वपूर्ण अंग हैं । पद बहुत प्रकार के होते हैं । संज्ञापद, सर्वनामपद, विशेषणपद इत्यादि ।जब हम वार्तालाप करते हैं, तब संज्ञापदों का प्रयोग बार-बार नहीं किया जाता, अपितु संज्ञा पदों के स्थान पर सर्वनामपदों का प्रयोग होता है। संज्ञापदों कीऔर सर्वनामपदों की विशेषता प्रकट करने के लिये विशेषणपदों का प्रयोग किया जाता है । अतः यहाँ आपने संज्ञा-सर्वनाम-विशेषण का परिचय प्राप्त किया और शुद्ध अशुद्धशब्दों पर विचार भी किया । इस इकाई के माध्यम से आप सम्यक्तया संस्कृत वाक्य निर्माण कर व्यवहार रूप में ला सकते है। न केवल इतना ही विशेष्यादिनियम, लकारादियों के अध्ययन से व्यवहार में भी दक्षता को उत्पादित कर सकेंगे । इस इकाई में संस्कृतभाषा कैसे सीखी जा सकती है ? कैसे उसका प्रयोग किया जा सकता है तथा भाषा के दृढीकरण के लिए अभ्यास कर सकेंगे। इसके द्वारा जो लिंग और जिस वचन, विभक्तिविशेष्य का होता है, वही वचन, वही लिंग और वही विभक्ति विशेषण का भी होता है इत्यादि विशेषण विशेष्य भाव नियमों को भी आप सही से समझ सकेंगे ।

6.5 शब्दावली

वर्णमाला - किसी भी भाषा के वर्णों का सुव्यवस्थित समूह ही वर्णमाला कहलाता है।
विशेषण - संज्ञा पदों व सर्वनाम पदों की विशेषता बतलाते हैं, वे विशेषण पद कहलाये जाते हैं

सुप्रभातम्	-	सुप्रभात। (गुड मार्निंग)
शुभमध्याह्नः	-	शुभमध्याह्न। (गुड आफ्टर नून)
शुभसन्ध्या	-	शुभसन्ध्या। (गुड इवनिंग
किम्	-	क्या
कुत्र	-	कहॉं

कति	-	कितने
कदा	-	कब
कुतः	-	कहॉ से
कथम्	-	कैसे
किमर्थम्	-	क्यों / किसलिए ?

6.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

अभ्यासप्रश्न- 01 उत्तर

1.भवतः नाम किम्? । 2. मम नाम अभिनवः। 3. आगच्छतु, उपविशतु।
4.भवतः विद्यालयः कुत्र अस्ति। 5. अहं चायं पिबामि। 6.किंभवान् प्रातःपंचवादने उतिष्ठति।
7. किं भवान् चिकित्सकः? 8.नैव अहं शिक्षकः। 9.भवती किं करोति?
10. भवतः/भवत्याः भ्रातुः नाम किम्?।

अभ्यासप्रश्न 02 उत्तर-

1.बालकः किं लिखति? 2. राजा किं करोति?
3. राष्ट्रपतिभवनं कुत्र अस्ति? 4. कोणार्क मन्दिरम् कुत्र अस्ति?
5. भारते कति राज्यानि सन्ति? 6. उत्तराखण्डे कति सन्ति?
7. सूर्योदयः कदा भवति? 8. संस्कृतदिवसः कदा भवति?
9. गंगा कुतः निःसरति? 10. फलानि कुतः पतन्ति?
11. विराटकोहली कथं क्रिकेटक्रीडां क्रिडति? 12. सोनूनिगमः कथं गीतं गायति?
13.बालकः किमर्थं विद्यालयं गच्छति? 14. सैनिकः किमर्थं युद्धं करोति?

6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अनुवाद चन्द्रिका- डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी - चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
2.भाषाप्रवेशः - संस्कृतभारती, नवदेहली।
3.संस्कृत-व्यवहार-साहस्री - संस्कृतभारती, नवदेहली।
4. अनुवादरत्नाकरः - डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी – चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी,
5. बृहद् अनुवाद चन्द्रिका - चक्रधर नौटियाल 'हंस' शास्त्री – मोतीलाल बनारसीदास
6. संस्कृतरचना – श्री वामन शिवराम आप्टे - चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी

6.8 उपयोगी पुस्तकें

1. सम्भाषणम्- राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, नवदेहली।
2. प्रवेशः, संस्कृतभारती उत्तरांचलम्।
3. अनुवादरत्नाकरः - डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी – चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी,

6.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. संज्ञा का परिचय देते हुए दश वाक्यों का निर्माण करें।
2. सर्वनाम एवं विशेषण परिचय देते हुए पांच वाक्यों का निर्माण करें।
3. दैनिक-वाक्यप्रयोग करते हुए बीस वाक्यों का निर्माण करें।
4. सप्तककारों का परिचय दीजिए।

खण्ड- दो (Section-B)
छन्द एवं अलंकार

इकाई .1 छन्द : लक्षण एवं प्रमुख छन्दों का परिचय

इकाई की रूपरेखा –

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 अनुष्टुप, आर्या, इन्द्रवज्रा एवं उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, वंशस्थ, स्रग्धरा (लक्षण, गणचिन्ह सहित उदाहरण)
1.4 बसन्ततिलका, शिखरिणी एवं शार्दूलविक्रीडत, मालिनी, भुजंगप्रयात एवं मन्दाक्रांता (लक्षण गणचिन्ह सहित उदाहरण)
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 सहायक उपयोगी पुस्तकें
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

छन्द एवं अलंकार सम्बन्धित द्वितीय खण्ड की यह प्रथम इकाई है। पूर्व के खण्डों की इकाईयों में आपने संस्कृत भाषा का स्वरूप एवं उसके महत्व को समझा। प्रस्तुत इकाई में छन्द किसे कहते हैं, छन्द कितने प्रकार के होते हैं एवं काव्य में उसका क्या महत्त्व है। उक्त विषय पर पर चर्चा करने जा रहे हैं। प्रस्तुत इकाई में आप अनुष्टुप, आर्या, इन्द्रवज्रा एवं उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, वंशस्थ, स्रग्धरा, बसन्ततिलका, शिखरिणी एवं शार्दूलविक्रीडत, मालिनी, भुजंगप्रयात, स्रग्धरा एवं मन्दाक्रान्ता छन्द के लक्षण एवं उदाहरण का अध्ययन करेगें। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता पायेंगें कि किस श्लोक में किस छन्द का प्रयोग हुआ है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप यह बता पायेगें कि –

- अनुष्टुप छन्द का क्या लक्षण है।
- उपजाति छन्द किसे कहते हैं।
- किस छन्द में चार यगण होते हैं।
- विविध छन्दों के क्या लक्षण है
- किस प्रकार श्लोक में वर्णित छन्द को पहचाना जा सकता है।

1.3 आर्या, अनुष्टुप, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, वंशस्थ, स्रग्धरा (लक्षण, गणचिन्ह सहित उदाहरण)

आर्या छन्द (मात्रावृत्त) : लक्षण एवं उदाहरण—

यस्या: प्रथमे पादे द्वादश मात्रा: तथा तृतीयेऽपि
अष्टादशद्वितीये,चतुर्थे च पञ्चदश सार्या ।।

यह आर्या छन्द का लक्षण है। इसका अर्थ है कि जिस छन्द के पहले और तीसरे पाद (चरण) में बारह मात्रायें हों, दूसरे में अट्ठारह तथा चौथे में पन्द्रह मात्रायें हो वह छन्द आर्या कहलाता है। इस प्रकार आर्या के पूर्वार्द्ध में तीस और उत्तरार्द्ध में सत्ताइस मात्रायें होती हैं , कुल 57 मात्रायें होती है।

उदाहरण -

2 2 1 2 1 1 1 2=12 , 2 1 1 2 1 1 1 2 1 2 2 2 =18
क: पौरवे वसुमतीं शासति, शासितरि दुर्विनीतानाम्।
1 1 2 1 2 1 1 1 2=12, 2 2 1 1 2 1 1 2 2 =15
अयमाचरत्यविनयं मुग्धासु तपस्विकन्यासु ।।

अन्य उदाहरण –

कृष्ण: शिशु सुतो में वल्लवकुलटाभिराहृतो न गृहे।
क्षणमपि वसत्यसाविति जगाद् गोष्ठ्यिां यशोदार्या ।।

अनुष्टुप छन्द (वर्णिक छन्द) : लक्षण एवं उदाहरण—

इसको लौकिक साहित्य में पद्य तथा श्लोक भी कहते है। इसका लक्षण इस प्रकार है –

पञ्चमं लघु सर्वत्र सप्तमं द्विचतुर्थयो: ।

षष्ठं गुरू विजानीयात् एतत्पद्यस्य लक्षणम् ।।

अनुष्टुप के आठ-आठ अक्षर के चार पादों में पाँचवाँ अक्षर चारों पादो में लघु होना चाहिए तथा दूसरे और चौथे पाद का सातवाँ वर्ण भी लघु होना चाहिये एवं छठा अक्षर सभी पादों में गुरू होना चाहिये। अनुष्टुप छन्द दो प्रकार के हैं

1. अष्टाक्षरवृत्ति: जिसके एक-एक पाद में 8-8 अक्षर हो।
2. एकादशाक्षरा वृत्ति जिसके प्रत्येक पाद में ग्यारह अक्षर हों।

उदाहरण – ।ऽ । ऽ।

अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते।

। ऽ । ऽ।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ।।

चारों पादों के पाँचवें वर्ण म ,ण , न्म तथा ग लघु है तथा दूसरे पाद का च और चौथे पाद का य ये सातवें वर्ण भी लघु हैं और चारों पादों के छठें वर्ण यी, रो, भू तथा री गुरू हैं इसलिए यह अनुष्टुप छन्द का उदाहरण है।

इन्द्रवज्रा छन्द: लक्षण एवं उदाहरण—

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग:।

यदि प्रत्येक चरण में दो तगण, जगण और दो गुरू वर्ण क्रमश: हों तो इन्द्रवज्रा छन्द होता है।

इस प्रकार प्रत्येक चरण में ग्यारह वर्ण और चारों चरण मिलाकर 44 वर्ण होते हैं।

उदाहरण –

गोष्ठे गिरिं सव्यकरेण धृत्वा रूष्टेन्द्रवज्राहतिमुक्त वृष्टौ

ऽऽ।, ऽ ऽ।, । ऽ।,ऽऽ, ऽऽ। ऽऽ। । ऽ। ऽ ऽ

यो गोकुलं गोपुकलं च सुस्थं चक्रे स न: रक्षतु चक्रपाणि ।।

ऽऽ।,ऽ ऽ।, । ऽ। ऽऽ, ऽऽ। ऽ ऽ।। ऽ। ऽऽ

उपेन्द्रवज्रा - उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ

जिस छन्द के चारो पादो में क्रमपूर्वक जगण, तगण, जगण हो तथा पादों के अन्त में गुरू वर्ण हों उसे उपेन्द्रवज्रा छन्द कहते हैं।

उदाहरण –

अथात्मन: शब्द गुणं गुणज्ञ: पदं विमानेन विगाहमान:।

रत्नाकरं वीक्ष्य मिथ: स जायां रामाभिरामो हरिरित्युवाच ।।

अथात्म न: शब्द गुणंगु णज्ञ:

। ऽ। ऽ ऽ। ।ऽ। ऽ ऽ

इस प्रकार इसमें क्रमश: जगण ,तगण, जगण तथा दो गुरू होने से उपेन्द्रवज्रा छन्द है।

उपजाति छन्द : लक्षण एवं उदाहरण—

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ता:।

इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्तिजातिष्विदमेव नाम ।।

जाति पद छन्द का वाचक है, उपजाति का अर्थ है मिश्रित छन्द। यद्यपि लक्षणकारों ने इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के मिश्र को ही उपजाति कहा है तथापि सामान्यत: दो छन्दों में बने सभी पद्यों में उपजाति छन्द माना जाता है।

छन्द का उपर्युक्त लक्षण ही उदाहरण है। इसका प्रथम तथा चतुर्थ चरण उपेन्द्रवज्रा है और द्वितीय तथा तृतीय चरण इन्द्रवज्रा है।

अनन्त रोदीरि तलक्ष्म भा जौ

।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ ऽ

पादौय दीयावु पजात यस्ता:

ऽऽ। ऽऽ। 1ऽ। ऽऽ

इत्थंकि लान्यास्व पिमिश्रि ता सु

ऽऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ ऽ

वदन्ति जातिष्वि दमेव नाम

1ऽ। ऽऽ। 1ऽ। ऽऽ

उदाहरण –

शम प्रधानेषु तपोधनेषु ,गूढ़ं हि दाहात्मकमस्ति तेज: ।

स्पर्शानुकूला अपि चन्द्रकान्ता,स्तदन्यतेजोऽभिभवाद् वमन्ति ॥

शमप्र धानेषु तपोध ने षु

।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ ऽ

गूढ़ंहि दाहात्म कमस्ति ते ज:

ऽऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ ऽ

वंशस्थ छन्द : लक्षण एवं उदाहरण—

वदन्ति वंशस्थविलं जतौ जरौ ।

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में जगण , तगण , जगण ,रगण हो उसे वंशस्थ छन्द कहते हैं। छन्द का उपर्युक्त लक्षण ही उदाहरण है।

वदन्ति वंशस्थ विलंज तौजरौ

।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ।ऽ

जगण तगण जगण रगण

उदाहरण –

भवन्ति नम्रास्तरव: फलोद् गमै: र्नवाम्बुभि र्दूरविलम्बिनो घना: ।

अनुद्धता: सत्पुरूषा: समृद्धिभि: स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥

नवाम्बु भिर्दूर विलम्बि नोघना:

।ऽ। ऽऽ। ।ऽ। ऽ।ऽ

स्रग्धरा: लक्षण एवं उदाहरण—

एकविंशत्यक्षराजाति: (21 अक्षरों वाला छन्द)

म्रम्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम् ।

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में मगण, रगण, भगण, नगण, और अन्त में तीन यगण हो और प्रत्येक सातवें वर्ण पर यति क्रमश: होती है उसे स्रग्धरा छन्द कहते हैं।

म्रम्नैर्या नांत्रये णत्रिमुनियति युतास्र ग्धराकी र्तितेयम्

ऽऽऽ ऽ।ऽ ऽ।ऽ ।।। ।ऽऽ ।ऽ ऽ ।ऽऽ

मगण रगण भगण नगण यगण यगण यगण

लक्षण ही उदाहरण है।

उदाहरण –

या स्रष्टि: स्रष्टुराद्या, वहतिविधिहुतं, याहविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्त: श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्यविश्वम्
यामाहु: सर्वबीज प्रकृतिरिति यया प्राणिन: प्राणवन्त:,
प्रत्यक्षाभि: प्रपन्नस्तनुभिरवतुवस्ताभिरष्टाभिरीश: ॥
यामाहु: सर्वबीज प्रकृतिरिति ययाप्राणिन: प्राणवन्त:

1.4 बसन्ततिलका, शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडित, मालिनी, भुजंगप्रयात एवं मन्दाक्रान्ता (लक्षण गणचिन्ह सहित उदाहरण)

बसन्ततिलका छन्द: लक्षण एवं उदाहरण—

चतुर्दशाक्षराजाति: (चौदह अक्षर वाले छन्द)

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग: ।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमश: तगण,भगण और दो जगण तथा दो गुरू हों वहाँ वसन्ततिलका छन्द होता है।

उक्ताव वसन्तति लकात भजाज गौ ग:
ऽऽ। ऽ।। ।ऽ। ।ऽ। ऽ ऽ
तगण भगण जगण जगण गु गु

इस छन्द का लक्षण ही उदाहरण है ।उदाहरण –

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान् , पर्युत्सुको भवति यत्सुखितोऽपि जन्तु: ।
तच्चेतसा स्मरति नूनं मबोधपूर्वं , भावस्थिराणि जननान्तर सौहृदानि ।।

ऽ ऽ।	ऽ।।	।ऽ।	।ऽ।	ऽ ऽ
रम्याणि	वीक्ष्यम्	मधुरांश्च	निशम्य	शब्दान्

शिखरिणी छन्द: लक्षण एवं उदाहरण—

सप्तदशाक्षराजाति: (17 अक्षरों वाले छन्द)

रसैरूद्रैश्छिन्ना यमनसभलाग: शिखरिणी ।।

जिस छन्द के प्रत्येक पाद(चरण) में क्रमश: यगण, मगण, नगण, सगण, भगण तथा अन्त में एक लघु एक गुरू हो उसे शिखरिणी छन्द कहते है। इसमें छ: तथा ग्यारहवें वर्णो पर यति होती है।

रसैरू	द्रैश्छिन्ना	यमन	सभला	ग:शिख	रिणी
।ऽऽ	ऽ ऽ ऽ	।।।	।।ऽ	ऽ।।	।ऽ
यगण	मगण	नगण	सगण	भगण	ल गु

लक्षण ही उदाहरण है।

उदाहरण –

महाभाग: कामं नरपतिरभिन्नस्थितिरसौ न कश्चिद्वर्णानामपथमपकुष्टोऽपि भजते ।
तथापीदं शस्व न्परिचितविविक्तेन मनसा जन: कीर्णं मन्ये हुतवहपरीतं गृहमिव ।।

जनाकी	र्णमन्ये	हुतव	हपरी	तंगृह	मिव
।ऽऽ	ऽऽऽ	।।।	।।ऽ	ऽ।।	। ऽ

शार्दूलविक्रीडित छन्द: लक्षण एवं उदाहरण—

एकनोविंशत्यक्षराजाति: (19 अक्षरों वाले छन्द)

सूर्याश्वैर्मसजस्तता: सगुरव: शार्दूलविक्रीडितम् ।।

अथवा

सूर्याश्वैर्यदि म: सजौ सततगा: शार्दूलविक्रीडितम् ।।

जिस छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमश: मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण तथा गुरू वर्ण हों , बारहवें और तदनन्तर सातवें वर्ण पर यति होती है , उसे शार्दूलविक्रीडित छन्द कहते हैं।

सूर्याश्वै र्यदिम:	सजौस	ततगा:	शार्दूल		विक्रीड	तम्
ऽऽऽ	।।ऽ	।ऽ।	।।ऽ	ऽऽ।	ऽऽ।	ऽ
मगण	सगण	जगण	सगण	तगण	तगण	गु

उदाहरण -

नीवाराः शुकगर्भकोटरमुखभ्रष्टास्तरूणामध:प्रस्निग्धाः क्वचिदिऽगुंदी फलमिदः सूच्यन्त एवोपलाः।
विश्वासोपगमादभिन्नगतयः शब्दं सहन्ते मृगा -स्तोयाधारपयाश्च वल्कलशिखानिष्यन्दरेखाऽ.किंता

प्रस्निग्धा:	क्वचिदिं	गुदीफ	लमिद:	सूच्यन्त	एवोप ला:।
ऽऽऽ	।।ऽ	।ऽ।	।।ऽ	ऽऽ।	ऽऽ। ऽ

मालिनी छन्द: लक्षण एवं उदाहरण—

पञ्चादशाक्षराजाति: (15 अक्षरों वाले छन्द)

ननमयययुतेयं मालिनी भौगिलोकै: ।।

जिसके प्रत्येक चरण में क्रमश: दो नगण, मगण, दो यगण हों तथा आठवें और तदनन्तर सातवें वर्ण के बाद यति हो वह मालिनी छन्द कहलाता है।

ननम	ययु	तेयंमा	लिनीभो	गिलोकै:	
।।।	।।।	ऽऽऽ	।ऽऽ	।ऽऽ	
नगण	नगण	मगण	यगण	यगण	

लक्षण ही उदाहरण है।

उदाहरण -

स्व सुखनिरभिलाष: खिद्यसे लोकहेतो: प्रतिदिनमथवा ते वृत्तिरेवं विधैव।
अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं शमयति परितापं छायया संश्रितानाम् ।।

अनुभ	वतिहि	मूर्ध्नापा	दपस्ती	व्रमुष्णम्	
।।।	।।।	ऽऽऽ	।ऽऽ	।ऽ ऽ	

भुजंगप्रयात छन्द: लक्षण एवं उदाहरण—

भुजंगप्रयातं चतुर्भिर्यकारै: ।

भुजंगप्रयात में चार यगण होते है।

भुजंग	प्रयातं	चतुर्भि	र्यकारै:

। ऽ ऽ । ऽ ऽ ।ऽऽ । ऽऽ

यगण यगण यगण यगण

छन्द का उपुर्यक्त लक्षण ही उदाहरण है।

अभ्यास प्रश्न 1

1. जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ किस छन्द का लक्षण है ?
   (क) मालिनी (ख) आर्या
   (ग) अनुष्टुप (घ) वंशस्थ
2. चार यगण किस छन्द में होते हैं ?
   (क) मालिनी (ख) अनुष्टुप
   (ग) भुजंगप्रयात (घ) आर्या

3.स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ ---------- ग: ।

4. ननुमययुतेयं ——— भोगिलोकै: ।

अभ्यास प्रश्न 2

1. आर्या छन्द का लक्षण उदाहरण सहित लिखिये।
2. उपजाति छन्द का लक्षण लिखिये।

मन्दाक्रान्ता छन्द: लक्षण एवं उदाहरण—

मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैम्भो नतौ ताद् गुरू: चेत।

जिस छन्द के चारों पादों में से प्रत्येक पाद में क्रमश: मगण,भगण,नगण तथा दो तगण और अन्त में दो गुरू हों उसे मन्दाक्रान्ता कहते हैं। इसमें चार, छ: तथा सात अक्षरों पर यति होती है।

उदाहरण-

अध्याक्रांता वसतिरमुनाप्याश्रमे सर्वभोग्ये, रक्षायोगादयमपि तप: प्रत्यहं संचिनोति
अस्यापि द्यां स्पृशति वंशिनश्चारणद्वन्द्वगीति: पुण्य: शब्दो मुनिरिति मुहु: केवलं राजपूर्व: ॥

अध्याक्रा न्तावस तिरमु नाप्याश्र मेसर्व भोग्ये

ऽ ऽ ऽ ऽ ।। ।।। ऽ ऽ। ऽ ऽ। ऽ ऽ

मगण भगण नगण तगण तगण गु गु

1.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने यह जाना कि वर्णिक और मात्रिक दो प्रकार के छन्द होते हैं। आर्या नामक मात्राछन्द एवं वर्णिक इन्द्रवज्रा,उपेन्द्रवज्रा, अनुष्टुप ,उपजाति आदि विविध छन्दों को उदाहरण के साथ जाना। इसके अध्ययनोपरान्त आप किसी भी पद्य अथवा श्लोक में प्रयुक्त छन्द को समझा सकेगें।

1.6 शब्दावली

जाति मात्रिक छन्दों को जाति कहा जाता हैं।

वृत्त वर्णित छन्दों को वृत्त कहा जाता हैं।

पाद चरण, छनद के चतुर्थांश को पाद अथवा चरण कहा जाता है।

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 – 1. घ 2. ग 3. जगौ 4. मालिनी

अभ्यास प्रश्न 2- उत्तर इकाई में देखें।

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अलंकार तथा छन्द , डॉ0 श्रीधर मिश्र एवं डॉ0 रमाकान्त त्रिपाठी ,पी0के0 पब्लिकेशन, गोरखपुर।
2. छन्दोलंकार दीपिका ,श्री भवभूति शर्मा , डॉ0 हरिदत्त शास्त्री , साहित्य निकेतन , कानपुर।

1.8 सहायक एवं उपयोगी पुस्तकें

1. अलंकार तथा छन्द , डॉ0 श्रीधर मिश्र एवं डॉ0 रमाकान्त त्रिपाठी ,पी0के0 पब्लिकेशन, गोरखपुर।
2. छन्दोलंकार दीपिका ,श्री भवभूति शर्मा , डॉ0 हरिदत्त शास्त्री , साहित्य निकेतन , कानपुर।

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विविध छन्दों को लक्षण एवं उदाहरण सहित लिखियें।
2. किन्हीं दश श्लोकों को चुनकर लिखिये जिसमें वंशस्थ छन्द हो।

इकाई.2 अलंकार : लक्षण एवं प्रमुख शब्दालंकारों का परिचय

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
2.3 चन्द्रालोक: ग्रन्थ परिचय
2.4 अलंकार: अर्थ एवं स्वरूप
2.4.1 काव्य में अलंकारों की उपादेयता
2.4.2 अलंकारों के भेद: शब्दालंकार एवं अर्थालंकार
2.4.2.1 शब्दालंकार परिचय
2.4.2.1.1 अनुप्रास अलंकारः लक्षण एवं उदाहरण
2.4.2.1.2 श्लेष अलंकारः लक्षण एवं उदाहरण
2.4.2.1.3 यमक अलंकारः लक्षण एवं उदाहरण
2.5 अलंकारों का विकास क्रम
2.6 सारांश
2.7 शब्दावली
2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.10 उपयोगी ग्रन्थ
2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

संस्कृत के काव्य या नाट्य ग्रन्थों अथवा कक्षा में उनके निर्धारित अंशों को पढ़ते समय आपने ध्यान दिया होगा कि काव्य सामान्य कथन न होकर कुछ विशेष भंगिमा की उक्ति के रूप में होता है। काव्य को मनोरम, रमणीय, मोहक एवं संप्रेषणीय बनाने के लिए उसमें अलंकारों का प्रयोग होता है। यह ठीक उसी तरह से है जैसे कोई सुन्दर स्त्री अपने रूप को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए सजे संवरे और आभूषण धारण करे। अलंकार के माध्यम से कवि काव्य रूपी शरीर को सुरूचिपूर्ण ढंग से सजाता है और उसे पाठक के समक्ष उसके मनोरंजन हेतु प्रस्तुत कर देता है। इस इकाई में हम अलंकारों का सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे। अलंकारों के अर्थ, स्वरूप तथा भेदों के विवेचन से हमें यह जानकारी मिलेगी कि कैसे अलंकारों का समुचित प्रयोग काव्य के सौन्दर्य को बढ़ा देता है।

अलंकारों के सामान्य परिचय के साथ ही आप इस इकाई में अनुप्रास, श्लेष एवं यमक अलंकारों का ज्ञान प्राप्त करेंगे। ये तीनों ही शब्दालंकार के अंतर्गत आते है। शब्दालंकार में शब्द की प्रधानता होती है। इन अलंकारों में विशेष शब्द को हटाते ही प्रकृत अलंकार भी समाप्त हो जाता है। अतः इन अलंकारों में शब्दगत ध्वनि का अतीव महत्त्व है। उपर्युक्त तीनों ही अलंकार काव्यशास्त्र के अत्यन्त प्रसिद्ध शब्दालंकारों में से हैं। इनके परिचय एवं अध्ययन से इनके द्वारा उत्पन्न होने वाले काव्यगत सौन्दर्य का रसास्वादन प्राप्त करने में सुगमता हो जाएगी।

अलंकारों के विषय में संस्कृत वाड्.मय में आचार्य भरत से लेकर अप्पय दीक्षित तक तथा आधुनिक काल के काव्यशास्त्रियों ने सम्यक् विचार किया है। इस इकाई में हम मुख्यतः श्री जयदेव के ग्रंथ चन्द्रालोक का आश्रय ग्रहण करेंगे। अलंकारों का सामान्य परिचय प्राप्त कर लेने पर आगामी ग्रन्थों में वर्णित विभिन्न अलंकारों को समझने में आसानी हो जाएगी तथा साहित्य में अलंकारों का सन्निवेश एवं विकास किस प्रकार हुआ-इसको आप भली-भाँति समझ सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- पाठ्य ग्रंथ चन्द्रालोक के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- अलंकारों के अर्थ एवं स्वरूप को समझा सकेंगे।
- अलंकारों का काव्य में क्या महत्व है यह भली-भाँति बता पाएँगे।
- साहित्य में अलंकारों के मुख्य भेदों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- अलंकारों के विकास क्रम को बता सकेंगे।
- अनुप्रास अलंकार की परिभाषा तथा उसके भेदों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- श्लेष अलंकार की परिभाषा, उसके भेद तथा काव्य में पड़ने वाले उसके चमत्कारी प्रभाव का अवलोकन कर सकेंगे।
- यमक अलंकार के स्वरूप, भेद तथा उसके काव्यगत प्रभाव का आकलन कर सकेंगे।

2.3 चन्द्रालोक: सामान्य परिचय

अलंकारों के विषय में जो ज्ञान हम प्राप्त करेंगे उसके लिए पाठ्यक्रम में चन्द्रालोक नामक ग्रन्थ निर्धारित किया गया है। यह ग्रन्थ 10 मयूखों में विभाजित है किन्तु हमें केवल पंचम मयूख का ही अध्ययन करना है। इसमें विभिन्न अलंकारों का विवेचन किया गया है। चन्द्रालोक की रचना श्री जयदेव ने की है। इनका उपनाम 'पीयूषवर्ष'

था। इन्होंने प्रसन्नराघव नामक नाटक की भी रचना की है। विद्वानों ने इनका स्थितिकाल सामान्यतः 1200 ई. से 1250 ई. के मध्य स्वीकार किया है। चन्द्रालोक में काव्यशास्त्र के सभी पक्षों-काव्य परिभाषा, प्रयोजन, दोष, गुण, अलंकार, रस, ध्वनि, शब्दशक्ति आदि का विवेचन मिलता है। श्री जयदेव ने चन्द्रालोक में अलंकारों को काव्य के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में प्रतिष्ठापित किया है। पंचम मयूख के अध्ययन से हमें अलंकारों के लम्बे-लम्बे लक्षण एवं उनके पृथक् उदाहरण याद करने की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि वहां एक ही श्लोक में लक्षण एवं उदाहरण दोनों समाहित हैं। चन्द्रालोक में सब मिलाकर 96 अलंकारों का विवेचन है।

अभ्यास प्रश्न - 1

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें-

(1) चन्द्रालोक में कितने मयूख हैं?

(2) श्री जयदेव ने कितने अलंकारों का विवेचन किया है?

(3) अलंकारों का वर्णन चन्द्रालोक के किस मयूख में हैं?

2.4 अलंकार: अर्थ एवं स्वरूप

अभिज्ञानशाकुन्तलम् के द्वितीय अंक का यह श्लोक देखिए:

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररूहै
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः।।

इस श्लोक में राजा दुष्यन्त शकुन्तला के अप्रतिम सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहता है कि इस ऋषिकन्या का पवित्र सौन्दर्य बिना सूंघे गए निर्मल पुष्प की तरह, नाखूनों से नहीं काटे गए कोमल किसलय की तरह, विना बेधे गए रत्न की तरह, विना जूठा किए गए नवीन मधु की तरह तथा सत्कर्मों के अखण्ड फल की तरह है। ऐसे सौन्दर्य का भोग करने वाला कौन बनेगा- यह तो विधाता ही बता सकते हैं। इस वर्णन से शकुन्तला के अनिन्द्य सौन्दर्य की ऐसी तस्वीर हमारे सामने उभरती है कि मन मुग्ध हुए विना नहीं रहता। इस वर्णन में विशेष क्या है? आप देखेंगे कि शकुन्तला के सौन्दर्य की तुलना विभिन्न कोमल, निर्मल, बहुमूल्य, मधुर एवं पुण्यप्रद वस्तुओं से की गई है। इस तुलना ने शकुन्तला के सहज सौन्दर्य को स्वाभाविकता से हमारे सामने उपस्थित कर दिया है। साहित्य का यही तत्त्व अलंकार है - जिसका प्रयोग शोभा और सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए किया जाता है। आप जब आगे की इकाइयों का अध्ययन करेंगे तो जानेंगे कि इस श्लोक में उपमा अलंकार का सुन्दर प्रयोग है।

ऊपर के उदाहरण से आपने जाना कि अलंकार वह तत्त्व है जो किसी वस्तु या व्यक्ति की शोभा को हठात् बढ़ा दे। 'अलंकार' में दो शब्द हैं - 'अलम्' और कृ धातु से निष्पन्न 'कार'। 'अलम्' का अर्थ है - भूषण और 'कार' का अर्थ है करने वाला। इसलिए कहा जाता है- अलंकरोति इति अलंकारः'। अर्थात् अलंकृत करने वाला - काव्य को विभूषित करने वाला अथवा सौन्दर्य बढ़ाने वाला तत्त्व अलंकार है। आप सभी जानते हैं कि विभिन्न बहुमूल्य धातुओं एवं रत्नों से निर्मित आभूषण शरीर को सुशोभित करने के कारण अलंकार कहलाते हैं। ठीक इसी प्रकार काव्य को शब्द और अर्थ द्वारा अलंकृत करने वाली विधा अलंकार कहलाती है। इसलिए प्रसिद्ध काव्यशास्त्री आचार्य दण्डी काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्मों को अलंकार कहते हैं- **'काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते।' - काव्यादर्श 2/1** आचार्य भामह, दण्डी और उद्भट - ये तीन विद्वान् अलंकारवादी आचार्य माने जाते हैं। वे अलंकार को काव्य का सर्वस्व एवं अनिवार्य तत्त्व मानते थे। किन्तु आगे चलकर आचार्य मम्मट, आनन्दवर्धन, विश्वनाथ और जगन्नाथ प्रभृति विद्वानों ने अलंकारों को शब्दार्थ रूपी काव्य शरीर का अस्थिर धर्म माना। आप जब इनके गन्थों का आगे चलकर अध्ययन करेंगे तो आपको पता चलेगा कि इन विद्वानों

के अनुसार अलंकार काव्य की अतिशय शोभा बढ़ाकर रस का उपकार करते हैं किन्तु ये ही अलंकार यदि काव्य में स्वाभाविक रूप से न आकर आरोपित या बोझिल रूप में आते हैं तो शोभा बढ़ाने के बदले काव्यसौन्दर्य की हानि कर देते हैं। इसलिए आचार्य मम्मट काव्य प्रकाश में कहते हैं- **'क्वचित्तु स्फुटालंकार विरहेऽपि न काव्यत्वहानिः'। (काव्यप्रकाश 1-4)** अर्थात् यदि काव्य में अलंकार स्पष्ट रूप से प्रकट न भी हो रहा हो तो काव्यत्व की हानि नहीं होती। आचार्य वामन काव्य-शोभा के विधायक धर्म के रूप में गुणों को स्थान देते हैं तथा अलंकार को गुणों को उत्कर्ष प्रदान करने वाला तत्त्व मानते हैं।

काव्यशोभायाः कर्त्तारो धर्मा गुणाः।

तदतिशयहेतवस्त्वलंकाराः। (काव्यालंकार सूत्र)

हमें यह समझना होगा कि काव्य के लिए अलंकारों की सत्ता वाह्य है। जैसे तिलक, चन्दन, कुण्डल, हार इत्यादि शरीर के बाहर होते हुए शरीर की शोभा बढ़ाते हैं उसी प्रकार अलंकार वाह्य तत्त्व होते हुए भी काव्य रूपी शरीर की शोभा बढ़ाते हैं। अधिकांश विद्वान् यह मानते हैं कि अलंकार उत्कृष्ट काव्य में सर्वदा विद्यमान रहता है - कहीं स्फुट रूप में तो कहीं अस्फुट रूप में। साहित्य दर्पण में आचार्य विश्वनाथ कहते हैं-

शब्दार्थयोरस्थिराः ये धर्माः शोभातिशायिनः।

रसादीनुपकुर्वंतोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत्।। (सा.द. 10.1)

इस उक्ति पर यदि हम ध्यान दें तो अलंकार के स्वरूप के विषय में यह स्पष्ट होता है कि-

- अलंकार शब्दार्थरूपी काव्यशरीर के अस्थिर धर्म हैं।
- काव्य की शोभा को अतिशय बढ़ाते हैं।
- काव्य में निहित (आत्मभूत) रस के उपकारक होते हैं।

अभ्यास प्रश्न - 2

(1) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें-

(क) अलंकार काव्य के ..... धर्म हैं। (स्थिर/अस्थिर)

(ख) अलंकारों की सत्ता ..... है। (वाह्य/आंतरिक)

(ग) ..... अलंकार को काव्य का अनिवार्य तत्त्व मानते हैं। (भामह/मम्मट)

(2) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें-

(क) अलंकार में 'अलम्' का तात्पर्य क्या है?

(ख) अलंकार काव्य की शोभा पर क्या प्रभाव डालते हैं।

2.4.1 काव्य में अलंकारों की उपादेयता

अभी तक आपने यह जाना कि अलंकार काव्य के सौन्दर्य को बढ़ाने का सबसे प्रबल साधन है। अलंकार के स्वरूप पर विचार करने से यह स्पष्ट होता है कि अलंकार काव्य में निहित सूक्ष्म तत्त्व (जिसे काव्य का विधायक आत्मतत्त्व माना जाता है) की शोभा बढ़ाते हैं न कि केवल काव्य के शब्दार्थ शरीर की। आप सभी जानते हैं कि आभूषण जीवित शरीर का ही सौन्दर्य बढ़ाते हैं-शव का नहीं। यदि सरस काव्य में अलंकारों का सहज प्रयोग हुआ है तो उसका चमत्कार और प्रभाव अधिक बढ़ जाता है। अलंकार भले ही काव्य के साध्य न होकर साधन मात्र हों पर इनका उपस्थित होना काव्य को सहृदय-संवेद्य तो बनाता ही है। सजीव, आकर्षक एवं चमत्कारपूर्ण बनाने के लिए आवश्यक तत्त्व है अलंकार। इसलिए तो ये काव्य के भूषण हैं। अलंकारों के महत्व का प्रतिपादन करते हुए श्री जयदेव तो यहां तक कहते हैं कि जैसे अग्नि उष्णता से रहित नहीं हो सकता उसी प्रकार काव्य अलंकार से रहित हो ही नहीं सकता-

अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।

असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती।। (चन्द्रालोक 1.8)

काव्य का रसास्वादन करते हुए आपको यह समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी कि कवि जब अपनी वाणी में, अपनी रचना में अलंकारों का सुसंगत प्रयोग करता है तो उसकी अभिव्यक्ति और अधिक प्रभावोत्पादक हो उठती है। 'चाँदनी रात थी' इस सामान्य कथन के बदले जब यह वर्णन आता है कि 'कौमुदी कपटेन सुधाधारामिव वर्षति गगने' अर्थात् आकाश चाँदनी के बहाने मानो अमृत की धार बरसा रहा था तो क्या कुछ अलग अनुभव नहीं होता? अलंकृत शब्दावली में प्रकट भाव मन को हठात् आकृष्ट करते हैं। अलंकार मानवीय प्रवृत्तियों के विकास में सहायक होते हैं। क्योंकि वे शेष सृष्टि एवं प्रकृति के साथ हमारा रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करते हैं। वे वस्तुओं/व्यक्तियों के रूप, गुण और क्रियाओं का और अधिक तीव्रता से अनुभव कराने में हमारी सहायता करते हैं।

हाँ, इस क्रम में हमें इतना अवश्य ध्यान रखना है कि अलंकार सुन्दर को तो और अधिक सुन्दर बना सकते हैं पर असुन्दर को सुन्दर बनाने की सामर्थ्य उनमें नहीं होती। रसहीन काव्य में अलंकार प्राण नहीं डाल सकते। ठीक उसी प्रकार जैसे लावण्य संपन्न युवती के लिए तो आभूषण सौन्दर्यवर्धक होते हैं किन्तु मृत युवती के शरीर पर वही आभूषण अच्छे नहीं लगते। वस्तुतः अलंकार कवि की कीर्ति को स्थायी करने में तभी सहायक हो सकते हैं जब उनका प्रयोग स्वाभाविक, अनायास एवं सुसंगत हो। अलंकार कवि का अनुगमन करने वाले होने चाहिए न कि कवि अलंकारों का अनुगामी होना चाहिए। सभी अवस्थाओं में अलंकार भावों को तीव्रता प्रदान करने वाले होने चाहिए। भाव ही विलुप्त होने लगें तो अलंकारों का क्या प्रयोजन।

अभ्यास प्रश्न - 3

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें-
   (क) अलंकार काव्य के साध्य न होकर साधन मात्र हैं। (सही/गलत)
   (ख) अलंकार निर्जीव एवं रसहीन काव्य को भी सुंदर बना सकते हैं। (सही/गलत)
   (ग) काव्य को अलंकाररहित कहना वैसे ही है जैसे अग्नि को शीतल कहना। यह किसकी उक्ति है?

2.4.2 अलंकारों के भेद: शब्दालंकार एवं अर्थालंकार

ऊपर के वर्णन में आपने देखा कि अलंकार शब्द और अर्थ से समन्वित काव्य की शोभा को अभिवर्धित करने वाले हैं। यद्यपि शब्द और अर्थ को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता तथापि दोनों पृथक् तत्त्व हैं। इसी आधार पर अलंकारों के दो भेद हो जाते हैं- शब्दालंकार एवं अर्थालंकार। वैसे एक तीसरी श्रेणी भी स्वीकार्य है जिसे उभयालंकार कहते हैं। इसमें शब्द एवं अर्थ दोनों का ही चमत्कार द्रष्टव्य होता है।

2.4.2.1 शब्दालंकार परिचय

शब्दालंकार शब्दों पर आश्रित होते हैं। शब्दालंकार में ध्वनि की महती भूमिका है। अलंकारों के इस विभाग को समझने के लिए हमें 'अन्वय' और 'व्यतिरेक' इन दो शब्दों को समझना पड़ेगा क्योंकि ये भेद अन्वय और व्यतिरेक पर ही आधारित हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि शब्द और अर्थ को पृथक् करना असंभव है। तो यह भेद कैसे समझें? जिसके रहने पर जो रहे वह अन्वय है (जैसे अगर धुँआ है तो आग है - यत्र धूमः, तत्र अग्निः) तथा जिसके न रहने पर जो न रहे वह व्यतिरेक है (जैसे आग के न रहने पर धुँए का न रहना- यत्र अग्निः नास्ति तत्र धूमोऽपि नास्ति)। अब इसे अलंकारों के रूप में समझें। शब्द विशेष के रहने पर अलंकार विशेष का रहना अन्वय है जबकि किसी शब्द विशेष के अभाव में अलंकार विशेष का अभाव व्यतिरेक है। इस आधार पर जो अलंकार किसी विशेष शब्द की ही स्थिति में रहे और उसके स्थान पर कोई पर्यायवाची शब्द रख देने से उसका अस्तित्व न रहे वह शब्दालंकार है। इसे यूँ समझें कि शब्दालंकार में शब्दों का परिवर्तन नहीं किया जा सकता। यहाँ शब्दों को परिवर्तित करते ही अलंकारत्व समाप्त हो जाता है। ये अलंकार शब्द पर आश्रित होने से

शाब्दिक चमत्कार की विशेष रूप से अभिवृद्धि करते हैं तथा काव्यार्थ को सुन्दर शैली में व्यक्त करने में सहायक हैं। साथ ही इनमें ध्वन्यात्मकता होने से ये सुनने में भी प्रिय एवं मधुर होते हैं। शब्दालंकार कुछ तो वर्णगत होते हैं, कुछ शब्दगत और कुछ वाक्यगत। अनुप्रास, यमक, श्लेष, वक्रोति आदि शब्दालंकार है। एक उदाहरण पर ध्यान दीजिए। चन्द्रालोक में अर्थानुप्रास का उदाहरण देते हुए यह पंक्ति कही गई है-'**चन्दनं खलु गोविन्द चरणद्वन्द्व वन्दनम्''।।** अर्थात् गोविन्द (भगवान श्रीकृष्ण) के चरण युगलों की वन्दना चन्दन के समान शान्ति प्रदान करने वाली है। यहाँ वन्दन और चन्दन क्रमशः उपमेय और उपमान हैं तथा दोनों में 'न' तथा 'द' वर्णों की आवृत्ति हुई है। इसलिए यहाँ अनुप्रास अलंकार है। अब यदि इस श्लोक में 'वन्दनम्' के बदले 'अर्चनम्' शब्द रख दिया जाए तो अनुप्रास अलंकार ही समाप्त हो जाएगा। इसलिए शब्द विशेष के अपरिवर्तनीय होने से यहाँ शब्दालंकार है।

2.4.2.1.1 अनुप्रास अलंकारः लक्षण एवं उदाहरण

अनुप्रास का अर्थ है एक समान वर्णों का बार-बार (अनु) उत्कृष्ट प्रभाव (प्र) उत्पन्न करते हुए आना (आस)। यहॉ काव्य सौन्दर्य की वृद्धि के लिए समान स्वरूप वाले वर्णों का रसाकूल सुगुम्कन होता है। काव्य प्रकाश में वर्णों के साम्य को अनुप्रास कहा गया है-'वर्णसाम्यमनुप्रासः'।

यह साम्य व्यनजनों का होता है। साहित्य दर्पण (10/3) में इसीलिए आचार्य विश्वनाथ ने स्वरों में वैषम्य होने पर भी व्यन्जन मात्र की समानता को अनुप्रास माना है- काव्य में पढते समय आप स्वयं अनुभव कर पाएंगे कि जब कविता में वर्णों की बार-बार आवृत्ति होती हैतो एक आह्लादक ध्वन्यात्मता पैदा हो जाती है। अनुप्रास दो प्रकार का होता है- भेदों का अध्ययन करेंगे वे इन्हीं दोनों के अंतर्गत आते है। '**अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्'।** साहित्य दर्पण में ही दिए गए उदाहरण से इस अलंकार का आस्वाद आपको सुगमता से हो सकता है-

आदाय वकुलगन्धानन्धी कुर्वन् पदे पदे भ्रमरान्।
अयमेति मन्दमन्दं कावेरीवारिचावनः पवनः।

यहॉ आप देखेंगे कि 'गन्धानन्धी में संयुक्त व्यन्जनों की कावेरीवारि' में असंयुक्त व्यन्जानों की तथा 'पावनः पवनः' में अन्य अनेक वर्णों की आवृत्ति हुई है। यह अनुप्रास का मनोरम उदाहरण है। अब हम अनुप्रास के विभिन्न भेदों का अध्ययन करेंगे।

1. छेकानुप्रास—

स्वरव्यन्जनसंदोहव्यूहा मन्दोहदोहदा।
गौर्जगज्जाग्रदुत्सेका छेकानुप्रासमासुरा।।

अर्थात् स्वर और व्यन्जनों के समूह की जिसमें आवृत्ति की गई हो तथा जो वाणी के उत्कर्ष को अभिव्यक्त करने वाली हो ऐसी काव्यमिव्यक्ति छेकानुप्रास नामक शब्दालंकार से सुशोभित होती है।

इस अलंकार में स्वरों अथवा अनेक व्यन्जनों अथवा दोनों की ही केवल एक बार पुनरावृत्ति होती है।

'छेक' शब्द का अर्थ है 'विदग्ध' अर्थात् काव्य के मर्म को समझने वाले रसिक विद्वान। विदग्धों को अत्यन्त प्रिय लगने के कारण इस अलंकार का नाम छेकानुप्रास है। जयदेव की अपर्युक्त परिभाषा पर ध्यान दीजिए। इस पद्य में 'स्वर व्यन्जनसन्' अंश में अकार स्वर की आवृत्ति है। 'दोहव्यूहा' में 'ह' व्यन्जन की आवृत्ति है। जबकि 'दोहदोहो' में 'द' तथा 'ह' व्यन्जनों की आवृत्ति है। अतः छेकानुप्रास की परिभाषा बताने वाले इस पद्य में छेकानुप्रास अलंकार ही है। आपके लिए ध्यान देने योग्य है कि यह अलंकार तथा आगे आने वाला वृत्यनुप्रास दोनों ही वणगत अनुप्रास के अंतर्गत आते हैं।

2. वृत्यनुप्रास—

आवृत्तवर्ण सम्पूर्ण वृत्यनुप्रासवद् वचः।
अमन्दानन्द सन्दोह स्वच्छन्दास्यदमन्दिरम् ।।

जहॉ एक वर्ण अथवा अनेक वर्णो की अनेक बार आवृत्ति होती है वहॉ वृत्यनुप्रास होता है चन्द्रालोककार के अनुसार वृत्यनुप्रास से संयुक्त कविता अत्यधिक आनन्द समूह की स्वतंत्र प्रतिष्ठा का मन्दिर होती है।

वृत्यनुप्रास में दो शब्द है-वृत्ति तथा अनुप्रास। रसों के अनुरूप वर्ण रचना को वृत्ति कहा जाता है जिनके विषय में आप उच्च कक्षाओं में जानकारी प्राप्त करेंगे। मधुरा, प्रौढा, परूषा, ललिता और मद्रा इन पॉच वृत्तियों की चर्चा आचार्य जयदेव ने षठ मयूख में की है। इन वृत्तियों से समन्वित रसानुगुण वर्ण रचना जिस अनुप्रास में की गई हो उसे वृत्यनुप्रास कहते हैं।

उदाहरण के रूप में उपर्युक्त पद्य को ग्रहण किया जा सकता है। यहॉ अमन्दानन्द सन्दोह स्वच्छन्दा स्पष्ट मन्दिरम्' में 'न्' तथा 'द' व्यन्जन की अनेक बार आवृत्ति हुई है। यहॉ मधुरा वृत्ति है क्योंकि यहॉ द्र् का संयोग है। मधुरा वृत्ति यहाँ होती है जहाँ वर्गो के प्रथम चार वर्ण अपने वर्ग के पंचम अक्षर से युक्त होते है।

आपको सन्देह हो सकता हैं कि वस्तुतः छेकानुप्रास एवं वृत्यनुप्रास तो समान ही प्रतीत हो रहे हैं। किन्तु जब आप सूक्ष्मता से अवलोकन करें।तो आपको दोनों का अन्तर स्पष्ट हो जाएगा।

छेकानुप्रास में जहाँ अनेक वर्णो की एक ही बार आवृत्ति होती हैं वही वृत्यनुप्रास में एक या अनेक वर्णो की अनेक बार आवृत्ति होती है। यही अन्तर आपको व्यान में रखना है।

3. लाटानुप्रास—

लाटानुप्रास भर्मिन्ना भिप्राया पुनरूक्ता।
यत्र स्यान्न पुनः शत्रों गर्जितं तज्जितं त्रितम्।।

जहाँ एक पद की दो बार आवृत्ति हो किन्तु दोनों के अर्थ भिन्न हों वहाँ लाटानुप्रास अलंकार होता है। लाट प्राचीन गुजरात को कहते थे। वहाँ के लोगों को यट अलंकार अत्यन्त प्रिय लगता होगा इसलिए इसका यह नाम पड़ गया। इस अलंकार में भिन्न आशय वाली पुनरूक्ति होती है अर्थात् एक ही शब्द जब दो बार आए किन्तु अपने मूल अर्थ का परित्याग किए बिना दूसरे अर्थ की भी प्रतीतति कराए तब लाटानुप्रास होता है।

उपर्युक्त पद्य को पढते समय आपके ध्यान में आएगा कि उसमें 'जितम् जितम्' पद की आवृत्ति की गई है पर दोनों का अभिप्राय भिन्न है। प्रथम 'जितम्' का अर्थ 'विजय प्राप्त करना' या जीतना है पर दूसरे 'जितम्' का तात्पर्य 'सफल विजय है अर्थात् दूसरा पद विशेष अर्थ को समेटे हुए है। चूंकि लाटानुप्रास में सम्पूर्ण पद की पुनरावृत्ति होती है अतः इसे शब्दगत अनुप्रास कहेंगे। यहाँ पुनरूक पदों में शब्द और अर्थ की अभिन्नता होते हुए भी तात्पर्य मात्र से दोनों में भेद हो जाता है जो 'जितम्' जितम्' से स्पष्ट है।

4. स्फुटानुप्रास—

श्लोकस्योर्ध तदेर्ध वा वर्णावृत्तिर्यदि ध्रुवा
तदा मता मतिमतां स्फुटानुप्रासता सताम्।।

यदि श्लोक के पूर्वार्द्ध अथवा श्लोक के उत्तरार्द्ध में वर्णो की आवृत्ति नियत हो तो विद्वानों के मतानुसार वहाँ स्फुटानुप्रास होता है। वर्णो की आवृत्ति दो तरह से होती है-एक तो आदि से अंत तक वर्णो की आवृत्ति अथवा दूसरी चरणों के अंत में समान वर्ण की आवृत्ति अथवा दूसरी चरणों के अंत में समान वर्ण की आवृत्ति।

प्रस्तुत श्लोक में आप देखेंगे कि उत्तरार्द्ध में आदि से अन्त तक 'तकार' और 'मकार की आवृत्ति है। दूसरी और पूर्वार्द्ध के प्रथम चरण के अंत में 'वा' है तो द्वितीय चरण के अंत में भी 'वा है।

तृतीय चरण के अंत में 'ताम्' है तो चतुर्थ चरण के अंत में भी 'ताम्' है। अतः यहाँ स्फुटानुप्रास है।

5. अर्थानुप्रास—

उपमेयोपमानादावर्थानुप्रास इष्यते।

चन्दनं खलु गोविन्द चरणद्वन्द्ववन्दनम्।।

अर्थानुप्रास वहाँ होता है जहाँ उपमेय और अपमान में वर्णसाम्य या वर्णो की आवृत्ति हो । उदाहरण के लिए प्रस्तुत श्लोक के उत्तरार्द्ध पर ध्यान दें जिसका अर्थ है- गोविन्द श्रीकृष्ण के चरणयुगल की वन्दना चन्दन के समान शान्ति प्रदान करने वाली है' यहाँ 'वन्दनम्' उपमेय है तथा 'चन्दनम्' उपमान है। इन उपमेय एवं उपमान सूचक पदों में 'न' तथा 'द' की पुनरावृत्ति है। अतः अर्थानुप्रास होगा । उपमेय वह होता है जिसके स्वरूप या गुणों को अभिव्यक्त करने के लिए किसी अन्य पदार्थ से उसकी उपमा दी जाती है जबकि उपमान वह होता है जिससे उपमेय की उपमा दी जाती है। इसलिए उपमेय वर्ण्य विषय, प्रस्तुत अथवा विशेष्य कहलाता है जबकि उपमान अवर्ण्य, विषयी अप्रस्तुत अथवा विशेषण कहलाता है इनके संदर्भ में आप 'उपमाऽलंकार के प्रकरण में विशेष रूप से जानकारी प्राप्त करेंगे। उपमान में वर्णो की आवृत्ति रूप साम्य हो तो अर्थानुप्रास होता है । अर्थानुप्रास होने से यह अर्थालंकार है- ऐसा भ्रम नहीं होना चाहिए । पूर्व में ही आप यह पढ़ चुके है कि शब्दालंकार में शब्द प्रधान होता है तथा वहाँ शब्दों में परिवर्तन संभव नहीं है। उपर्युक्त उदाहरण में 'चन्दनम् वन्दनम्' के स्थान पर पर्याय शब्दों के रखते ही अलंकारत्व नष्ट हो जाएगा। अर्थालंकार होने पर शब्दों में परिवर्तन होने पर भी अर्थालंकार होने पर शब्दों में परिवर्तन होने पर भी अर्थामिव्यक्ति में कोई परिवर्तन नहीं होता। अतः अर्थानुप्रास भी शब्दालंकार ही है ।

अभ्यास प्रश्न-4

(1) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें-

(क) छेकानुप्रास में 'छेक' का तात्पर्य.....है।(विदग्ध/जड़)

(ख) वृत्यनुप्रास.....अनुप्रास के अंतर्गत आता है। (वर्णगत/शब्दगत)

(ग) लाटानुप्रास में.....की प्रावृत्ति होती है। (सम्पूर्ण पद/वर्ण)

(2) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें-

(क) स्फटानुप्रास की परिभाषा लिखें।

(ख) अर्थानुप्रास कहॉ होता है।

(ग) उपमान किसे कहते है?

2.4.2.1.2 श्लेष अलंकार : लक्षण एवं उदाहरण

'श्लेष' शब्द श्लिष् धातु से धञ् प्रत्यय करने पर बनता है। श्लिष् का अर्थ है चिपकना। अतः जब दो भिन्न भिन्न अर्थ एक ही शब्द या वाक्यांश से चिपके रहते हैं तो वहॉ श्लेष अलंकार होता है। श्लेश को शब्दालंकार के अतंर्गत रखा जाए या अर्थालंकार के अंतर्गत- इस सम्बन्ध में काव्यशास्त्रियों में मतभेद है। जयदेव इसे अर्थालंकार के अंतर्गत रखते हैं किन्तु भामह, रूद्रट, मम्मट, विश्वनाथ आदि आचार्य इसे शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनो के अंतर्गत मानते है। अर्थात् उनकी, दृष्टि में यह उमयालंकार है। अध्ययन करने पर आप जाएगे कि श्लेश शब्दगत भी होता है और अर्थगत भी। शब्दश्लेष में यदि आप श्लिष्ट पद के स्थान पर कोई अन्य पर्याय शब्द रख देंगे तो अलंकार ही नष्ट हो जाएगा किन्तु अर्थश्लेष में पद को परिवर्तित कर देने पर भी अलंकारत्व बना रहता है। पूर्व की इकाई में आपने 'अन्वय व्यतिरेक' के सन्दर्भ में पढ़ा है। जब आप इस निष्कर्ष पर इस अलंकार को भी परखेंगे तो स्वयं ही जान पाएंगे कि यह दोनों कोटियों में परिगणित होगा।

श्लेष का पृथम् उदाहरण न देते हुए आचार्य जयदेव ने इसके भेदों की परिभाषा के क्रम में उनके उदाहरण भी प्रस्तुत किए है। आगे उनके लक्षण एवं उदाहरण पढकर आप एवं अलंकार का आस्वादन कर सकेंगे।

1. खण्डश्लेष—

खण्डश्लेषः पदानां चेदेकैकं पृथगर्थता।
उच्छलद्भूरिकीलालः शुशुभे वाहिनीपतिः।।

जब एक पद से दो अर्थ अभिव्यक्त हो रहे हो और वे भिन्न-भिन्न रूप से दो अर्थ अभिव्यक्त होरहे हों तब खण्डश्लेष होता है। उपर्युक्त श्लोक में 'उच्छलद् भमि कीलालः इस समस्त पद के कीलालरूप एक खण्ड से रूधिर (रक्त) और जल दन दो अर्थो की तथा 'वाहिनीपतिः के वाहिनीरूप एक खण्ड से सेना तथा नदी इन दो अर्थो की अभिव्यक्ति हो रही है। और तब सम्पूर्ण वाक्य के दो विशिष्ट अर्थ प्रकट हो जाते है- ''उछलते हुए जलप्रवाह से समुन्द्र तथा रूधिर के प्रवाह से सेनापति सुशोभित हो रहे है।'' यहॉ उक्त् श्लिष्ट पदों के कारण ही दो वाक्यार्थ अभिवयक्त् हो रहे हैं। प्रत्येक वाक्यार्थ के लिए उक्त श्लिष्ट पद भिन्न अर्थों में गृहीत हुए हैं। अतः यहॉ खण्डश्लेष होगा। इसके खण्डश्लेष इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसमें समासान्त पद के एक खण्ड का ग्रहण किया जाता है।

2. भड्गश्लेष—

भड्गश्लेषः पदस्तोमस्यैव पृथगर्धता।
अत्ररामरता कस्य नायोध्येव पुरी प्रिया।।

जिस रचना में सम्पुर्णपद समूह ही प्रत्येक वाक्यार्थ के प्रति भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त हो वहॉ भड्गश्लेष अलंकार होता है। उपर्युक्त उदाहरण को ध्यान से पढ़िए। 'अजरामरता' को दो तरह से भड्ग करने पद दो अर्थ निकलते है। प्रथम अर्थ है-अजरता एवं अमरता अयोध्या पुरी की तरह किसे प्रिय नहीं है (अजर+अमरता)। दूसरी तरह से भड्ग करने पर अर्थ होगा- अत्र और राम से युक्त(अज+राम+रता) अयोध्या किसे प्रिय नहीं है।

यहॉ यह ध्यान देने योग्य है कि खण्डश्लेष का पद भड्ग (टूटकर) होकर दो अर्थो की अभिव्यक्ति करता है। अर्थात् खण्डश्लेष में सखण्ड पद में श्लेष होता है जबकि भड्गश्लेश में पद को भड्ग करने पर ही श्लेष प्रकट होता है। भड्गश्लेष को जतुकाष्ठन्याय से समझा जा सकता है। जैसे कष्ठ पर लाख लगे रहने पर दोनों के रूप में कोई भेद नहीं दीखता किन्तु दोनों को अलग भी किया जा सकता है।

'अजरामरता' पद एक है किन्तु आवश्यकता पडने पर उसे अलग किया जा सकता है।

अर्थश्लेषोऽर्धमात्रस्य यद्यनेकार्थसंन्चयः।
कुटिलाः श्यामला दीर्धाः कटाक्ष कुन्तलाश्च ते।।

जहॉ वाच्यार्थ का अनेक पदार्थो के साथ अक्तय किया जा सके अर्थात् केवल एक अर्थ का अनेक अर्थों से सम्बन्ध हो वहॉ अर्थश्लेष नामक अलंकार होता है। उदाहरणार्थ (हे प्रिये !)तुम्हारे कटाक्ष और केश दोनों ही कुटिल काले और लम्बे है।

यहॉ कुटिलता रूप अर्थ कटाक्ष और केश रूपी दो पदार्थो से सम्बन्ध रखता है। इसलिए अर्थश्लेष है। यहॉ आपके लिए ध्यान देने योग्य बात यह है कि यदि कुटिल आदि पदों के लिए उनके पर्याय पदों का भी प्रयोग कर दिया जाए (जैसे वक्र, कृष्ण आदि) तो अर्थ में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। अर्थात् यह अलंकार शब्दमूलक न होकर अर्थमूलक है जबकि खण्डश्लेष एवं भड्गश्लेष पूर्णतः शब्दों पर अचिन्त हैं। उपर्युक्त अलंकार में केवल अर्थ ही अनेकार्थवाची बन कर दो भिन्न-भिन्न पदों सम्बन्द्ध हो गया है।

अभ्यास प्रश्न-5

1. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें

(क) श्लेष शब्द का क्या अर्थ है?

(ख) अर्थश्लेष अर्थालंकार है या शब्दालंकार

(ग) खण्डश्लेष के उदाहरण में 'वाहिनी' शब्द के कौन-कौन से अर्थ हैं?

2. सत्य अथवा असत्य का चयन करें-

(क) श्लेष उभयालंकार है। (सत्य/असत्य)

(ख) भङ्गश्लेष में पदों को भङ्ग करने से अर्थ नहीं निकलता।(सत्य/असत्य)

(ग) 'अजरामरता' खण्ड श्लेष का उदाहरण है।(सत्य/असत्य)

2.4.2.1.3 यमक अलंकार : लक्षण एवं उदाहरण

यमक अलंकार प्रसिद्ध शब्दालंकारों में परिगणित है। जहॉ अनेक वर्णो के समूह की आवृत्ति की जाती है वहॉ यमक अलंकार होता है।

आवृत्तवर्णस्तवकं स्तवकन्दाङ्कुरं कवेः।
यमकं प्रथमा धुर्यमाधुर्यवचसो विदुः।।

यकम में भिन्नार्थक शब्दों की आवृत्ति होती है। विगत प्रकरण में आपने पढ़ा कि अनुप्रास में भी वर्णो की आवृत्ति होती है तो यमक से उसकी भिन्नता क्या है? वस्तुतः अनुप्रास में वर्णो की आवृत्ति का स्थान नियत नहीं होता किन्तु यमक में वर्णावृत्ति नियत स्थान पर ही होती है।

उपर्युक्त लक्षण की प्रथम पंक्ति में 'स्तवक-स्तवक' तथा द्वितीय पंक्ति में 'माधुर्य-माधुर्य की आवृत्ति की गई है। वर्णसमूह की पुनरावृत्ति होने से यहॉ यमक अलंकार है।

यमक अलंकार में कहीं सार्थक तो कहीं निरर्थक परस्पर भिन्नार्थक स्वर व्यंजन समुदाय की उसी क्रम से आवृत्ति होती है। इसमें दोनों ही वर्णसमूह रूपी शब्दों या पदों की कहीं सार्थकता कहीं निरर्थकता तो कहीं एक माग की सार्थकता तो दूसरे भाग की निरर्थकता रहती है। यह आवश्यक है कि जिस क्रम में प्रथम शब्द के वर्ण समूह रखे गए हैं उसी क्रम से आवृत्त होने वाले शब्दों के भी वर्णसमूह होने चाहिए। यदि क्रम भिन्नता हुई तो वर्णसमूह का साम्य होते हुए भी यमक नहीं होगा।

उपर्युक्त श्लोक के स्तबक और स्तवक पदों में वर्णसाम्य है ('ब' और 'व' में भेद नहीं माना जाता)। प्रथम स्तबक तो सार्थक है किन्तु बाद वाला दो शब्दों का अंश होने से निरर्थक है। उसी तरह पहला माधुर्य शब्द निरर्थक है क्योंकि वह भी दो शब्दों का अंश है किन्तु दूसरा माधुर्य सार्थक हैं।

यमक अलंकार वहॉ भी होता है जहॉ वर्णो में भेद के रहते हुए भी श्रवणकाल में उनकी ध्वनि समान प्रतीत होती है। र और ल, उ और ल, ब और व, श और ष, न और ण, विसर्गसहित और विसर्गरहित विन्दुसहित और बिन्दु रहित-ऐसे वर्ण स्वरूपतः भिन्न होते हुए भी यमक की दृष्टि से अभिन्न ही माने जाते हैं। महाकवि माध के द्वारा शिशुपालवध महाकाव्य में विरचित यह प्रसिद्ध पद्य यमक का सुन्दर एवं मनोरम उदाहरण है-

न्वपलाश पलाराव़नं पुरः
स्फुट पराग परागत पङ्कजम्।
मृदुलतान्त लतान्तमलोकयत्
स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः।।

यहॉ प्रथम पाद में दोनों पलाश पदों की सार्थकता है। द्वितीय पाद में प्रथम पराग सार्थक है जबकि दूसरा पराग पद परागत का भाग होने से निरर्थक है। तृतीय पाद में लतान्त में दूसरा सार्थक है जबकि पहला मृदुल-तान्त्र का भाग होने से निरर्थक है। चतुर्थ पाद में दोनों सुरभिं पद सार्थक हैं।

काव्यसौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिए कवियों ने यमक का प्रयोग प्रचुरतया किया है।

अभ्यास प्रश्न-6

1-निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें

(क) 'प्रथमा धुर्य माधुर्य वचसो विदुः- इस पंक्ति में कौन सा अलंकार है?

(ख) यमक अलंकार में किसकी आवृत्ति की जाती है?

(ग) अनुप्रास और यमक का अंतर एक पंक्ति में दें।

2. सत्य एवं असत्य पर चिन्ह लगाएँ-

(क) यमक में भिन्नार्थन शब्दों की आवृत्ति होती है।(सत्य/असत्य)

(ख) यमक अलंकार में वर्णसमूहों का क्रम नियत नहीं होता। (सत्य/असत्य)

(ग) यमक अलंकार में आवृत्त वर्णसमूह सर्वदा सार्थक होते हैं (सत्य/असत्य)

2.5 अलंकारों का विकास क्रम

अलंकारों की विकास यात्रा सुदीर्घ एवं रोचक है। सर्वाधिक प्राचीन गन्थ ऋग्वेद का जब आप अवलोकन करेंगे तो पाएँगे कि ऋषियों ने उषःसूक्त आदि अनेक सूक्तों में अलंकृत शब्दावली का प्रयोग किया है। विशेषकर वहाँ उपमा का सुन्दर प्रयोग प्राप्त होता है। महर्षि बाल्मीकिकृत रामायण में सुन्दर उपमाएँ एवं उत्प्रेक्षाएँ प्रयुक्त हुई हैं। भरत मुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में उपमा, रूपक, दीपक तथा यमक इन चार अलंकारों को परिभाषित किया है। अग्निपुराण में महर्षि वेदव्यास ने 16 अलंकारों की गणना की है। इसके बाद अलंकारों का विकास धीरे-धीरे होता रहा और उनकी संख्या बढ़ती रही। छठी शताब्दी में आचार्य भामह ने 39 अलंकारों का विवेचन किया है।
महाराज भोज तथा आचार्य मम्मट के समय तक अलंकारों की संख्या 103 तक जा पहुँची। 18 वीं शती में अप्पय दीक्षित तथा पण्डितराज जगन्नाथ तक आते-आते अलंकार दो सौ की संख्या छूने लगे थे। आगामी बॉक्स में विभिन्न ग्रंथों में दी गई अलंकारों की संख्या दी गई है जिनसे उनके विकास क्रम का पता चलता है। ध्वन्यालोककार आचार्य आनन्दवर्धन ने कहा है-
'अनन्ता हि अलंकारा', (ध्वन्या 3.43)। कथन के प्रकार अनन्त हैं तो अलंकार भी अनन्त हो सकते हैं। बहुत सारे अलंकारों का अंतर्भाव अन्य प्रसिद्ध अलंकारों में हो जाता है। श्री जयदेव ने चन्द्रालोक में उपभेदों सहित 09 शब्दालंकार और 87 अर्थालंकार माने हैं। आगामी इकाइयों में इनमें से कुछ प्रसिद्ध अलंकारों का परिचय आपको मिलेगा। इनकी व्याख्या पढ़कर आपको न केवल उन अलंकारों का ज्ञान होगा वरन् आप शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों का भेद भी सम्यक्रूपेण समझा पायँगे। विभिन्न आचार्यों के अनुसार अलंकारों की संख्या -

	आचार्य	ग्रंथ	अलंकारों की संख्या
1.	भरतमुनि	नाट्यशास्त्र	4
2.	महर्षि वेदव्यास	अग्निपुराण	16
3.	आचार्य भामह	काव्यालंकार	39
4.	आचार्य दण्डी	काव्यादर्श	35
5.	आचार्य वामन	काव्यालंकारसूत्र	33
6.	आचार्य मम्मट	काव्यप्रकाश	67
7.	श्री जयदेव	चन्द्रालोक	96
8.	विश्वनाथ	साहित्य दर्पण	135
9.	पण्डितराज	जगन्नाथरसगंगाधर	70

2.6 सारांश

इस इकाई में आपने अलंकारों के अर्थ एवं स्वरूप के विषय में पढ़ा। साथ ही यह भी जाना कि काव्य में अलंकारों की उपयोगिता क्या है। आपने यह पढ़ा कि काव्य की शोभा बढ़ाकर उसे मनोरम एवं रमणीय बनाने का कार्य

अलंकार उसी प्रकार करते हैं जैसे कोई रमणी स्वयं की सुंदरता निखारने के लिए आभूषण धारण करे। संक्षेप में इस इकाई को हम इन बिन्दुओं के माध्यम से स्मरण रखने का प्रयास करेंगे-

- अलंकार काव्य के शोभावर्द्धक तत्त्वों को कहते हैं।
- काव्य के लिए अलंकारों की सत्ता वाह्य है।
- अलंकार उत्कृष्ट काव्य में विद्यमान रहते हैं। कहीं तो वे प्रकट रूप में होते हैं और कहीं अस्फुट रूप में।
- भामह, दण्डी तथा उद्भट अलंकारों को काव्य का अनिवार्य तत्त्व मानते हैं।
- आचार्य मम्मट, आनन्दवर्धन, विश्वनाथ, आदि काव्यशास्त्रियों के अनुसार अलंकार काव्य के अस्थिर धर्म हैं।
- जब अलंकारों का प्रयोग काव्य में सहज एवं स्वाभाविक ढंग से हो तो वे सौन्दर्यवर्धक होते हैं किन्तु जब वे काव्य की भावधारा को खण्डित करने लगें तो फिर अर्थहीन हो जाते हैं।
- अलंकारों के दो भेद हैं- शब्दालंकार एवं अर्थालंकार। शब्द पर आश्रित अलंकार शब्दालंकार हैं जबकि अर्थ पर आश्रित अर्थालंकार। जो अलंकार शब्द बदलते ही समाप्त हो जाए वह शब्दालंकार की श्रेणी में आएगा किन्तु शब्द परिवर्तित करने पर भी अर्थबोध में कोई व्यवधान नहीं हो तो वहाँ अर्थालंकार होगा। अनुप्रास, यमक शब्दालंकार हैं तो उपमा, रूपक अर्थालंकार। भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्रमें केवल चार अलंकार माने हैं किन्तु आगे चलकर अलंकारों की संख्या दो सौ तक पहुंच गई है। इनमें से बहुत सारे अलंकारों का अंतर्भाव प्रसिद्ध अलंकारों में हो जाता है।
- इस इकाई में आपने अनुप्रास, श्लेष एवं यमक अलंकारों के विषय में माना। उनके लंक्षण, उदाहरण एवं भेद-प्रभेदो के अध्ययन से काव्य में इनकी भूमिका स्पष्ट हो जाती है। इस इकाई के निम्न विन्दुओं के स्मरण रखने से उपर्युक्त अलंकारों का ज्ञान सुगमता से हो सकता है- अनुप्रास में व्यन्जन वर्णो की आवृत्ति होती है।अनुप्रास वणगत भी होता है और शब्दगत भी। छेकानुप्रास में स्वर व्यन्जन वर्णो की केवल एकबार पुनरावृत्ति होती है।'छेक' शब्द का तात्पर्य है-विदग्ध वृत्यनुप्रास में एक वर्ण या वर्णसमूहों की अनेक बार आवृत्ति होती है। मधुरा, पौढ़ा, परूषा, ललिता और भद्रा इन वृत्तियों से समन्वित रसानुरूप वर्णरचना वृत्यनुप्रास कहलाती है। लाटानुप्रास में भिन्न अर्थ वाली पुनरावृत्ति होती है।
- एक ही शब्द दो बार आता है किन्तु अपने मूल अर्थ का परित्याग किए विना सर्वथा नवीन (विशेष) अर्थ की प्रतीत कराता है।
- स्फुटानुप्रास में वर्णो की आवृत्ति दो तरह से होती है- सम्पूर्ण पद्य मे आदि से अंत तक वर्णो की आवृत्ति अथवा चरणों के अंत में समान वर्ण की पुनरावृत्ति।अर्थानुप्रास में उपमेय एवं उपमान में वर्णो का साम्य अथवा पुनरावृत्ति होती है।
- जहॉ एक ही शब्द या वाक्यांश से दो या अधिक भिन्न अर्थ चिपके रहते है। वहॉ श्लेष अलंकार होता है।खण्डश्लेष, भङ्गश्लेष तथा भङ्गश्लेष शब्दालंकार के अंतर्गत आएगे जबदि अर्थश्लेष अर्थालङ्कार के अंतर्गत
- खण्डश्लेष में एक पद से दो अर्थ प्रकट होते हैं तथा वे भिन्न-भिन्न रूप से दो वाक्यों में अन्चित होते है।भङ्गश्लेष मे पद भङ्ग होकर दो अर्थो को अभिव्यक्त करता है।अर्थश्लेष में एक अर्थ का अनेक अर्थो से सम्बन्ध होता है।
- यमक अलंकार में अनेक वर्णो के समूह भिन्न अर्थ का बोध कराते है।

- यमक में वर्णो की आवृत्ति नियत स्थान पर ही होती है। आवृत्त वर्ण समूह सार्थक या निरर्थक दोनों हो सकते है।

2.7 शब्दावली

उपमेय- जिसकी किसी अन्य उत्कृष्ट गुण वाली वस्तु से तुलना की जाए वह उपमेय है। 'चन्द्रमिव मुखम्' (चन्द्रमा की तरह मुख) में मुख उपमेय वस्तु है जिसकी तुलना चन्द्र से की गई है। उपमेय को प्रस्तुत, प्रकृत या वर्ण्य वस्तु भी कहते हैं।

उपमान- वर्णनीय वस्तु या उपमेय की जिस उत्कृष्ट गुणसंपन्न वस्तु से समता स्थापित की जाए उसे उपमान कहते हैं। ऊपर के उदाहरण 'चन्द्रमिव मुखम्' में 'चन्द्र' उपमान है क्योंकि उसकी तुलना मुख से की गई है। चन्द्र गुणों (सौन्दर्य, आह्लादकत्व, प्रकाश) में मुख से उत्कृष्ट है। उपमान को अप्रस्तुत, अप्रकृत या अवर्ण्य भी कहते हैं।

काव्यशास्त्र- काव्यशास्त्र काव्य के अंग-उपांग की विभिन्न सिद्धांतों के रूप में विवेचना करता है। काव्य के अनुशीलन एवं रसास्वाद के लिए काव्यशास्त्र का ज्ञान आवश्यक है। काव्यशास्त्र को ही साहित्यशास्त्र भी कहते हैं। जयदेव कृत चन्द्रालोक काव्यशास्त्र का ग्रंथ है।

छेक- छेक का अर्थ है 'विदग्ध' 'या 'चतुर'। विदग्धों द्वारा प्रयुक्त होने के कारण ही 'छेकानुप्रास' या छेकापद्धति' आदि नाम पड़े है।

लाट- प्राचीन देशविशेष (गुजरात) को लाट प्रदेश कहते थे।

शब्दगत- जो अलंकार शब्दों पर आचिन्त होते हैं उन्हें 'शब्दगत' कहा जाता है। शब्दगत होने का अभिप्राय यह है कि शब्द के हटते ही अलंड़कार भी नष्ट हो जात है।

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1

(क) 10 मयूख

(ख) उपभेदों सहित 09 शब्दालंकारों एवं 87 अर्थालंकारों का।

(ग) पंचम मयूख में।

अभ्यास प्रश्न-2

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति

(क) अस्थिर

(ख) वाह्य

(ग) भामह

2. (क) भूषण

(ख) काव्य की शोभा को बढ़ा देते हैं।

अभ्यास प्रश्न-3

(क) सही

(ख) गलत

(ग) श्री जयदेव की

अभ्यास प्रश्न-4

1. (क) विदग्ध

(ख) वर्णगत

(ग) सम्पूर्ण पद

2. (क) श्लोक के पूर्वार्ह अथवा उत्तरार्द्ध में वर्णों की आवृत्ति नियत हो जाने पर स्फुटानुप्रास होता है।
(ख) अर्थानुप्रास उपमेय एवं उपमान में होता है।
(ग) जिसके द्वारा किसी की विशेषता बताई जाए उसे उपमान कहते है।

अभ्यास प्रश्न-5

1. (क) श्लेष का अर्थ है 'चिपकना' अथवा मिलाना।
(ख) अर्थालड्कार
(ग) सेना तथा नदी

2 (क) सत्य
(ख) असत्य
(ग) असत्य

अभ्यास प्रश्न-6

1. (क) यमक
(ख) वर्णासमूह की
(ग) अनुप्रास में वर्णों की आवृत्ति का स्थान नियत नहीं होता किन्तु यमक में वर्णावृत्ति नियत स्थान पर ही होती है।

2. (क) सत्य (ख) असत्य (ग) असत्य

2.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. चन्द्रालोक: 'विमला' 'सुधा' व्याख्या सहित डा0 श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1997
2. चन्द्रालोक: सुबोधचन्द्र पन्त, मोतीलाल बनारसीदास, 1996

2.10 उपयोगी ग्रंथ

1. भारतीय साहित्यशास्त्र: आचार्य बलदेव उपाध्याय, नन्दकिशोर एण्ड सन्स, चौक वाराणसी, 1963
2. भारतीय काव्यशास्त्र: डा0 योगेन्द्र प्रताप सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1985
3. हिन्दी साहित्य कोश भाग-1: डा0 धीरेन्द्र वर्मा एवं अन्य, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 1985
4. साहित्य दर्पण: डा0 सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1982
5. काव्यप्रकाश: 'शशिकला' व्याख्या सहित, डा0 सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1987

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. अलंकार की परिभाषा देते हुए साहित्य में उसकी उपादेयता प्रतिपादित करें।
2. अलंकारों के कितने भेद हैं। उदाहरण सहित उन भेदों की व्याख्या करें।
3. अलंकारों के विकास पर संक्षिप्त निबन्ध लिखें।
4. अनुप्रास अलंकार के विभिन्न भेदों की लक्षण एवं उदाहरण सहित व्याख्या करें।
5. श्लेष अलंकार के कितने भेद हैं? सभी भेदों की सोदाहरण व्याख्या करें।
6. यमक अलंकार की परिभाषा देते हुए उदाहरण सहित विश्लेषण करें।

इकाई.3 प्रमुख अर्थालंकारों का परिचय

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 अर्थालंकार परिचय

- 3.3.1 उपमा अलंकारः लक्षण एवं उदाहरण
- 3.3.2 रूपक अलंकारः लक्षण एवं उदाहरण
- 3.3.3 उत्प्रेक्षा अलंकारः लक्षण एवं उदाहरण
- 3.3.4 विशेषोक्ति अलंकारः लक्षण एवं उदाहरण
- 3.3.5 अपह्नुति अलंकारः लक्षण एवं उदाहरण
- 3.3.6 व्यतिरेक अलंकारः लक्षण एवं उदाहरण
- 3.3.7 विभावना अलंकारः लक्षण एवं उदाहरण

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.8 अन्य उपयोगी ग्रंथ

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

पूर्व की इकाई में आपने शब्दालंकारों के विषय में पढा़ । अनुप्रास, यमक ओर श्लेष अलंकारों का अध्ययन करते समय आपने जाना कि वर्णों या वर्ण समूहों का आलंकारिक प्रयोग काव्य में कैसे चमत्कार उत्पन्न करता हें वर्ण विशेष या शब्दविशेष की पुनरावृत्ति तथा भिन्न-भिन्न अर्थावबोध उत्पन्न करने वाले शब्दों या पदों का प्रयोग ध्वन्यात्मकता उत्पन्न करता है जो काव्य सौन्दर्य में वृद्धि करता है । इस इकाई में हम अर्थालंकारों के अन्तर्गत आने वाले अलंकारों को जानेंगे।

चन्द्रालोक पञ्चम् मयूख में अलंकार वर्णन प्रतिपादित है। इसमें आठ प्रकार के शब्दालंकार और यदि उपभेदों को ग्रहण न किया जाय तो इक्यासी (81) अर्थालंकार निरूपित किए गए है। प्रायः सभी अलंकारों में उपमा के लिए उपमान एवं उपमेय अपरिहार्य होते हैं। अर्थालंकारों में इसका सर्वप्रथम स्थान है। उपमा के अन्यान्य भेदों द्वारा लक्षण ग्रंथों में निदर्शन प्राप्त होते है।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप उपमा के वर्णन प्रयोग उसकी धर्मिता, विशेषता, तथा समीक्षात्मक ज्ञान को भी बताते हुए विभिन्न उपमाओं को समझा सकेंगे साथ ही रूपक, उत्प्रेक्षा, विशेषोक्ति आदि अलंकारों की विशेषताओं का ज्ञान करा सकेंगे। साथ ही अपह्नुति, व्यतिरेक एवं विभावना का अध्ययन करेंगे। ये तीनों ही अर्थमूलक अलंकार है जिनका प्रयोग संस्कृत के कवियों ने काव्य की श्री वृद्धि के लिए प्रचुरता से किया है। चन्द्रालोक में अपह्नुति के कई भेदों की चर्चा की गई है जिनके विषय में इस इकाई में अध्ययन किया जाएगा । साथ ही अतिशयोक्ति निदर्शना और अर्थापत्ति अलंकारों का अध्ययन करेंगे। प्रसिद्धि का उलंघन करने वाली उक्ति को अतिशयोक्ति कहा जाता है। निदर्शना अलंकार में वस्तु के असम्भव सम्बंध से उपमा की परिकल्पना होती है। इसी प्रकार एक पदार्थ के वर्णन करते समय जब दूसरे पदार्थ का अस्तित्व स्वतः सिद्ध हो जाय तो वहाँ पर अर्थापत्ति अलंकार होता है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- उपमालंकार के अंगों के विषय में जान सकेंगे।
- रूपकालंकार की विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे।
- उपमा एवं रूपक अलंकारों में मूलभूत अंतर बतलाने में समर्थ हो सकेंगे।
- उत्प्रेक्षा, रूपक तथा उपमालंकार के भिन्न के विषय में जान सकेंगे।
- विशेषोक्ति अलंकार में उपमेय तथा उपमान का वर्णन किस प्रकार किया जाता है इसका उल्लेख कर सकेंगे।
- अपह्नुति अलंकार के लक्षण एवं उदाहरण से परिचत हो सकेंगे।
- अपह्नुति के विभन्न भेदों से परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- व्यतिरेक अलंकार के लक्षण एवं उदाहरण द्वारा इस अलंकार के सौन्दर्य का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- विभावना अलंकार की परिभाषा एवं उदाहरणों से परिचत होस सकेंगे।
- अर्थालकारों के उपयुक्त विवेचन से अलंकारों की अर्थमूलकता का ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।
- अतिशयोक्ति अलंकार के विभिन्न स्वरूपों को बता सकेंगे।
- अनेक उपमेय तथा अनेक उपमान में क्रियाओं की समानता को बता सकेंगे।

3.3 अर्थालंकार परिचय

शब्दालंकार के प्रकरण में आपने यह समझा कि उसमें शब्द बदलने से अलंकार नष्ट हो जाता है किन्तु अर्थालंकार में अलंकार शब्द पर आश्रित न होकर अर्थ पर निर्भर होता है। अर्थात् यदि शब्द विशेष के स्थान पर उसका पर्याय शब्द रख दिया जाए फिर भी अलंकार यथावत् रहे; उसमें कोई परिवर्तन न हो तो वहाँ अर्थालंकार होता है। यहाँ अलंकार शब्द निरपेक्ष होता है किन्तु अर्थ पर अवलंबित होता है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि अर्थालंकार की श्रेणी में आते हैं। श्री जयदेव ने चन्द्रालोक में सन्देह अलंकार का उदाहरण देते हुए कहा है-**'पंकजं वा सुधांशुर्वेत्यस्माकं न निर्णयः।'** सुन्दर स्त्री के मुख को देखकर कोई सन्देह करता है कि 'यह कमल है' अथवा 'चन्द्रमा' इसका निर्णय करना कठिन हो रहा है। यहाँ अलंकार जन्य चमत्कार यह है कि सुन्दरी का मुख कमल एवं चन्द्रमा दोनों के सौन्दर्य एवं आह्लादकत्व को धारण कर रहा है। यहाँ पंकज के बदले 'जलज' और 'सुधांशु' के बदले 'सीतांशु' शब्द रख देने पर भी अलंकार का वैचित्र्य एवं चारुत्व यथावत् रहता है।एक ही अलंकृत कथन कवि के उक्तिवैचित्र्य या कहने के ढंग में परिवर्तन के आधार पर विभिन्न अलंकारों का रूप ले लेता है। मुख और चन्द्रमा की तुलना करनी है। इसके आधार पर अलंकारों के कितने भेद हो सकते हैं इसका उदाहरण देखें-

(चन्द्रमा के समान मुख है)	चन्द्रमिव मुखम्	उपमा अलंकार
(मुख के समान चन्द्रमा है)	मुखमिव चन्द्रः	प्रतीप अलंकार
(मुख ही चन्द्रमा है)	मुखमेव चन्द्रः	रूपक अलंकार
(मुख रूपी चन्द्रमा से ताप शान्त होता है)	मुखचन्द्रेण तापः शाम्यते	परिणाम अलंकार
(मुख है या चन्द्रमा)	मुखं वा चन्द्रः वा	सन्देह अलंकार

3.3.1 उपमा अलंकारः लक्षण एवं उदाहरण

संस्कृत लखणकारों ने अनेक अलंकारों की उपमा मूलक मानते हुए समान्यतयः यह कहा है, कि अन्य अलंकारों में उपमा बीज रूप में कार्य करती है। उपमा अलंकार की प्रसस्ति में साहित्य जगत में कुछ उक्तियाँ अत्यंत रोचक रूप में प्रस्तुत की जाती है। चित्रमीमांसा में अव्यय दीक्षित ने कहा है कि उपमा एक नहीं है जो विचित्र भूमिकाएँ अपनाकर नाचती हुई काव्य के रंगमंच पर काव्यानुरागियों का मनोरंजन करती है-

उपमैका शैलूषी यम्प्राप्ता चित्रभूमिकाभेदान्।
रञ्जयति काव्यरङ्ग नृत्यन्ती तद्विदां चेतः।।

अपने अलंकारसर्वस्व में आचार्य रूय्यक उपमा की प्रशस्ति बताते हुए उसे सभी अलंकारों का शिरोमणि है वह काव्य सम्पदा का सर्वस्व है यही नहीं बल्कि वह कविवंश की माता भी है । इस उक्ति को राजशेखर की उक्ति भी माना जाता है तथा यह उक्ति अलंकारशास्त्र में अत्यन्त प्रसिद्ध भी है-

अलङ्कारशिरोत्नं सर्वरत्नं काव्यसम्पदाम्।
उपमा कविवंशस्य मतैवेति मतिर्मम।।

वस्तुतः अलंकारों के प्रयोग में अर्थालंकारों के अन्तर्गत उपमेय-उपमान के प्रयोगों द्वारा ही मुख्यतः अलंकार निर्मित किए जाते है अन्य उपाङ्गों के वर्णन इनकी पूर्ति हेतु हुआ करते है। रूपक अलंकार के अन्तर्गत इन दोनों के आरोप सिद्ध किए जाते है। मुख्यतः उपमा के चार पूरक अंग माने जाते है। उपमान, उपमेय, साधारण धर्म, और उपमावाचक शब्द ये चारों जहाँ शब्द से प्रतिपादित हो वहाँ पूर्णोपमा कही जाती है और जहाँ इनमें से किसी एक की कमी रहे वहाँ लुपतमा होती है। जैसे—

1. जिससे उपमा (समानता) बतायी जाय उसे उपमान कहते हैं। यथा चन्द्रमा के समान मुख है। यहाँ चन्द्र से मुख की समानता बताई जा रही है। अतः चनद्रमा उपमान है।

2. उपमा के योग्य पदार्थ को उपमेय कहते है। जैसे चन्द्र के समान मुख। यह मुख में चन्द्र की समानता बतायी जाती है। अतः मुख उपमेय है।

3. साधारण धर्म उसे कहते है, जो उपमान और उपमेय दोनो में एक रूप से रहता है। जैसे-चन्द्रमा के समान मुख मनोहर है। यहाँ मनोहरत्व धर्म उपमान चन्द्र उपमेय मुख इन दोनों में एक रूप से रहा है अतः यह साधारण धर्म है।

4. एक दूसरे के साथ समानता बताने वाले इस यथा, आदि शब्द उपमा वाचक कहे जाते है।

यद्यपि चन्द्रालोक पञ्चम मय्ख में तथापि इसके वर्णन ही प्रसतुत इकाई का प्रमुख प्रतिपाद्य है, तथापि इसके सटीक एवं सविस्तार अध्ययन के लिए कतिपय प्रसिद्ध एवं मुख्य लक्षण कारों के अनुसार उपमा के वर्णन भी आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत किए जायेगे। प्रथमतः चन्द्रालेक के अनुसार वर्णित उपमा इस प्रकार द्रष्टव्य है-

लक्षणोदाहरण-

उपमा यत्र सादृश्यलक्ष्मी रूतलसति द्वयोः।

हृदये खेलतोरूच्चैस्तन्वङ्गीस्तनयोरिव।। (चन्द्रालोक पञ्चम मयूख ।।11।।)

सरलता से उपर्युक्त लक्षण का अध्ययन करने क लिए इसका अन्वय करके भलीभाँति एक-एक तथ्यों को जानना आवश्यक है-

अन्वय- यत्र द्वयोः सादृश्यलक्ष्मीः हृरये खेलतोः उच्चैः तनवङ्गीस्तनयों इव उतलसति सा उपमा।

शब्दार्थ- यत्र- यास्मिन् अलंकारे (उपमेय और उपमान), सादृशस्यलक्ष्मीः सादृश्यशोभा (समानता की शोभा, सम्पदा) हृदये-वक्षः स्थले (वक्ष स्थल पर) खेलतोः क्रीडतोः छलकते हैं, उच्चेः- उच्चयोः उन्नततयोः (उभड़े हुए) तन्वङ्गीस्तनयोः- सुन्दरी कुचयोः (सुन्दरी नायिका के स्तन) इवः यथा (जैसे), उल्लसति- शोभते (सुशोभित होता है।) उपमा- उपमालंकारः (उपमाअलंकार)

व्याख्या-सुन्दरी नायिका के वक्षःस्थल पर हलकते हुए उभड़े स्तनों की तरह जहाँ उपमान और उपमेय दोनो समानता (सादृश्यता) को शोभा से विकसित हो वहाँ उपमा अड्कार होता है।

तात्पर्यार्थ यह कि सुन्दरी की छाती पर दोनों स्तन एक दूसरे के समान शोभित होते है। इसी तरह यहाँ उपमेय और उपमान एक दूसरे के समान शोभित होते हैं। उपमान उपयेय की अपेक्षा हमेशा श्रेष्ठ माना जाता है। तथा इसके प्रसिद्ध होनें की अनिवार्यता है। उपमालंकार के सटीक और नितान्त स्पष्ट विवेचन हेतु काव्य प्रकाशाकार के लक्षण यहाँ द्रष्टव्य है-'साधमर्यमुपमा भेद' समानधर्मता रूप सम्बंध कार्य-कारण आदि में नहीं अपितु उपमान और उपमेय में ही हो सकता है, और इसीलिए उन्ही दोनों अर्थात् उपमान और उपमेय का ही जो समान धर्म से सम्बंध है उसे ही उपमान कहते है अर्थात् उपमा अलंकार वह है जिसे उपमान और उपमेय का, उनमे भेद होने पर भी परस्पर साधारण से सम्बद्ध होना चाहिए।

यथा-स्वप्नेऽपि समरेषु त्वां विजयश्रीर्न मुञ्चतिं

प्रभावप्रभवं कान्तं स्वाधनिपतिका यथा।।

अर्थात्- महाराज! विजयश्री आप सरीखे प्रभुत्वसम्पन्न महापुयष को संग्राम में स्वप्न में भी उसी प्रकार नहीं छोड़ना चाहती जिस प्रकार कोई स्वाधीनपतिका नायिका अपने परमानुरक्त प्रियतम को स्वपन में भी नहीं छोड़ना चाहति। इस उदाहरण में 'विजयश्री' उपमेय है और स्वाधनिपतिका उपमान है, 'न मुञ्चति' अर्थात् अपरित्याग साधर्म्य अथवा साधारण धर्म रूप है और 'यथा' वाचक शब्द है। उपमा के चारों अंग यहाँ उपस्थित है, अतः यहाँ उपमा अलंकार है।

यथाश्च- अवितथ मनोरथपयप्रथनेषु प्रगुणगरिमगीतश्रीः।

सुरतकसदृशः स भवानभिलषणीयः श्रितीश्वर। न कस्य।।

अर्थात्- हे महाराज! प्रजाजन के सफल मनोरथों के मार्गो का सदा विस्तार करने में अपने महान गुणों के कारण सभी के लिए सतुत्व लक्ष्मी से सम्पन्न आप भला कल्पवृक्ष की भाँति किसी की अभिलाषा के पात्र नहीं है।

अर्थात् है। यहाँ 'सुरतक' 'सदृश' उपमावाचक शब्द ये चारों उपमा के अंग उपलब्ध है। अतः उपमालंकार है। यद्यपि आचार्य मम्मट काव्यशास्त्रीय समस्त तत्वों के विवेचन हेतु समन्वयवादी आचार्य माने जाते है, फिर भी साहित्य दर्पण में जो विश्वनाथ ने उपमा का लक्षण किया है प्रसंगतः वह भी समीचीन है- **'साम्यं वाच्यवैद्यर्म्य वाक्यैक्य उपमा द्वयोः'** अर्थात् उपमा वह अलंकार है जिसमें उपमान और उपमेय का साम्य या सादृश्य रहता है और वह स्पष्टतः एक वाक्य में प्रतिपादित होता है। यहाँ पर वैद्यर्म्य की कोई चर्चा नहीं होती। वस्तुतः आपके अध्ययन का विषय चन्द्रलोक में वर्णित उपमा है किन्तु उपमा अलंकार के स्वभाव आदि को जानने व पहचानने के लिए यहाँ आचार्य मम्मट और विश्वनाथाचार्य द्वारा बताये गये उपमा के लक्षण का वर्णन प्रस्तुत है।

उपमा के अन्यान्य प्रकारों को बताते हुए चन्द्रालोककार ने सर्वप्रथम उपयेयोपमा को एक पृथक अलंकार के रूप में चित्रित किया है, किन्तु उपमा के तत्व इसमें भी पाये जाते हैं। जैसे-प्रथम वाक्य जब उपमान अथवा उपमेय द्वितीय वाक्य में क्रमशः उपमेय या उपमान बना दिया जाय तो उपमेयोपमा अलंकार होता है। उदाहरण के लिए- **'धर्मोऽर्थइव पूर्वश्रीः अर्थोधर्म इवत्वयि'।** अर्थात् यहाँ पर प्रथम वाक्य में उपमेय धर्म दूसरे वाक्य में उपमान बना दिया गया है, इसका अर्थ है, आपका धर्म अर्थ की तरह पूरा है और धर्म अर्थ की तरह पूर्ण है। इसी प्रकार जयदेव ने प्रतीपोपमा के लिए उपमान को अप्रसिद्ध या कल्पित नहीं स्वीकार किया है, किन्तु वे मानते है कि जब उपमान रूपी किसी भी पदार्थ को उपमेय बना दिया जाय तो प्रतिपोपमा अलंकार होता है।

जैसे-' इन्दुर्मुखमिवेत्यादौ स्यात्प्रतीपोपमा तदा'।। (चन्द्रालोक, पंचम मयूख।।14।।)

अर्थात् इस उदाहरण में मुख को उपमानत्व प्रदान है तथा चन्द्रमा को उपमेत्व प्रदान है इसलिए यहाँ प्रतीपोपामा होती है। जहाँ उपमान पद के साथ लीला आदि पद प्रयुक्त हो, वहाँ ललितोपमा अलंकार होता है।

जैसे-उपमाने तु लीलादिपदाढ़ये ललितोपमा।

त्वन्नेत्रयुगलं धत्ते लीलां नीलाम्बुजन्मनोः।।(चन्द्रालोक, पंचम मयुख।।15।।)

अर्थात्-कामिनी के दोनों नेत्र नीलकमल की शोभा धारण करते है। यहाँ उपमान पद नील कमल के साथ लीला पद का भी प्रयोग किया गया। है। इसका तात्पर्य है कि कामिनी के नेत्र लीला शोभा के समान सुन्दर है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है, कि जिसकी शोभा (लीला) उपमेय धारण करता है वह उपमान होता है और उपमान लीला (लीला) उपमेय धारण करता हैं। वह उपमान होता है और उपमान लीला (शोभा) का उपमेय में आरोप होता है, जिससे लीला में उपमेय प्रतीत होता है। स्तषकोपमा अलंकार में उपमान और उपमेय द्वन्द्व की समानता वर्णित होती है। यथा-भौंरा जैसे कमल का आश्रय लेता है, वैसे ही मैं भगवान् विष्णु के चरणों का आश्रय लेता हूँ। यहाँ अहं पद का उपमान भौरा है और चरण का उपमान कमल है।

जैसे- अनेकस्यार्थयुग्मस्य सादृश्यं स्तबकोपमा।

श्रितोडस्मि चरणों विष्णोर्भृङ्गस्तामरसं यथा।। (चन्द्रालो, पंचम, मयूख ।।16।।)

जब उपमान एवं उपमेय दोनों ही वर्ण्य हों तब सम्पूर्णोपमा लंकार होता हैं—

जैसे- सयात्सम्पूर्णोपमा यत्र द्वयोरपि विद्येयत।

पद्मानीव विनिद्राणि नेत्राण्यासन्नहर्मुखे।।

यथा-प्रातःकाल में कमलों के समान मनुष्यों के नेत्र भी निद्रारहित हो गये।

अभ्यास प्रश्न-1

1. निम्नलिखित प्रश्नों के एक शब्द में उत्तर दें।

क. उपमा अलंकार के कितने भेद है ?

ख. उपमान और उपमेय द्वन्द की समानता किस अलंकार में होती है।

ग. उपमान उपमेय से श्रेष्ठ होता है।

3.3.2 रूपक अलंकार: लक्षण एवं उदाहरण

चन्द्रालोक के पंचम ममुख में जयदेव ने रूपक अलंकार का लक्षण उदाहरण इस प्रकार किया है-

यत्रोपमानचित्रेण सर्वथाप्युपरज्यते।

उपमेयमयी भित्तिस्तत्र रूपकमिष्यते।।(चन्द्रालोक , पंचम, मयूख ।।18।।)

जहाँ उपमान उपमेय में एकता प्रतीत हो, अर्थात् उपमान रूपी चित्र में उपमेय रूपी चित्र मिला हुआ रहे वहाँ रूपक अलंकार होता है। उपमान के द्वारा उपमेय को आत्मसात कर लिये जाने पर रूपक अलंकार होता है। उदाहरणार्थ- उपमेय शब्द का उपमान भित्ति है और उपमेय भी भित्ति है। इस तरह दोनों में भेद नहीं हैं। (भित्ति दीवार) ने उपमेय की सत्ता अपने मे समाहित कर लिया है। इसी तरह न 'चन्द्रमुख देखों' में मुख उपमेय और चन्द्र उपमान हैं और इसका अर्भ होता है, मुखही चन्द्र हैं उसे देखों यहाँ चन्द्रमा (उपमान) द्वारा मुख (उपमेय) को समाहित कर लिया गया है। **'रूप्यतीति रूपक'** यह रूपक का व्यत्पत्ति अर्थ है, जिसका तात्पर्य उपमा और उपमेय में अभेद (भेद रहित) का आरोप कर उन्हें एक करने वाला रूपक होता है। कुवलयानन्द के व्याख्याकार आषाधर भट्ट ने रूपक शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है कि- **'रूपवत् करोति रूप्यति वा रूपको लक्षणाविशेषः सोडस्मिन्नस्तीति रूपकमलडक्र्कारः'** अर्थात् जिस अलंकार द्वारा उपमेय और उपमा समानरूप् वाला बना दिया जाता है वह रूपक होता है।चन्द्रालोककार ने रूपक के तीन भेद किए है। रूपक के तीन भेद किए हैं। रूपक अलंकार के मूल लक्षण के पश्चात् आचार्य जयदेव ने इनके भेदों के वर्णन भी किए है। जिसमें प्रथम सोपाधिरूपक द्वितीय सादृश्यरूपक, तथा आभास रूपकों के लक्षण उदाहरण सहित विवेचन भी किएँ है। सोपाधिरूपक- इसका लक्षण करते हुए आचार्य जयदेव ने कहा है-

समान धर्मयुक्साध्यारोपात्सोपाधियपकम्।

उत्सिक्त-क्षितिभृतलक्ष्य-पक्षच्छेदपुरन्दरः।। (चन्द्रालो, पंचम, मयुख ।।19।।)

अर्थात्-जहाँ साधारण धर्म के सम्बध से प्रकृति आरोप सिद्ध हो वहाँ सोपाधि रूपक होता है। जैसे- यह राजा ऊँचे-ऊँचे पर्वत रूपी राजाओं के सहायकों के उच्छेदन में समर्थ है। अर्थात् जिस प्रकारइन्द्रपर्वतों के पक्ष काटने में समर्थ है वैसे ही यह राजा भी मदोन्मत्त शत्रुभूत राजाओं के सहायकों के उच्छेदन में समर्थ है।

सादृश्यरूपक- सादृश्य रूपक का लक्षण है-

पृथवकथितसादृश्यं दृश्यं सादृश्यरूपकम्।

उल्लसत्पं चशाखस्ते राजते भुजभूरूहः।। (चन्द्रालो, पं चम, मयू ख ।।20।।)

अर्थात्-जिस अलंकार में उपमान तथा उपमेय दोनों का सादृश्य भिन्न-भिन्न पदों से कहा जाय वहाँ सादृश्ययपक होता है। जैसे-पाँच अँगुलिरूप् शाखाओं से युक्त आपका यह हाथ रूपी वृक्ष शोभा दे रहा है। वृक्ष और शाखा का सादृश्य अलग-अलग पदों से बतलाया गया है। अतः यहाँ सादृश्य रूपक है।

आभास रूपक- आभास रूपक का लक्षण है-

स्यादड्गयष्टिरित्येवंविधमासरूपकम्।

अड्गयष्टिधनुर्वल्लीत्यादि रूपितरूपकम्।। (चन्द्रालो, पंचम, मयुख ।।21।।)

अर्थात्-यदि शरीर में छड़ी का आरोप किया जाय तो आभास रूपक होता है। यहाँ केवल शरीर की लम्बाई को देखकर उसमें लम्बायमान छड़ी का आरोप किया गया है। इसलिए यहाँ रूपक केवल आभास मात्र है।

आचार्य मम्मट ने काव्य प्रकाश में- **'तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययों'** अर्थात् उपमेय और उपमान का जो अभेद-अभेदारोप अथवा काल्पनिक अभेद है उसे रूपक अलंकार कहा जाता है। ऐसा बताते हुए रूपक का लक्षण किया है तथा उन्होने इसके छः भेद बताये है।

3.3.3 उत्प्रेक्षा अलंकार: लक्षण एवं उदाहरण

उत्प्रेक्षा अलंकार का लक्षणोदाहरण करते हुए जयदेव ने चन्द्रालोक में कहा है कि -

उत्प्रेक्षोन्नीयते यत्र हेत्वादिर्निह्नुति विना।

त्वन्मुखश्रीकृते नूनं पद्मैवैरायते शशी।। (चन्द्रालोक ।।5/29।।)

अर्थात् बिना निषेध के ही जहाँ कारण, फल और वस्तु (स्वरूप) में अतिशय संदेह किया जाय वहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। जैसे-मुख की शोभा प्राप्त करने के लिए चन्द्रमा कमलों से शत्रृता कर रहा है-त्वन्मुखश्रीकृते नूनं पद्मैवैरायते शशी।। प्रस्तुत उदाहरण में मुख के शोभा की प्राप्ति के लिए चन्द्रमा द्वारा कमलों से वैर करना फल तथा स्वरूप में अतिशय संशय है, अतः यहाँ उत्प्रेक्षा है।

शब्दार्थ-यत्र -जहाँ पर, निह्नुतिं-निषेध बिना-रहित, हेत्वादि-कारण फल स्वरूप आदि, उन्नीयते-उत्कटैक-(कोटिक अत्यन्त संदेह)। उपर्युक्त उत्प्रेक्षा वर्णन में कुछ विशेष बातें इसके निर्णय हेतु अथवा स्वभाव ज्ञान हेतु उध्येयता के समक्ष उपस्थित होती है, जिनका उल्लेख प्रसंगतः अनिवार्य प्रतीत होता है। वृत्तिभाग के अवलोकन में उत्प्रेक्षा तीन प्रकार की बताई जाती है—

'सच हेतु फल स्वरूपभेदात् त्रिविधा। अत्र चन्दपद्योः विरोधः स्वाभाविकः न मुखकान्ति लिप्साहेतुकः तथापि तेद्धेतुकत्वेन संभावनात् हेतुत्प्रेक्षा, अनयोः विरोघेडफलसयापि कान्तावदनकान्तिप्राप्तेः फलत्वेनोत्प्रेक्षणात् फलोत्प्रेक्षा, एवं वस्तुतो बैरकर्तर्यपि शशिनि पद्मसंकोचच्वनिमित्तेन वैरकर्तृतादात्म्मोत्प्रेक्षणात् स्वरूपोत्प्रेक्षा।

अर्थात्- यहाँ चन्द्रमा और कमल का वैर स्वतः सिद्ध रहते हुए भी पद्मगत कान्तमुख की शोभा प्राप्ति हेतु चन्द्रमा के वैर (शत्रुता) का फल न रहते हुए भी उसे फल कहना फलोत्प्रेक्षा है। चन्द्रमा के उदित होने पर कमल अपने आप ही संकुचित हो जाते है, उसी से चन्द्रमा को वैर (शत्रुता) कर्ता रूप में प्रतिपादित है। इसलिए वस्तूत्प्रेखा भी है। यहाँ एक बात विशेष रूप से कहने योग्य है कि आचार्य दण्डी अपने ग्रंथ काव्यादर्श में उत्प्रेक्षा के व्यंजक शब्दों को बताया है जो इस प्रकार है-

मन्ये, शड्के ध्रवं प्रायो नूनमित्येवमादिभिः।

उत्प्रेक्षा व्यज्यते शब्दैरिव शब्दोडतादृशः।। (काव्यादर्श ।।2/234।।)

अर्थात्— मन्ये शड्के, ध्रुवं, प्रायः नूनम् और इव शब्द उत्प्रेक्षा के व्यंजक है। उक्त उदाहरण में नूनम् शब्द आने से अगूदा (वाच्या) उत्प्रेक्षा है, उसे हटा देने से गूढ़ा हो जायेगी।

उत्प्रेक्षा का अर्थ उन्नयन (ऊपर ले जाना) है, जिसका स्वाभाविक अर्थ सम्भावना है। आचार्य मम्मट ने अपने काव्यप्रकाश में जो परिभाषा सम्भावना की दो वह अधिक स्पष्ट है। उनके अनुसार उपमेय में उपमान की सम्भावना की जाने पर उत्प्रेक्षा होती है। और चन्द्रालोक कार के अनुसार हेतु, फल या स्वरूप की सम्भावना होने पर उत्प्रेक्षा होती है। ऊपर बताए गये उदाहरण में हेतु की सम्भावना की गई है।

हेतूत्प्रेक्षा-चन्द्रमा के निकलने पर कमलों का विकास संकोच (सिकुड़ना) के रूप में बदल जाता है जिससे चन्द्रमा और कमल का वैर सिद्ध है, कान्ति की प्राप्ति के लिए यह वैर होगा अतः यहाँ सम्भावना किए जाने से हेतूत्प्रेक्षा है।

फलोत्प्रेक्षा— ऊपर कहे गये उदाहरण से यह भाव लिया जा सकता है कि चन्द्रमा ने कमलों से कलह करके उनमें उपस्थित कान्तामुख कान्ति (चमक) छीन लिया है। अतः इस स्थिति में कान्ति प्राप्ति वैर का फल होगा और सम्भावना करने पर फलोत्प्रेक्षा हो जायेगी।

वस्तूत्प्रेक्षा— चन्द्रमा के आते ही स्वाभाविक रूप् से कमल संकुचित (सिकुड़) हो जाता है। इस वस्तु (बात) के आधार पर चन्द्रमा और कमल का वैर दिखलाया गया है। अतः वस्तूत्प्रेक्षा का उदाहरण है। चन्द्रालोककार ने उपर्युक्त भेद के अतिरिक्त गूढ़ोत्प्रेक्षा का लक्षण उदाहरण दिया है-

इवादिकपदाभावे गूढ़ोत्प्रेक्षा प्रचक्षते।

त्वत्कीर्तिर्विभ्रमभ्रानता विवेश स्वर्गनिम्नगाम्।। (चन्द्रालोक ।।5/29।।)

अर्थात्— जिस अलंकार में वाचक शब्दों, इव, मन्ये, शड्के ध्रुवं, प्रायः और नूनं आदि पदो के रहने पर भी हेतु, फल, स्वरूपगत संभावना और नूनं आदि पदो के रहने पर भी हेतु, फल स्वरूपगत संभावना की जाय वह गूढ़ोत्प्रेक्षा अलंकार होता है। उदाहरणार्थ यहाँ देखा जा सकता है-त्वत्कीर्तिर्विभ्रमभ्रान्ता विवेश स्वर्गनिम्नगाम्।। अर्थात् हे राजन! आपकी कीर्ति समसत भुवन में भ्रमण करने से थककर (श्रान्त) स्वर्ग गंगा में स्नान करने के उद्देश्य से प्रविष्ट हुयी (प्रवेश किया) अर्थात् उापकी कीर्ति स्वर्ग लोक तक पहुॅच गयी। स्पष्ट है, जैसे अत्यन्त भ्रमण से थका हुआ प्राणी अपनी थकावट को दूर करने के लिए नदी का आश्रय (शरण) लेता है वैसे ही समस्त लोकों के भ्रमण से थकी हुयी आपकी कीर्ति मानो अपनी थकावट दूर करने के लिए आकाश गंगा में प्रवेश किया। यहाँ गूढ़ोत्प्रेक्षा है।

'उत्प्रेक्षा वह अलंकार है जिसे अप्रकृत (उपमान) के रूप मे प्रकृति (उपमेय) की सम्भवना कहा करते है।'' **(साहित्यदर्पण 10/40-41)** आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकश उत्प्रेक्षा का लक्षण करते हुए लिखा हे- **संभावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेनयत् (काव्यप्रकाश 10/127)** अर्थात् उत्प्रेक्षा उस अलंकार को कहते हैं जिसमें प्रकृत (उपमेय) की उसके समान अप्रकृत (उपमान) के साथ तादात्म्य (परस्पर) सम्भावना की जाती है।

जैसे-लिम्पतीय नमोडड्गानि वर्षतीयवां जनं नभः। असत्पुरूषेवेव दृष्टि र्विफलतां गता।।

अर्थात् - ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे अंधेरा अंग-अंग मे लेप लगा रहा हो, आकाश काजल बरसा रहा हो और आँखें दुष्ट सेवा की भांति व्यर्थ हो गयी हों। यहां पर उपमेय (अंधकार) के प्रसार की उपमान (लेपन, काजल, वर्षण) आदि के साथ एकरूपता की संभावना की गयी है।

अभ्यास प्रश्न -2

1. निम्नलिखित में से सही उत्तर चुनिए।

क. चन्द्रालोक में रूपक के भेद है-

क- तीन ख- चार ग- दो घ- पाँच

ख. जिस अलंकार में वाचक शब्द न रहने पर भी फल, हेतु, स्वरूप की सम्भावना की जाती है, वहाँ होता है?

क हेतुत्प्रेक्षा ख- ; गूढ़ोत्प्रेक्षा ग- फलोत्प्रेक्षा घ- वस्तूत्प्रेक्षा

2. निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक वाक्य में दीजिए

क. वस्तूत्प्रेक्षा किसे कहते है?

ख. आशाघर भट्ट ने रूपक शब्द की व्युत्पत्ति किस प्रकार की है?

ग. आभास रूपक लक्षण बताइए।

घ. **'त्वत्कीर्तिर्विभ्रमभ्रान्ता विवेश स्वर्ग निम्नगाम्'** इसमें कौन सा अलंकार है? उसका लक्षण लिखिए।

3. निम्नलिखित वाकयों में सत्य-असत्य का निर्धारण करें।

क. जहाँ साधारण धर्म सम्बंध से प्रकृत आरोप सिद्ध हो वहाँ सोपाधि रूपक होता है।

ख. अपमान के द्वारा उपमये को आत्मसात किए जाने पर गूढ़ोत्प्रेक्षा होती है।

ग. मन्ये, शंके, ध्रुवं, प्रायः आदि उत्प्रेक्षा के व्यंजक शब्द हैं।

घ. हेतु, फल, और स्वरूप (वस्तु) की सम्भावना होने पर सादृश्य रूपक होता है।

3.3.4 विशेषोक्ति अलंकारः लक्षण एवं उदाहरण

सामान्यतः समस्त जगत् में सबको पूर्व से ही ज्ञात है कि बिना कारण के कभी कार्य नहीं होते दार्शनिकों , चिन्तकों आदि सबने कार्य-कारण सम्बंध परखा है तथा सांख्य दर्शन के अन्तर्गत इसकी विशद विवेचना भी की गयी है, आप भी जानते है कि, लोक व्यवहार में भी कार्य और कारण की प्रधानता व्यवस्थित है। किन्तु हमारे साहित्यिकों ने एक तरफ जहाँ पर किसी भी कारण के अभाव में कार्य की उत्पत्ति का होना असम्भव है उसे भी अपनी प्रतिभा

के द्वारा विना कारण के कार्य की उत्पत्ति होना बताया है, और अनेक कारणों के होते हुए भी किसी कार्य का न होना बताया तथा दोनों स्थितियाँ में विभावना और विशेषोक्ति अलंकार की सृष्टि की है। आचार्य जयदेव भी इस संकल्पना से अछूते नहीं हैं, उन्होने समस्त कारणों के उपस्थित रहते हुए भी किसी भी कार्य के उत्पन्न न होने की स्थिति विशेषोक्ति अलंकार का लक्षण और उदाहरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है-

लक्षण-विशेषोक्तिरनुत्पत्ति कार्यस्य सति कारणे।

नमनतमापि धीमन्तं न लंघयति कश्चन।। (चन्द्रालोक ।।5/78।।)

अर्थात-जहाँ पर कारण के विद्यमान रहते हुए भी कार्य उत्पन्न ने हो वहाँ पर विशेषोक्ति नामक अलंकार होता है। उदाहरण के लिए-''नमन्तमपि धीमन्तं च लंघयति कश्चन''

अर्थात् बुद्धिमान के झुक जाने पर भी उन्हे कोई लाँघ नही सकता। प्रस्तुत उदाहरण में झुकना कारण रूप् में विद्यमान है, फिर भी उल्लंघन (लाँघना) आदि कारण उत्पन्न नहीं हो रहा है। यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि सामान्य व्यवहार में सबको ज्ञात है कि कारण रहेंगे तो कार्य उत्पन्न होगा ही किन्तु कारणों के उपस्थित रहने पर भी कार्य की उत्पत्ति का ख्यापन (प्रकटीकरण) न करना हो विशेषोक्ति अलंकार का स्वभाव है। विद्वान निश्चित रूप से बड़ा होता है, उसके झूकने का तात्पर्य उसकी नम्रता से है तो बुद्धिमत्ता और विनम्रता दोनों की ऊँचाइयों का पार करना किसी के लिए भी असम्भव है। इसीलिए यहाँ पर लंघित (लाँघने) होने के सभी कारण हैं किन्तु कोई कार्य नहीं है।

शब्दार्थ-कारणे-निमित्त या हेतु सति-विघमानता कार्यस्य-कार्य के, अनुत्पत्तिः- उद्भव का अभाव, विशेषोक्ति-विशेष अर्थात् कि अनुत्पत्ति की उक्ति को विशेषोक्ति कहते हैं। उक्तिः-कथन, नमन्तं-नत मस्तक, नलंघयति-नहीं लाँघ सकता। अत्याधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए कहने योग्य है कि स्वाभाविक नियम है, कि जब कारण रहते है तब कार्य होता है। कवि अपनी प्रतिक्षा से कार्य का न होना संभव कर दिखाता है। उपर्युक्त उदाहरण में बुद्धिमान का झूकना कारण है और नाते लाँघने का कार्य सम्पन्न होना चाहिए किन्तु उसे कोई लाँघ नहीं सकता, अतः यहाँ कारण के होते हुए भी कार्य का अभाव है। स्पष्ट है कि सज्जन (बुद्धिमान) स्वभाव से नम्र होते है, शरीर से नहीं अतः उनके नम्र होने से उनकी बुद्धिमात्ता को नहीं लाँघा जा सकता है अर्थात् उनके बुद्धि-कौशल को नहीं पार किया जा सकता है। संस्कृत लक्षणकारों ने अपने लक्षण ग्रंथों में अलंकार वर्णन करते हुए कहीं भी इन तथ्यों को नकारा नहीं है। यदि विशेषोक्ति अलंकार को और विस्तार से समझना हो तो उदाहरण स्वरूप् कतिपय प्रसिद्ध आचार्यों के लक्षणों का अध्ययन किया जा सकता है- इसी सन्दर्भ में आचार्य मम्मट ने विशेषोकित का लक्षण अर्थात्-कारणों के होने पर जहाँ विशेषोक्ति अलंकार होता है।

जैसे-निद्रानिवृत्तावुदिते द्युरत्ने सखीजने द्वारापदं परापे।

श्लथीकुताश्लेषरसे भुजड़ेग चचाल नालिड्गनतोड्गनतोड्गना सा।।

इस उदाहरण में यह बताया गया कि-नायिका नींद के टूटने पर भी, भगवान् सूर्य के उदित होने पर भी, सखियाँ के शयन-कक्ष के द्वार पर भी, और आलिड्गन के आनंद में अपने प्रेमी के ढ़ीले पड़ जाने पर भी, वह आलिड्गन करना नहीं छोड पायी। अर्थात् यहाँ आलिड्गन परितयाग के सभी कारण नींद टुटना, सूर्योदय, सखियों का शयन-कक्ष के बाहर उपस्थित होने पर कार्य रूप नायिका आलिड्गन से अलग नही हो सकी। अतः यहां विशोषोक्ति अलंकार है। इन्होने विशेषोक्ति के तीन प्रकार भी बताये है- 1.अनुक्तनिमित्ता विशेषोक्ति 2.उक्तनिमित्ताविशेषोक्ति 3.अचिन्त्यनिमित्ता विशेषोक्ति। इस प्रकार आर्चाय विश्वनाथ ने भी विशेषोक्ति का लक्षण और उदाहरण करते हुए कहा है कि-सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिस्तथा द्विधा। **(साहित्यदर्पण, 10 परिच्छेद, 35)** अर्थात जहाँ कारण रूप सारे तथ्य विद्यमान हो फिर भी कार्य की उत्पत्ति न हो वहाँ में विशेषोक्ति अलंकार होता है। यह दो प्रकार का होता है-(1) उक्त निमित्ता विशेषोक्ति (2) अनुक्तनिमित्ता विशेषोक्ति ।

अन्तर-लक्षण और उदहरण के क्रम में व्याख्यात्मक रूप से उपमा, रूपक उत्प्रेक्षा, और विशेषोक्ति अलंकारों के उध्ययन से आपने उनके स्वभावों को अवश्यक जान लिया होगा, किन्तु समस्त अलंकार एक जैसे नहीं होते यद्पि अर्थालंकार में उपमेय एवं उपमानों के ही वर्णन दिए जाते है किन्तु इनकी प्रयोग धर्मिता से तथ्य परिवर्तित होकर विभिन्न अलंकारों का स्वरूप धारण कर लेते हैं। अब आप इन अलंकारों में मूलभूत अन्तर क्या होते हैं इसका अध्ययन करेंगे।

उपमा एवं रूपक— उपमेय तथा उपमान रूपक में भी होते और उपमा में भी किन्तु उपमा अलंकार में उपमेय तथा उपमान दोनों में सादृश्य अथवा साधर्म्य वर्णित होता है। जिसके साधारण धर्म और वाचक शब्द होते हैं इसकी उपेक्षा रूपक अलंकार में उपमेय का उपमान ढ़क लेता है अर्थात् उपमान के द्वारा उपमेय को आत्मसात् कर लिया जाता है। उपमा में उपमेय तथा उपमान का भेद सहित वर्णन होता है किन्तु रूपक में यह वर्णन अभेद होता है। यद्यपि यह अभेद वास्तविक नहीं होता।

उपमा एवं उत्प्रेक्षा— उपमा और उत्प्रेक्षा दोनो का वाचक शब्द इव है। उपमा में समानता का अर्थ निकलता है, किन्तु उत्प्रेक्षा में मानों का अर्थ निकलता है। उपमा सादृश्यमूलक भेदाभेद प्रधान अलंकार है, तथा उत्प्रेक्षा सादृश्यमूलक में अध्यवसाय मूलक अभेद प्रधान अलंकार है। इनका स्वभागत अंतर निम्न प्रकार है-

1. उपमा का प्राण सादृश्य (समानता) है, उत्प्रेक्षा का प्राण सम्भावना है।
2. उत्प्रक्षा में मन्ये, शंके, प्रायों, नून इत्यादि का वाचक शब्द की रूप में प्रयोग होता है, किन्तु उपमा में इनका प्रयोग नहीं होता।
3. उपमा में इव का प्रयोग संज्ञा के साथ होता जबकि उत्प्रेक्षा में इव का प्रयोग क्रिया पद के साथ होता हैं
4. उपमामें उपमान लोक प्रसिद्ध होता है और उत्प्रेक्षा में उपमान कवि कल्पित होता है।

इसके बाद की इकाई में विभावना अलंकार का लक्षण एवं उदाहरण आपके अध्ययन हेतु प्रसतुत होगा वही आप विशेषोक्ति एवं विभावना के स्पष्ट अंतर का बोध कर सकेंगे।

अभ्यास प्रश्न-3

1.निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द में दो ।

क. सभी कारण उपस्थित रहने पर कार्य की उत्पत्ति होना अलंकार है-

ख. आचार्य मम्मट ने विशेषोक्ति के कितने प्रकार माने है?

ग. आर्चय जयदेव ने विशेषोक्ति का क्या लक्षण दिया है?

घ. साहित्य दर्पण में विशेषोक्ति के कितने भेद है?

2. निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति करें-

(क) शब्दालंकार में ..... अपरिवर्तनीय होते हैं ।

(ख) अर्थालंकार में अलंकार ..... पर आश्रित होता है ।

(ग) उपमा ..... है।

(घ) जिसके नहीं रहने पर जो न रहे वह ..... है ।

3.3.5 अपह्नुति अलंकारः लक्षण एवं उदाहरण

अपह्नुति का अर्थ है- छिपाना अतः जिस कृति में असत्य बात को स्थापित करने के लिए सत्य बातका निषेध किया जाए वहाँ अपह्नुति अलंकार होता है। यहाँ प्रस्तुत का निषेध कर अप्रस्तुत की प्रतिष्ठा की जाती हैं

अतथ्यमारोपथितुं तथ्यापास्ति अपह्नुति ।
नामं सुधांशुः किं तर्हि व्योमगङ्गा सरोरूडम् ।।

ऊपर के उदाहरण के हृदयंगम करने पर यह स्पष्ट होता है कि यहाँ का गोवन करके असत्य बात को स्थापित किया गया हे। श्लोक के उत्तरार्द्ध का अर्थ है- 'यह सुधांशु नहीं है। तो फिर कौन है?' यहाँ आकाश गंगा में खिला हुआ कमल है।यहाँ सत्य वस्तु चन्द्रमा में असत्य वस्तु आकाश गंगा के कमल का आरोप करने के लिए चन्द्रमा का ही निषेध किया गया हे। इसलिए यहाँ अपह्नुति अलंकार हुआ। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि अपह्नुति में सत्य वस्तु का निषेध कवि का कल्पना द्वारा होता है। अर्थात् यह कविप्रसूत है न कि वास्तविकअपह्नुति से मिलता जुलता अलंकारव्याजोक्ति' है। व्याजोक्ति में उपमेय का नाम लिबिना उसे छिपाने के लिएउपमान का कथन किया जाता हैजबकि अपह्नुति में उपमेय का नामलेकर उसका निषेध किया जाता है।

पर्यस्तापह्नुति—

पर्यस्तापह्नुति तिर्यग धर्मभागं निषेध्यते।

नामं सुधांशु: किं तार्हि सुधांशु: प्रेयसीमुखम्।।

जहाँ किसी वस्तु के धर्ममात्र का निषेध कर उस धर्म का आरोप किसी अन्या स्वतु पर कर दिया जाए वहाँ पर्यस्तापह्नुति नामक अलंकार होता है। यहाँ सम्पूर्ण वस्तु का निषेध न कर उसके धर्म (गुण) मात्र का निषेध होता है। श्लोक के उत्त राद्ध में इसका उदाहरण देते हुए कहते हैं- ''यह सुधांशु नहीं है। तो फिर सुधांशु (चन्द्रमा) है कौन? उत्तर में कहा कि प्रियतमा का मुख ही सुधांशु है।''यहाँ वास्तविक चन्द्रमा में चन्द्रत्व (धर्म) का निषेधकर उसका प्रियतमा के मुख में आरोप किया गया है। जिस गुण के आधार पर किसी वस्तु के अस्तित्व का बोध जुडा़ हो वह उसका 'धर्म' है। धर्म जिसमें पया जाता है उसे धर्मी कहते है। मनुष्यत्व और मनुष्य क्रमशः धर्म एवं धर्मी है। उपर्युक्त उदाहरण में सुधांशु के सुपांशुत्व (चन्द्रत्व) का प्रत्यक्ष दृष्टिकोण होर रहे चन्द्रमा से निषेध कर उस सुधांशुत्व का अन्यव 'प्रियतमा मुख' में आरोप कर दिया गया है। पर्यस्त का अर्थ ही है- 'हटाकर विपरीत में आरोपित करना'। इसलिए पर्यस्तापह्नुति में धर्मी से उसके धर्म को हटाकर विपरीत उपमान में स्थापित कर दिया जाता है। आचार्य मम्मह एवं पण्डितराज जगन्नाथ इसे अपह्नुति का भेद न मानकर रूपक ही मानते हैं।

भ्रान्तापह्नुति—

भ्रान्तापह्नुति रत्यस्य शटया तथ्यनिर्णये।

शरीरं तव सोत्कम्पं ज्वर: किं न सरिव स्मर:।।

एक सत्य वस्तु पर किसी अन्य वस्तु के भ्रम की स्थिति उत्पन्न होने पर वास्तविक तथ्य का निर्णय ही भ्रान्तापह्नुति अलंकार कहलाता है। जैसे नामिका का काँपता हुआ शरीर देखकर उसकी सखी उसे पूछती है कि क्या तुझे ज्वर है? नामिका उत्तर देती है कि नहीं नहीं! यह ज्वर नहीं अपितु काम है। (कामजन्य कम्पन है)

यहाँ कामज्वर रूप सत्यभूत पदार्थ में शीतज्वर रूप अपर पदार्थ का संशय करने पर कामज्वर रूपी वास्तविक वुस्तु का निर्णय किया गया है। ज्वर का संदेह दूर करने के लिए नामिका सखी से वस्तुस्थिति बता देती है। फलतः भ्रम का निवारण हो जाता है कि ज्वर जन्य कम्प नहीं है अपितु कामजन्य कम्प है।अपह्नुति में सत्य छिपाकर असत्य की स्थापनाकी जाती है किन्तु भ्रान्तापह्नुति में सत्य का उद्घाटन कर असत्य की शंका दूर की जाती है।

छेकापह्नुति—

छेकापह्नुति रन्यस्य शटया तथ्यनिुवे।

प्रजल्पन् मत्पदे लग्न: कान्त्र: किं न हि नूपुर:।।

अपने रहस्य की बात किसी अन्य के समक्ष न हो जाए इस आशंका से जहाँ सत्य को छिपा लिया जाता है वहाँ छेकापह्नुति अलंकार होता है। उपर्युक्त श्लोक की द्वितीय पंक्ति में कोई नामिका अपनी अन्त्ररंग् सखी से कहती है कि रात में खुशामद की बातें करता हुआ वह मेरे चरणों पर गिर पड़ा। उसकी इस बात को किसी अन्य सखी ने सुन लिया। वह पूछने लगी कि क्या वह तुम्हारा पनि था जो चरणों पर गिरा। नायिका ने चतुरता से रहस्य छिपाते हुए उत्तर दिया कि नहीं नहीं वह तो नूपुर था। नूपुर पैरों में ही पहने जाते हैं और वे 'ज्वलन' (पति अर्थ में खुशामद

करना, नूपुर अर्थ में 'बजना') भी करते हैं। छेक का अर्थ है चतुर ! यहाँ चतुर नायिका ने बड़े कोशल से तथ्य का गोपन कर अतथ्य की स्थापना की है। अप्पय दीक्षित ने कुवलयानन्द इसकी परिभाषा देते हुए कहा है-

'कस्यचित् किंचित् प्रति रहस्योक्तौ अन्येन श्रुतायाम्
उक्तेस्तात्पर्यान्तरवर्णनेन तथ्यनिुवे छेकापह्नु।

अर्थात् किसी से कही गई किसी की गुप्त बात दूसरे के द्वारा सुन लिए जाने पर उसे दूसरे अर्थ में नियोजित करते हुए जहाँ सत्य का गोपन किया जाता है वहाँ छेकापह्नुति होती है जैसा कि ऊपर के उदाहरण में आपने देखा कि नायिका ने प्रत्युत्पन्नमतित्व का परिचय देते हुए पति का सम्मान सुरक्षित रखने के लिए नूपुर की बात गढ़ ली।

कैतवापह्नुति—

कैतवापह्नुति व्यक्ते व्याजाद्यैर्निुवे पदैः।
निर्यान्त्रि स्मरनाराचाः कान्त्रादृक्पातकैतवात् ।।

जहाँ कैतव, छल, व्याज आदि पदों से यथार्थ वस्तु के निषेध की व्य४जना की जाती है वहाँ कैतवापह्नुति नामक अलंकार होता है। जैसे कामिनी के कटाक्ष के बहाने कामदेव अपने बाणों को बरसा रहा है। यहाँ 'कैतव' पद के द्वारा कान्ता के कटाक्षों का गोपन किया जाता है इसलिए कैतवापह्नुति है। इस अलंकार में कैतव छल आदि पदों का प्रयोग आवश्यक है। यहाँ उपमेय कटाक्ष को कैतव पद से छिपाकर उपमान बाण को प्रकट किया गया है अर्थात् प्रस्तुत 'कान्तादृक्पात' का निषेध कर अप्रस्तुत 'स्मरनराचाः' की स्थापना की गई है। अपह्नुति के सभी भेदों में किसी न किसी प्रकार प्रस्तुत का निषेध करते हुए अप्रस्तुत को स्थापित किया जाता है। अप्रस्तुत की स्थापना रूपक में भी होती है किन्तु वहाँ प्रस्तुत का निषेध नहीं होता। अपह्नुति में साहश्य के साथ सादृश्येतर' सम्बनध भी स्वीकार्य हैं किन्तु प्रस्तुत का निषेध आवश्यक तत्व है।

अभ्यास प्रश्न -4

1- निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें-

क-सत्य वस्तु का निषेध कर असत्य का आरोप किस अलंटार में किया जाता है।

ख-अपह्नुति से साम्य रखने वाले अलंकार का नाम बताएं।

ग-भ्रम की स्थिति होने पर वास्तविक तथ्य का निर्णय किस अलंकार के अन्तर्गत किया जाता है।

2-रिक्त स्थानों की पूर्ति करें-

क- कैतव का अर्थ ..... है (छल/निर्णय)

ख- प्रस्तुत का निषेध ..... अलंकार में होता है। (/ व्याजस्तुति)

ग-'शरीरं तव सोत्कम्पं ज्वरः किं न सखि स्मरः।' इस उक्ति में ..... अलंकार है। (भ्रान्तापह्नुति / पर्यस्तापह्नुति)

3.3.6 व्यतिरेक अलंकारः लक्षण एवं उदाहरण

व्यतिरेको विशेषश्चेदुपमानोपमेययोः।
शैला इवोन्नता सन्तः विन्तु प्रकृतिकोमलाः।

जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय में उत्कर्ष या न्यूवता प्रदिर्शित की जाए वहाँ व्यतिरेक नामक अलटार होता है। यहाँ लोकप्रसिद्ध से कुछ विलक्षण बात कही जाती हैं उदाहरण के लिए उपर्युक्त श्लोक देंखें-

सत्पुरूष पर्वत की तरह ऊँचे होते हैं किन्तु पर्वत की तरह कठोर न होकर कोमल स्वभाव से संपन्न होते है। यहाँ उपमान रूप पर्वत से उपमेय रूप सत्पुरूष की स्वाभाविक कोमलता अधिक बताई गई है। अतः यहाँ व्यतिरेक अलंकार हुआ। दोनों ऊँचे होने समान किन्तु सज्जन पर्वतों की अपेक्ष श्रेष्ठ हैं क्योंकि उनमें कठोरतारूप दुर्गुण के स्थान पर कोमलता रूप सद्गुण है। अतः उपमेय उपमान की अपेक्षा श्रेष्ठतर है।

किसी उपमेय की (जैसे मुख आदि) विशेषता बताने के लिए उपमान (जैसे चन्द्र आदि) से तुलना की जाती है। ऐसी स्थिति में उपमान हमेशा उपमेय की अपेक्षा उत्कृष्ठ होता है। व्यतिरेक में यही तथ्य उल्टा हो जाता है। ऊपर के उदाहरण मेंआपने देखा कि पर्वत (उपमान) की अपेक्षा सज्जन (उपमेय) श्रेष्ठ बताए गए हैं। व्यतिरेक में उपमानोपमेय की यही विलक्षणता है।

पण्डितराज जगन्नाथ के अनुसार उपमा के जितने भेद हो सकते हैं वे सभी व्यतिरेक के सन्दर्भ में भी हो सकते हैं।कहीं कहीं उपमेय में उपमान की अपेक्षा न्यूवता भी बताई जाती है। 'काव्यालंकार' में इसका उदाहरण देते हुए कहा है-

क्षीणः क्षीणोऽपि शशी भूयो भूयो विवर्धते सत्यम्।
विरम प्रसीद सुन्दति! यौवन मनिवर्तियातं तु।।

यहाँ उपमान चन्द्रमा की अपेक्षा उपमेय यौवन में न्यूवता बताई गई है। यद्यपि आचार्य मम्मह ने इसी श्लोक को उद्धत करते हुए इसका अर्थ कुछ पृथक् तरीके से किया है। उनके अनुसार यहाँ चन्द्रक्षय की अपेक्षा यौवनक्षय की अधिकता का ही वर्णन है। अतः यहाँ भी उपमेय ही विशिष्ट बताया गया है। उपमेय में न्यनता को वे व्यतिरेक का लक्षण नहीं मानते । उपमेया धिक्य में ही व्यतिरेक अलंकार की सार्थकतव्यतिरेक में साधर्क्य होता है पर श्रेष्ठतास्थापित करने के लिए उपमेय मवैधर्म्य भी दिखाया जाता है। इसकेविपरीत प्रतीप अलंकार में केवलसाधर्म्य होताहै । प्रतीप में उपमेय क समक्ष उपमान को व्यर्थ बताया जाता है जबकि व्यतिरेक में दोनोंमें अधिक भाव, न्यूनभाव यावैचिज्य दिखाया जाता है

अभयास प्रश्न - 5

1- निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें-
   - क- उमान की अपेक्षा का उत्कर्ष किस अलंकार में दिखाया जाता है।
   - ख- व्यतिरेक अलंकार का संस्कृत में एक उदाहरण दें।
   - ग- व्यतिरेक से मिलता जुलता अलंकार कौन सा है।

2- सत्य अथवा असत्य का निर्णय करें-
   - क- व्यतिरेक में उपमान का उत्कर्ष वर्णित होता है। (सत्य/ असत्य)
   - ख- व्यतिरेक अलंकार में साधर्म्य के साथ वैधर्म्य भी होता है। (सत्य/असत्य)

3.3.3 विभावना अलंकारः लक्षण एवं उदाहरण

विभावना विनाऽपि स्थात् करणं कार्यजन्म चेत्।
पश्य, लाक्षारसासिक्तं रक्तं त्वच्चरणवयम्।।

यह सर्वमान्य तथ्य है कि लोक में विना कारण के किसी कार्य की उत्पत्ति सम्भव नहीं । किन्तु काव्य में असंभव कुछ भी नहीं । काव्य कवि कल्पना प्रसूत होने के कारण अद्भुत एवं चमत्कार पूर्ण होता है।जहाँ कारण के विना ही कार्य उत्पन्न हो जाए वहाँ विभावना नामक अलंकार होता है। ऊपर की पंक्तियों में नायक नायिका से कहता है कि देखो महावर के बिना ही तेरे दोनों चरण रक्तिम वर्ण के दीख रहे हैं। महावर लगाने से ही पैर लाल रंग की दीखते तें किन्तु यहाँ बिना उसके लगे ही पैरों का लाल होना बताया गया है। इसलिए महावर रूप कारण के बिना ही पैरों का लाल हो जाना रूप काने की उत्पत्ति होन से विभावना अलंकार है।

विभावना का अर्थ है 'विभावयति' कारणान्तरं कल्पयतीति विभावना 'अर्थात् जहाँ प्रसिद्ध कारण के अतिरिक्त किसी अन्य विदग्धजन द्वारा कल्पित अप्रसिद्ध कारण की कल्पना की जाय। अथवा 'विरूद्धत्वेन **प्रसिद्धकारणाभावेऽपि कार्योत्पत्ति : यस्यां सा विभावना'** अर्थात् प्रसिद्ध कारण के अभाव में भी जहाँ कार्य की उत्पत्ति वर्णित हो वहाँ विभावना होती है । आचार्य रूद्रट ने इस अलंकार को अतिशयोक्ति के अन्तर्गत

रखा है। रूय्मक भी ऐसा ही मानते हैं। यह विरोमूलक अलंकार है जो पूर्णतः कवि की प्रतिभा एवं काव्यचातुर्य पर निर्भर है।विभावना से मिलते जुलते कई अलंकार हैं।असंगति, विशेयाक्ति, विरोध, विरोधाभास आदिइससे साम्य रखने वाले अलंकार है। असंगतिमें कारण तो प्रसिद्ध होता है किन्तु उसका कार्य अन्यत्र दीखता है। विशेषोक्ति में कारण के विरोध होते हुए भी केवल कारण कार्य भाव में विरोध होता है न कि किसी अन्य क्षेत्र में।

अभ्यास प्रश्न- 6

1- निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें-

क- कारण के विना कार्य की उत्पत्ति किस अलंकार में सम्भव होती है।

ख- लाक्षारसासिक्तं रक्तं त्वच्चरणकयम्' इन पंक्तियों में किसका अभाव है?

ग- कारण के होते हुए भी कार्य की अनुत्पत्ति किस अलंकार में होती है?

2- सत्य अथवा असत्य को चिह्नित करें'-

क- विभावना में कार्य उत्पन्न नहीं होता। (सत्य/असत्य)

ख- आचार्य रूद्रट विभावना को अतिशयोक्ति के अन्तर्गत रखते हैं। (सत्य/असत्य)

3.3.8 अतिशयोक्ति अलंकारः लक्षण एवं उदाहरण

यहाँ पर चन्द्रलोक में वर्णित अतिशयोक्ति अलंकार के विभिन्न प्रकारों का अध्ययन करने से पूर्व अतिशयोक्ति का अर्थ और तात्पर्य जान लेना आवश्यक है। **'अतिशयिता-प्रसिद्धि मतिक्रान्ता चासौ उक्तिः चेति अतिशयोक्तिः'** इस व्युत्पत्ति पर अर्थ के अनुसार प्रसिद्धि का अतिक्रमण या उल्लंघन करने वाली उक्तियों को अतिशयोक्ति कहा करते है। प्रसिद्धि का अर्थ होता सीमित। यदि यहाँ कवि प्रसिद्धि माना जाय तो दोष हो जायेगा। किन्तु व्यापक अर्थ यह है कि केवल लोक या शास्त्र की उन प्रसिद्धियाँ का उल्लंघन किया जा सकता है जो परम्परया कवियों द्वारा उल्लंघित होती चली आ रही है। ऐसी प्रसिद्धि है कि कारण-के पश्चात् ही कार्य होता है। किन्तु कहीं पर कार्य-कारण एक साथ दिखाए जाय तो उसी को आचार्य जयदेव ने उसी को अक्रमातिशयोक्ति माना है। इन्होंने कुल छः प्रकार की अतिशयोक्तियों का वर्णन किया है, जिनके क्रमिक वर्णन प्रस्तुत है-

1. अक्रमातिशयोक्ति अलंकार
2. अत्यन्तातिशयोक्ति अलंकार
3. चपलातिशयोक्ति अलंकार
4. सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार
5. भेदकातिशयोक्ति एवम्
6. रूपकातिशयोक्ति

1. अक्रमातिशयोक्ति अलंकार—

अक्रमातिशयोक्तिश्चेद् युगपत्कार्यकारणे।

आलिङ्गनित समं देव ज्यां शराश्च पराश्चते।। (चन्द्रालोक ।।5.41।।)

अर्थ- जहाँ कार्य और कारण एक ही समय एक साथ उपस्थित हों वहाँ अक्रमातिशयोक्ति होता है। उदाहरण के लिए-'**आलिङ्गन्ति समं देव ज्यां शराश्च पराश्चते।**' अर्थात् हे राजन। आपके बाण एक ही समय में ज्या (प्रत्यन्चा और पृथ्वी) का आलिङ्गन कर लेते हैं। प्रस्तुत उदाहरण में प्रत्यन्चा पर बणों का चढ़ना और शत्रुओं का भूमि पर गिरना एक ही समय में हो रहा है। यहाँ पर शत्रु मरण कार्य और बाणों प्रत्यन्चा पर चढ़ना कारण है। इस लिए इनका एक समय में होना ही अक्रमातिशयोक्ति है।

2. अत्यन्तातिशयोक्ति—

अत्यन्तातिशयोक्तिस्तत्पौर्वार्यव्यतिवमे।

अग्रे मानो गतः पश्चादनुनीता प्रियेण सा।। (चन्द्रालोका ।।5/42।।)

अर्थात्— जहाँ पर कारण के पूर्व ही कार्य का वर्णन कर दिया गया हो, वहाँ पर अत्यन्तातिशयोक्ति अलंकार होता है। इसका उदाहरण है- अग्रे मानो गतः पश्चादनुनीता प्रियेग सा अर्थात् मानिनी नायिका का मान पहले ही चला गया बाद में उसके प्रिय ने उसे मनाया। यह सर्वत्र नियम है, कि पहले कारण होता है बाद में कार्य। और यह भी नियम है, कि पहले कार्य भी होता है, बाद में कारण, किन्तु प्रस्तुत उदाहरण में प्रिय के द्वारा विनय पूर्वक मानिनी को मनाना कारण है और उसके मान का मिट जाना कार्य है। इस तरह से कार्य से पूर्व कारण का वर्णन तो उचित है। यहाँ पर इसके विपरीत वर्णन किया गया है, अतः अत्यन्तातिशयोक्ति अलंकार है।

3. चपलातिशयोक्ति--

चपलातिशयोक्तिस्तु कार्यो हेतुप्रसाक्तिजे।

यामीति प्रियपृष्टाया बलयोडभवदूर्मिका।। (चन्द्रालोका ।।5/43।।)

अर्थ जहाँ पर कारण के कथन मात्र से ही कार्य की उत्पत्ति हो वहाँ पर चपलातिशयोक्ति अलंकार होता होता है।

4. सम्बंधातिशयोक्ति-

सम्बन्धातिशयोक्तिः स्यात्तदभावेडपि तद्वचः।

पश्य सौधाग्रसंसक्तं विभाति विधुमण्डलम।। (चन्द्रालोका ।।5/44।।)

अर्थ-सम्बन्ध के अभाव में संबंध का कथन करना सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार होता है।

जैसे-पश्य सौधाग्रसंसक्तं विभाति विधुमण्डलम्।। अर्थात्- कोई किसी से कहता है कि- देखो राज प्रासाद अट्टालिका के अग्रभाग में स्थित चन्द्रमा सुशोभित हो रहा है। इस उदाहरण में अट्टालिका के अग्रभाग से चन्द्रमा का कोई सम्बन्ध न रहने पर भी उसके साथ चन्द्रमा का सम्बन्ध दिखाया गया है, अतः सम्बन्धातिशयोक्ति है।

5. भेदकातिशयोक्ति—

भेदकातिशयोक्तिष्चेदेकस्यैवान्यतोच्यते।

अहो अन्यैव लावण्यलीला बालाकुचमण्डले।। (चन्द्रालोका ।।5/45।।)

अर्थात्- जब एक पदार्थ भिन्न न हो और उसका भिन्न रूप से वर्णन किया जाय तो भेदकातिशयोक्ति होती है।

जैसे-अहो अनयैव लावण्यलीला बालाकुचमण्डले।।

6. रूपकातिशयोक्ति—

रूपकातिशयोक्तिष्चेद् रूप्यं रूपकमध्यगम्।

पश्य नीलोत्पलद्वन्दान्निः सरन्ति शिताः शराः।। (चन्द्रालोका ।।5/46।।)

अर्थात-बाला के वक्षस्थल के सौन्दर्य लीला कुछ और ही है अतः अलौकि है। इसी प्रकार- जहाँ पर रूप्य अर्थात् उपमेय रूपक अर्थात्-उपमान के मध्य में स्थित हो वहीं पर रूपकातिशयोक्ति होती है,

जैसे-**पश्य नीलोत्पल द्वन्दान्निःसरन्ति शितः शराः।।** अर्थात्-देखो! नीलकमल के जोड़े से पैने बाण निकल रहे है।

3.3.9 निदर्शना अलंकारः लक्षण एवं उदाहरण

निदर्शना अलंकार का वर्णन चन्द्रालोक में दृष्टान्त के पश्चात् किया गया है। इसका लक्षण एवं उदाहरण इस प्रकार प्रदर्शित है- **वाक्यार्थयोः सदृशयोरैक्यारोपो निदर्शना। या दातुः सौम्यता सेयं सुधांशोरकलंकता।।**

अर्थ-जिस कविता में भिन्न दो वाक्यों में समानता होने के कारण एकता का आरोप बताया जाय वहाँ निदर्शना होती है।

जैसे-या दातुः सौम्यता सेयं सुधांशोरकलंकता।।

शब्दार्थ-सदृशयोः-दो की समानता में, वाक्यार्थयोः -वाच्य, वाचक के ऐक्यारोपः-एकता का आरोप निदर्शना-निश्चित करके दिखाना दातुः -दानी की सुधांशोः -चन्द्रमा की अकलंकता-कलंक शून्यता।

व्याख्या-प्रस्तुत उदाहरण में समान वाक्यार्थ है- दानी की सौम्यता और चन्द्रमा की कलंक शून्यता। इन दोनों या और 'सेयं' के शब्दों के प्रयोग से एकता बतायी गयी है। यहाँ पर दोनो वाक्य स्वतंत्र नहीं हैं, बल्कि उद्देश्य तथा विधेय के रूप में प्रयुक्त हैं। प्रथम वाक्य उपमेय है द्वितीय वाक्य उपमान है। ये दोनों एक दूसरे के आश्रय में हैं। यहाँ एक बात विशेष विचारणीय है कि मम्मट ने 'नि' से निश्चय तथा 'दर्शन' से सादृश्य प्रकटन अर्थ ग्रहण करते हुए निदर्शना माना है। शाब्दिक अभिन्नता के प्रयोग के नाते पण्डित राज जगन्नाथ इसे रूपक मानते हैं।

रूपक और निदर्शना का भेद यह है कि रूपक में उपमेय और एक रूप प्रयुक्त होते हैं जबकि निदर्शना में पृथक् सहायता लेकर एकता का आरोप किया जाता है। रूपक में एक ही वाक्य होता है, निदर्शना में दो वाक्य होते है, तथा दोनों परस्पर आश्रित भी रहते हैं। आचार्य जयदेव के इस निदर्शना वर्णन को और विस्तार से जानने के लिए प्रसिद्ध लक्षणकार आचार्य मम्मट वर्णित निदर्शना अलंकार का यहाँ स्मरण करना यहाँ समीचीन लगता है। उन्होंने निदर्शना का लक्षण करते हुए कहा है कि- **निदर्शना अभवन् वस्तुसम्बन्ध उपमापरिकल्पकः (काव्यप्रकाश 10.97)** अर्थात्- निदर्शना होती है, जहाँ पर वस्तुओं के असम्भव समबन्ध में उपमानोपमेय भाव वर्णित हो, अथवा वस्तुओं के असम्भव सम्बन्ध जो असम्भव हो अथवा उपमा का परिकल्पक हो। वे उदाहरण प्रस्तुत हैं कि- **क्व सूर्यप्रथवोवंशः क्व चाल्पविषयामतिः। तितीर्षुर्दुस्तरं मोहाद्दुडुपेनास्मि सागरम्।।** कहाँ वह सूर्य सम्भुत रघुवंश और कहाँ मेरी सीमिति बुद्धि, मोह के वश आकर मैं जो करना चाह रहा हूँ वह तो केवल उडुप(डोंगी नाव) के द्वारा दुरस्तर समुद्र को पार करना हुआ। इस उदाहरण में उडुप के द्वारा दुस्तर सागर का पार करना और कहाँ सूर्य वंश और अल्पविषयामति इनमें अर्थ असम्बद्ध है, किन्तु उपमामोपमेय भाव मान लेने पर निदर्शना बन जाती है।

3.3.10 अर्थापत्ति अलंकारः लक्षण एवं उदाहरण

अर्थापत्ति अलंकार न्याय परक अलंकार कहलाता है, किन्तु अर्थ की चमकत्कादिकता भी इनमें बहुत है, जयदेव के अनुसार अर्थापत्ति का लक्षण है-

अर्थात्तिः स्वयं सिध्येत् पदार्थन्तरवर्णनम्।

स जितस्त्वन्मुखेनेन्दुः का वार्ता सरसीरूधम्।। (चन्द्रालोक ।।5/37।।)

अर्थ-जिस काव्य में एक वस्तु के वर्णन कर देने से दूसरे का वर्णन अपने ही सिद्ध हो जाय उसमें अर्थापत्ति अलंकार होता है। जैसे- स जितस्त्वन्मुखेनेन्दुः का वार्ता सरसीरूहाम।। अर्थात्-वह चन्द्रमा तुम्हारे मुख द्वारा जीत लिया गया तो कमलों पर विजय की बात क्या रह गयी।

शब्दार्थ-पदार्थान्तरवर्णम-अन्य पदार्थ का वर्णन स्वयं-स्वतः सिध्येत्-सिद्ध। अर्थापत्ति -अर्थापत्ति अलंकार स दन्दुः-वह चन्द्रमा त्वन्मुखेन-तुम्हारे मुख द्वारा जितः-जीत लिया गया सरसीरूहाम्-कमलों की, का वार्ता- क्या बात (कथा)

व्याख्या-अर्थापत्ति शब्द के दो अभिप्राय बताये जाते है- 1. अर्थस्यापत्तिर्यस्मात् 2. अर्थस्यापत्तिः अर्थापत्ति एक प्रमाण है, जो मीमांसा सम्मत है किन्तु उसमें अर्थापत्ति रूपी वाच्य सौन्दर्य का अन्तर्भाव नहीं है। जहाँ पर स्वतः कोई बात आ जाय वहाँ अर्थापत्ति होती है, उक्त उदाहरण में यह प्रतीत होता है, कि कमलों का विजेता चन्द्रमा है। जो हार गया इस अन्य पदार्थ का वर्णन मुख द्वारा चन्द्रमा के पराजित होने के वर्णन के साथ अपने आप सिद्ध है। इसी लिए अर्थापत्ति है। जब सर्वाधिक सुन्दर कमल वैसे ही हार जायेगा। नायिका के मुख द्वारा चन्द्रमा विजित है, तो इस प्रकार की विजय के समक्ष कमल के सौन्दर्य भी पराजित हैं। यह तथ्य कौमुतिक तथा दण्डापूसिक न्यायादि से सम्बंधित है, अतः यह अलंकार भी न्याय परक कहा जा सकता है।

3.3.11 दृष्टान्त अलंकारः लक्षण एवं उदाहरण

यह अलंकार बिम्ब-प्रतिबिम्बभाव से सम्बन्धित है। चन्द्रालोक में इसके लक्षण एवं उदाहरण को इस प्रकार उपस्थित किया गया है-

चेद् बिम्ब प्रतिबिम्बत्वं दृष्टान्तस्तदलंकृतिः

स्यान्मल्लप्रतिमल्लत्वे संग्रामोद्दामहुंकृतिः।। (चन्द्रालोक 5/56)

अर्थ- जहाँ पर वाक्यों का परस्पर बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव हो वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है। जैसे- स्यान्मल्लप्रतिल्लत्वे संग्रामे-द्दामहुंकृतिः। अर्थात-संग्राम में मल्ल-प्रतिमल्ल होने से हुंकार होने लगता है। उसी प्रकार बिम्ब-प्रतिबिम्ब होने से दृष्टान्त होने लगता है।

शब्दार्थ- मल्लः-योद्धा, युद्ध प्रतिमल्ल-योद्ध, युद्ध संग्रामे-युद्ध में उद्दाम्नी-घोर, जोर से हुं कृतिः-हुंकार स्यात् होती है।

व्याख्या-दर्पण में जिस प्रकार वस्तु के सम्मान परछाई होती है, उसी प्रकार एक वाक्य के समान दूसरा वाक्य आता है; तो उन दोनों वाक्यों में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव माना जाता है। प्रस्तुत उदाहरण में अर्थ की दृष्टि से बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है। यद्यपि जयदेव को इस उदाहरण से स्वतः संतुष्टि नहीं हुयी होगी। इस उदाहरण में बिम्ब-प्रतिबिम्ब और मल्ल-प्रतिमल्लत्व, अलंकृति एवं हुँकृति ये पृथक् जोड़े है, जिनमें बिम्ब भाव किया जाता है, उनमें से एक तो उपमेय का चित्रण करता है, और दूसरा उपमान का दो भिन्न प्रकार के धर्म समान होने के कारण एक जैसे प्रतीत हो और उनका उल्लेख अलग-अलग किया जाय बत बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव कहलाता है। दिए गए उदाहरण में अलंकृति और समान होने से तुल्य है। यदि दृष्टान्त को इस प्रकार परिभाषित किया जाय-दृष्टः सुष्ठः अवलोकितः अन्तः निश्चयों यस्य स दृष्टान्तः अर्थात् इस व्युत्पत्ति से वाक्यार्थ का निश्चय उदाहरण के द्वारा भली-भाँति कर लिया जाय तो वही पर दृष्टान्त अलंकार हो जाता है। दृष्टान्त अलंकार का जो दूसरा उदाहरण जो चन्द्रालोक में वर्णित है, वह इस प्रकार है-

दृष्टान्तश्चेद्भवन्मूर्तिस्तन्मृष्टा दैवदुर्लिपिः

जाता चेत्प्राक् प्रभा भानोस्तर्हि याता विभावरी।। (चन्द्रालोक 5/57)

अर्थ- जिस प्रकार पूर्व दिशा में उदित सूर्य की शोभा से अँधेरी रात स्वयं विनष्ट हो जाती है, उसी प्रकार आप की मूर्ति का अन्तः करण में साक्षात्कार करने से दुर्भाग्य (दैवदुर्लिपि) नष्ट हो जाता है।

शब्दार्थ- चेत्-यदि, भवन्मूर्ति-आपकी मूर्ति, अन्तः-अन्तःकरण में दृष्टा-देखली, तत्- तो, दैवदुर्लिपिः भागय की दुर्लिपि, भृष्टा-मिट गयी, प्राक्-पूर्व दिशा में, भनोः-भनु की , प्रभा-प्रथा, जाता-उत्पन्न हो गयी। तर्हि-तो विभावरी-निशा, माता-चली गयी। प्रस्तुत उदाहरण दृष्टान्त का बिल्कुल स्पष्ट उदाहरण है। उपमेय वाक्य के 'मूर्तिः अन्तःप्रविष्टा चेत्तद् दैवदुर्लिपिः और मृष्टा पद बिम्ब है, तथा इनका प्रतिबिम्ब उपमान वाक्य में क्रमशः 'प्रभा प्राक् जाता चेत तर्हि विभावरी' और माता पदो के रूप में है, केवल भवत् और भानु शब्दों में अर्थ मात्र की दृष्टि से साम्य है, वाह्य रूप से नहीं। दुर्लिपि का मिटना और रात्रि का जाना ये दोनों धर्म हैं, जो मिलते-जुलते होते हुए भी अलग-अलग हैं। दृष्टान्त अलंकार को नितान्त स्पष्ट रूप से समझने हेतु कतिपय आचार्यों के मन्तव्य द्रष्टव्य है—

पण्डितराज जगन्नाथ के अनुसार दृष्टान्त में दोनो वाक्यों के धर्मो का बिम्बप्रतिबिम्ब भाव आवश्यक है, किन्तु प्रतिवस्तुपमा के सन्दर्भ में दोनों वाक्यों में भिन्न पदों द्वारा प्रतिपादित एक साधारण धर्म की नितान्त अपेक्षा होती है। काव्यप्रकाश में आचार्य मम्मट कहते हैं-'दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम्' (का0प्र0 10/102) अर्थात् उपमेय और उपमान दोनों वाक्यों में उपमान उपमेय और उपमान दोनों वाक्यों में उपमान उपमेय और साधरण धर्म का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव रहने पर दृष्टान्त अलंकार होता है। इनकी दृष्टि में वाकयार्थो का औपम्य अभिप्रेत है। दृष्टान्त वाक्य का उपमान, उपमेय और साधारण-धर्म के दृष्टान्त वाक्य का उपमान, उपमेय और साधारण-धर्म के

दृष्टान्त योग्य वाक्य में प्रबिम्बित होने का अभिप्राय है कि दोनों पक्षों में बिम्बप्रतिम्बि भाव होता हैं। दो वस्तुओं के (दो अर्थो) के दो 'द्वयोरर्थयोर्दिरूपादानं बिम्ब-प्रतिबिम्ब भावः यह परिभाषा प्रतापरूद्रयषोभूषण में कही गयी है। यह भाव तभी सम्भव होता है जब विशेष्य तथा विशेषण दोनों में सादृश्य का कथन हो न कि एकत्त्व का।

3.3.12 अर्थान्तरन्यास अलंकारः लक्षण एवं उदाहरण

चन्द्रालोकार ने अनुषक्त अर्थ में अर्थान्तरन्यास अलंकार को परिभाषित करने के लिए उसका लक्षण एवं उदाहरण इस प्रकार किया है- **भवेदर्थान्तरन्यासोऽनुषक्तार्थन्तराभिधा। हनूमानब्धिमतरद् दुष्करं किं महात्मनाम्।। (5/68)**

अर्थ-जहाँ पर मुचयार्थ से सम्बद्ध अर्थान्तर का अभिधान किया है, वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। उदाहरण है- हनुमानब्धिमतरद् दुष्करं किं महात्मनाम् हनुमान् समुद्र पार कर गये, महात्माओं के लिए दुष्कर क्या है ?

शब्दार्थ- भवेत् होता है, अन्यः अर्थ अर्थान्तर तस्य-उसका, अभिधा- कथन, न्यास-सम्बद्ध

व्याख्या-अनुषक्त पद का अर्थ प्रस्तुत अर्थ से सम्बद्ध और अर्थान्तर का अर्थ अप्रस्तुत है। उदाहरण के प्रथम चरण में कही गयी सामान्य बात 'हनुमान् ने सागर का पार किया का समर्थन सामान्य बात 'महापुरूषों के लिए क्या कठिन है, से किया गया है। इसमें पहली बात प्रस्तुत है और दूसरी अप्रस्तुत। यह भी कहा जा सकता है कि सामान्य बात का समर्थन विशेष बात के उदाहरण से किया गया है। प्रस्तुत सामान्य बात है और अप्रस्तुत विशेष बात है। अर्थान्तर का अर्थ प्रस्तुतका समर्थक अप्रस्तुत धर्म और न्यास का अर्थ समर्थन है। इस प्रकार अर्थान्तरन्यास अलंकार का नाम सार्थक है। जनसाधारण और कवि दोनों में यह अलंकार प्रिय होता है। अर्थान्तरन्यास लोकोक्ति में प्रचलित होता है।

प्रस्तुत उदाहरण में 'हनुमानबिधमतरत्' यह प्रस्तुत अर्थ का समर्थन, अप्रस्तुत अर्थ 'पुष्करं किं महात्मनाम्' द्वारा किया गया है, जो अप्रस्तुत और सामान्य कथन है। अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार है। आचार्य भामह ने भी इसका निरूपण किया है। भामह इसका लक्षण करते है-

उपमन्यसनमन्यस्य यदर्थस्योदितादृते।

ज्ञेमस्सोऽर्थान्तरन्यासः पूर्वार्थानुगतो तथा ।। (काव्यालंकार 2/11)

अर्थान्तरन्यास अलंकार को आचार्य दण्डी भी मानते है-

ज्ञेयः सोऽर्थान्तरन्यासो वस्तु प्रस्तुस्य किन्चन।

तत्साधसमर्थस्य न्यासो माडन्यस्य वस्तुतः।। (काव्यादर्श, 3/169)

अर्थान्तरन्यास अलंकार के लक्षण से भी अर्थान्तरन्यास शब्द की व्यत्पत्ति का यही अभिप्राय स्पष्ट होता है- अर्थ्यत इति अर्थः प्रस्तुत इति यावत्, अन्यः अर्थः अर्थान्तरं तस्य न्यास। अर्थात् प्रस्तुत से विलग अप्रस्तुत अर्थ का ऐसा उपनिबन्ध जो अन्ततः प्रस्तुत का समथ्रक हो 'अर्थान्तरन्यास' है। 'अर्थान्तरन्यास' वाच्य चमत्कार है। इसमें उपपादन की अपेक्षा रखने वाले प्रकृट का, चाहे वह पहलं निर्दिष्ट हो अथवा बाद में निर्दिष्ट हो, समर्थक वाक्य द्वारा उपपादन अथवा समर्थन कहा जाता है। अर्थान्तरन्यास में प्रकृति का समर्थन होता है न कि अनुमानित नवीन अनुभव का। 'सामान्य वस्तु का विशेष से और 'विशेष' वस्तु का सामान्य से उपपादन हि 'मत' आदि शब्दों के उपादान में शाब्द भी हो सकता है और इन शब्दों के अनुपादान में आर्य भी।

काव्य प्रकाश में इस अलंकार अत्यन्त विस्तार प्राप्त होता है। वहाँ पर इसे प्रकार चित्रित किया गया है-

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।

यतु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा। (का0 प्र0 10/109)

अर्थात्- मम्मट की दृष्टि में अर्थान्तरन्या सवह अलंकार है जिसे साधर्म्य और वैधर्म्य की दृष्टि से सामान्य किया जाता है। इसमे विशेष तथ्य यह है कि जो समर्थन की बात कही गयी है, वह इस प्रकार होती है-

सामान्य का साधर्म्य द्वारा विशेष से समर्थन, सामान्य का वैधर्म्य द्वारा विशेष से समर्थन, विशेष का साधर्म्य द्वारा सामान्य-इस प्रकार दोनों समर्थन हेतुओं के दोनों प्रकारों के समर्थनों में अनुगत होने के कारण यह अर्थान्तरन्यास चार प्रकार का होता है। अलंकारों में अन्तर-

1. स्मृतिभ्रान्ति सन्देह-

क. तत्सदृशवस्तु के पूर्व परिचित आकार का स्मरण स्मृति अलंकार होता है। जब किसी वस्तु को देखकर तत्सदृश वस्तु का निश्चित ज्ञान हो जाता है, तब भ्रान्तिमान अलंकार होता है सन्देह तब होता है, जब निर्णय नहीं हो पाता है कि उक्त वस्तु क्या है?

ख. स्मरण अलंकार सामान्यरूप से स्पष्ट होता है, क्योंकि इसमें किसी वस्तु को देखकर उसी के जैसी पूर्व में देखी गयी वस्तु का स्मरण होता है, किन्तु भ्रान्ति में किसी वस्तु को देखकर उसके समान वस्तु का निश्चयात्मक ज्ञान होता है, भले ही वह उलटा हो। सन्देह अलंकार में एक ही वस्तु को देखकर भिन्न-भिन्न वस्तुओं के होने कि उलझन होती है, जिसमें निर्णय नहीं हो पाता है, कि वह क्या है?

ग. समान वस्तुओं के होने पर ही संन्देह हो सकता है एक वस्तु को देखकर तत्सदृश दो वस्तुओं का ज्ञान सन्देह परक है किन्तु स्मृति और भ्रान्तिमान में इस प्रकार की ज्ञानात्मक स्थितियाँ नही होता है।

2. दृष्टान्त और अर्थान्तरन्यास- ये दोनों अलंकार भिन्न-भिन्न स्वरूपों वाले अलंकार हैं इनमें निम्निलिखित अंतर स्थापित किए जा सकते है-

क. अर्थान्तरन्यास में सामान्य रूप से सम्भाव्य अर्थ के समर्थन के लिए विशेष रूप अर्थान्तर का तथा विशेष रूप सम्भाव्य अर्थ के समर्थन की खातिर सामान्य रूप अर्थान्तर का उपन्यास या उपस्थापन हुआ करता है। किन्तु दृष्टान्त अलंकार में मूलबात यह होती है कि इसमें सामान्य का समर्थन सामान्य द्वारा किया जाता है, तथा विशेष का समर्थन विशेष द्वारा किया जाता है। अतः इन अलंकारों की दो कोटियाँ है।

ख. वाक्यों के बिम्ब-प्रतिबिम्वत्व में दृष्टान्त होता है, जबकि सामान्य और विशेष वाक्यों द्वारा परस्पर समर्थन से अर्थान्तरन्यास होता है।

ग. अर्थान्तरन्यास में सामान्य से विशेष की और विशेष से सामान्य की समर्थन द्वारा पृष्टि होती है, किन्तु दृष्टान्त अलंकार में इस प्रकार का कोई समर्थन नहीं होता है।

घ. दृष्टान्त अलंकार में दो धर्म होते है जो एक समान नहीं होते वे समान प्रतीत होते है, किन्तु अर्थान्तरन्यास में दो धर्मो में दो धर्मो का परस्पर समर्थन दर्शाया जाता है।

ड. अर्थान्तरन्यास का अभिप्राय होता है, कि अनुपपन्न होने के कारण सम्भाव्य किसी दूसरे अर्थ का न्यास (स्थापन) करना किन्तु दृष्टान्त में इस प्रकार का कोई स्थापन नहीं होता

च. अर्थान्तरन्यास अलंकार में समर्थ्य-समर्थक भाव सम्बन्ध होता है, जबकि दृष्टान्त अलंकार में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होता है।

अभ्यास-प्रश्न-7

निम्नलिखित प्रश्नों के सही विकल्प चुनकर लिखें-

क. जिन वाक्यों में परस्पर बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होता है, उन वाक्यों में अलंकार होता है-

1. प्रतिवस्तूपमा 2. दृष्टान्त
3. स्मृति 4. सन्देह

ख. 'हनूमानब्धिमतरत्' उदाहरण में यह कथन है-

1. अप्रस्तुत 2. प्रस्तुताप्रस्तुत
3. प्रस्तुत 4. इनमें से कोई नहीं

ग. 'दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्विषां प्रतिबिम्बनम्' यह दृष्टान्त अलंकार का है-

1. लक्षण 2. उदाहरण
3. लक्षणोदाहरण 4. न्याय

घ. मम्मट ने अर्थान्तरन्यास अलंकार के भेद माने है-

1. छः 2. पाँच
3. तीन 4. चार

ड. 'द्वयोरर्थयोर्द्विरूपादानं बिम्ब-प्रतिबिम्ब भावः' यह दृष्टान्त की है-

1. परिभाषा 2.उक्ति
3. न्यास 4.उपपादन

च. 'द्वयोरर्थयोद्विरूपादानं बिम्ब-प्रतिबिम्ब भावः' यह परिभषा किस ग्रंथ में वर्णित है-

1. काव्यादर्श 2. प्रतापरूद्रयशोभूषण
3. काव्यप्रकाश 3. काव्यालंकार

छः सामान्य से विशेष का समर्थन नहीं होता है-

1. अर्थान्तरन्यास में 2. दृष्टान्त में
3. अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त दोनो 4. कोई नहीं

ज. बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाववव नहीं होता है-

1. दृष्टान्त में 2. अर्थान्तरन्यास में
3. दृष्टान्त और अर्थान्तरन्यास दोनों में

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें-

क. दृष्टान्त अलंकार में .....धर्म होते है।
ख. अर्थान्तरन्यास अलंकार में.....भाव सम्बन्ध होता है। समर्थ्य-समर्थक
ग. अर्थान्तरन्यास में.....का समर्थन होता है। प्रकृति
घ. दृष्टः सुष्ठुः अवलोकितः अन्तः निश्चयौः यस्य स दृष्टान्त।

3. सत्यासत्य निर्धारण करें-

क. दृष्टान्त अलंकार में बिम्ब-प्रतिभाव माना जाता है।
ख मम्मट अर्थान्तरन्यास के पाँच भेद माने हैं।
ग. अर्थान्तरन्यास अलंकार में मुख्यार्थ से समद्ध का अभिधान किया जाता हे।
घ. पण्डितराज दृष्टान्त में दोनों वाक्यों के धर्मो का बिम्बप्रतिबिम्बभाव मानते है।

4. निम्नलिखित प्रश्नों का एक वाक्य में अन्तर दें-

क. दृष्टान्त की परिभाषा लिखिए।
ख. चन्द्रालोक के अनुसार अर्थान्तरन्यास का लक्षण लिखिए।
ग. दृष्टान्त और अर्थान्तरन्यास का कोई एक अन्तर लिखिए।

3.4 सारांश

उपमेय, उपमान, वाचक शब्द साधारण धर्म आदि से निर्मित होने वाले और उत्प्रेक्षा अलंकारों के साथ ही कार्य-कारण से संबंधित विशेषोक्ति अलंकार का अध्ययन इस इकाई के अन्तर्गत किया। प्रस्तुत इकाई में लक्षणकार जयदेव रचित चन्द्रालोक के आधार पर मूलरूप में इन 4 अलंकारों के व्याख्यात्मक वर्णन दिए गये हैं। उपमा वर्णन में जयदेव ने सादृश्य को ग्रहण किया है, और मम्मट ने साधर्म्य को। रूपक अलंकार में जिस प्रकार की उद्भावना चन्द्रालोककार की है, आर्चाय मम्मट भी लगभग उसी प्रकार मानते हैं। क्योंकि उपमान के द्वारा उपमेय को आत्मसात् कर लेने पर रूपक अलंकार के बनने की बात जयदेव ने की है, और उपमेय तथा उपमान

के अभेद वर्णन में रूपक अलंकार मम्मट ने माना है। यही उपमेय और उपमान विशेषोक्ति में कार्य-कारण कहे जाते हैं। जिनका अध्ययन आपने इस इकाई में किया है। विशेषोक्ति अलंकार की उद्भावना अन्य लक्षणकारों में लगभग एक समान दिखाई देती है। सम्भावना के अर्थ में प्रयुक्त उत्प्रेक्षा को जयदेव ने कारण कार्य तथा वस्तु में अतिशय संदेह के द्वारा प्रकट किया है। प्रस्तुत का निषेध कर जहाँ अप्रस्तुत की प्रतिष्ठा की जाती है वहाँ अपह्नुति अलंकार होता है। इसमें सत्य वस्तु में असत्य वस्तु का आरोप किया जाता है। अर्थात् यहाँ उपमेय का निषेध कर दिया जाता है। सत्य वस्तु का यह गोपन कल्पनाजन्य एवं कविप्रसूत होता है। सम्पूर्ण वस्तु का निषेध न कर उसके धर्ममात्र का निषेध जहाँ किया जाए वहाँ पर्यस्तापह्नुति अलंकार होता है। यहाँ धर्मी से उसके धर्म को हटाकर विरीत उपमान में प्रतिष्ठित कर दिया जाता है। सत्यवस्तु पर असत्य के भ्रम की स्थित उत्पन्न होने पर वास्तविक तथ्य का निर्णय भ्रान्तापह्नुति कहलाता है। इसमें असत्य की शंका दूर करने के लिए सत्य का उद्घाटन किया जाता हैं। अपने रहस्य की बात किसी अन्य को ज्ञान न हो जाए इस हेतु सत्य को चतुरता से छिपा लिया जाए वहाँ छेकापह्नुति होती है। छेकापह्नुति में वास्तविक तथ्य को प्रत्युत्पन्नमति से अन्य अर्थ में प्रकट कर दिया जाता है। कैतव (छल), व्याज आदि वदों द्वारा यथार्थ वस्तु का निषेध कैतवापह्नुति अलंकार के अंतर्गत आता है। जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय में श्रेष्ठता प्रदर्शित हो वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है। उपमेय में उपमान की अपेक्षा न्यूनता को भी व्यतिरेक के अन्तर्गत रखा जाता है किन्तु अधिकांश काव्यशास्त्री इससे सहमत नहीं है। जिस काव्य रचना में कारण के विना ही काने की उत्पत्ति प्रदर्शित की जाए वहाँ विभावना नामक अलंकार होता है। विभावना में लोक प्रसिद्ध कारण अनुपस्थित रहता है।

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से अपने जाना कि अर्थालंकारों में उपमेय तथा उपमान का वर्णन प्रधान होता है, इन्ही दोनों को प्रस्तुत-अप्रस्तुत, कार्य-कारण आदि रूपों में व्यवहृत्त किया जाता है। कहीं उपमान, उपमेय पृथक होते है, तो कहीं उपमान और उपमेय दोनों एक होते हैं। अतिशयोक्ति अलंकार में जयदेव ने छः भेदों में कार्य-कारण को विभिन्न रूपों में चित्रित करके अलग-वस्तुओं के असम्भव सम्बन्ध को द्योतित करते हुए उपमा का परिकल्पक होती है। इस अलंकार में सम्बन्ध सम्बन्ध सम्भव न रहने पर भी सम्बन्ध बताया जाता है, जिससे अर्थ में चमत्कार उत्पन्न हो । अनेक क्रिया-गुण आदि का धर्म प्रधान है। पदार्थान्तर वर्णन में अर्थापत्ति का स्वयं सिद्ध होना माना जाता है। अर्थात् एक पदार्थ के वर्णन से दूसरे का वर्णन स्वयं उपस्थित हो जाता है। इसके अतिरिक्त काव्यलिंग अलंकार वाक्यार्थ में नवीन अर्थ प्रदान करता है। आपने जाना कि-स्मृति भ्रान्ति एवं सन्देह अलंकारों के स्वरूप किस प्रकार एक दूसरे से पृथक् है। स्मृति अलंकार तत्सदृश वस्तु के स्मरण पर आधारित है, एक वस्तु की देखकर उसी के समान देखी हुयी पूर्व वस्तु का तदाकार निश्चयात्मक ज्ञान भ्रान्ति कहलाता हे। समानता में जब एक वस्तु को देखकर दो वस्तुओं का ज्ञान हो किन्तु यह निर्णय न हो पाये कि कौन सा ज्ञान सत्य है तो उस स्थिति को सन्देह अलंकार की प्रकृति में रखा जाता है। दृष्टान्त मूलतः बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव पर आधारित है, जिस प्रकार योद्धाओं का परस्पर हुंकार होता है उसी प्रकार उपमेय और उपमान वाक्यों के बिम्बप्रतिबिम्ब भाव से अलंकृति होती है। अर्थान्तरन्यास अलंकार की स्थिति यह है कि इसमें सामान्य का विद्वोष द्वारा और विशेष का सामान्य का समर्थन सामान्य से ही होता है। अतः इस इकाई के अध्ययन से आप इसमें वर्णित अलंकारों के स्वभाव से परिचित करा सकेंगे।

3.5 शब्दावली

1. शैलूषी	-	नटी
2. चित्रभूमिकाभेदान	-	विचित्रभूमिकाओं को अपना कर
3. रन्जयति	-	मनोरंजन करती है।
4. समरेषु	-	युद्ध में
5. क्षितीश्वर	-	राजा

6. प्रतीप	-	विपरीत
7.यष्टि	-	छड़ी
8. श्रितोडस्मि	-	आश्रय लेता हूँ
9.अपह्नुति	-	गोपित करना, छिपाना
10. पर्यस्त	-	हटाना, अन्यत्र आरोपित
11. प्रस्तुत	-	उपमेय
12. अप्रस्तुत	-	उपमान
13. कार्य	-	कभी उपमेय
14. कारण	-	कभी उपमान
15. अक्रम	-	विनाक्रम के
16. चपल	-	चंचल, शीघ्रता
17. ऐक्यारोप	-	एकता का आरोप
18. सम्बन्ध	-	संयोग
19. प्रासाद	-	महल
20. भेद	-	अन्तर, पार्थकय, प्रकार
21. रूपक	-	उपमान
22. तितीर्षु	-	पार कारने का इच्छुक
23. पादद्वयी	-	दो पैर
24. औपम्याश्रित	-	उपमा के आश्रित।
25. मल्ल	-	प्रतिमल्ल-आलंकारिक भाषा में मल्ल को योद्धा कहते है। उसके प्रतिबिम्ब भाव को बिम्ब-प्रतिबिम्ब कहते हैं।
26. दैव दुर्लिपि अथवा	-	भाग्य को दैव शब्द से व्यक्त किया जाता है। दुर्भाग्य को दुर्लिपि शब्द से भाग्य के बुरे लेख को दूर्लिपि कहा जाता है।
27. सम्भाव्य	-	ऐसा हो सकता है या ऐसीसम्भावना है।
28. तत्	-	उसके
29. सदृश	-	समान

3.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न-1.

1. क 5 (पाँच)
   ख-स्तबकोपमा
2. क-सत्य
   ख-असत्य
   ग-सत्य

अभ्यास प्रश्न -2

1. क-(1) तीन
   ख-(2) गूढ़ोत्प्रेक्षा

2. क. वस्तूत्प्रेक्षा-चन्द्रमा के आते ही स्वाभाविक रूप से कमल संकुचित हो जाता है। इस वस्तु के आधार पर चन्द्रमा और कमल का वैर दिखलाया गया है। अतः यहाँ वस्तूत्प्रेक्षा है।

ख. रूपवत् करोतिरूपयतिवारूपकोलक्षणाविशेषःसोडस्मिन्नस्तीति रूपकमलड़कारः।। अर्थात्, जिस अलंकार द्वारा उपमेय और उपमान समान रूप वाला बना दिया जाता है, वह रूपक होता है।

ग. आभास रूपक-यदि शरीर में छड़ी का आरोप किया जाय तो वहाँ आभास रूपक होता है। शरीर की लम्बाई देखकर उसमें लम्बायमान छड़ी का आरोप किया है अतः आभास रूपक है।

घ. गूढ़ोत्प्रेक्षा

अभ्यास प्रश्न-3

1. क. विशेषोक्ति अलंकार।
   ख. तीन।
   ग. विशेषोक्तिरनुत्पत्ति कार्यस्य सति कारणे।
   घ. दो।

अभ्यास प्रश्न -7

1. क-2 2. ख-3 3. ग-1
   3-घ-4 ड़-1 च-2
   छ-2 ज-2
   2-क -2 ख- समर्थ्य समर्थक ग-प्रकृति घ- दृष्टान्त
   3. क-सत्य ख-असत्य ग-सत्य घ- सत्य

3.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. चन्द्रोकः विमला सुधा व्याख्या समन्वित, डॉ0 श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन 1997 वारणसी

2. चन्द्रालोकः श्री सुबोधचन्द्र पन्त मोती बनारसीदास, दिल्ली 1996

3. चनद्रालोक (पन्चम मयूख) डॉ0 बाबूराम त्रिपाठी, महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा

4. काव्यप्रकाश, आचार्य मम्मट , व्याख्याकार डॉ0 सत्यव्रत सिंह चौखम्बा विद्याभवन-वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण-2007 ई.

3.8 अन्य उपयोगी ग्रन्थ

1. हिन्दी साहित्य कोश भाग-1 डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी 1985

2. भारती काव्यशास्त्रः डॉ0 योगेन्द्र प्रताप सिंह लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 1985

3. काव्यप्रकाशः शशिकला व्याख्या सहित, डॉ0 सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी 1987

4. साहित्य दर्पण: डॉ0 सत्यव्रत सिंह , चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी 1982

5. काव्यदीपिकाः श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन 1990 वारासी

3.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. उत्प्रेक्षा अलंकार की लक्षणोदाहरण सहित व्याख्या कीजिए तथा उसके भेदों को स्पष्ट कीजिए।
2. रूपक तथा उपमा के अन्तर को स्पष्ट करते हुए, इनकी व्याख्या कीजिए।
3. उपमा एवं उत्प्रेक्षा के व्यन्जक शब्दों को बताते हुए दोनों के लक्षण-उदाहरण भी लिखिए।
4. विशेषोक्ति अलंकार का विस्तार से वर्णन कीजिए।
5. अपह्नुति अलंकार की लक्षणोदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।

6. व्यतिरेक अलंकार की लक्षणोदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।
7. विभावना अलंकार की लक्षणोदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।
8. अतिशयोक्ति अलंकार के समस्त भेदों का उदाहरण लक्षण सहित निरूपण कीजिए।
9. लक्षणोदाहरण सहित निदर्शना अलंकार की व्याख्या कीजिए।
10. अर्थापत्ति के लक्षण एवं उदाहरण पर प्रकाश डालिए।

खण्ड- तीन (Section-C)
संस्कृत साहित्य का स्वरूप

इकाई-1 संस्कृत साहित्य का सामान्य परिचय : भाग-1

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 संस्कृत साहित्य का सामान्य परिचय:भाग-1
1.3.1 संस्कृत काव्य साहित्य की परम्परा
1.3.1.1 संस्कृत भाषा एवं साहित्य
1.3.1.2 उपजीव्य काव्य
1.3.1.3 संस्कृत महाकाव्य
1.3.1.4 नीतिकाव्य एवं गीतिकाव्य
1.4 सारांश
1.5 शब्दावली
1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.8 अन्य उपयोगी ग्रंथ
1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

संस्कृत भाषा एवं साहित्य से सम्बन्धित यह तृतीय खण्ड की यह प्रथम इकाई है। इससे पूर्व खण्ड में आपने छन्द एवं अलंकारों का अध्ययन किया। प्रस्तुत खण्ड में आप संस्कृत साहित्य के विषय में जानेंगे। संसार के प्रत्येक साहित्य में प्रतिभासंपन्न कवियों के ऐसे मर्मस्पर्शी काव्य हुआ करते हैं। जिनसे स्फूर्ति तथा प्रेरणा प्राप्त कर परवर्ति कवि अपनी लेखनी काव्यरचना के लिए उठाते हैं। ऐसे काव्यों को पर्याप्त प्रभावशाली होने के कारण हम 'उपजीव्य काव्य' के नाम से अभिहित करते हैं। संस्कृत साहित्य में भी ऐसे उपजीव्य काव्य विद्यमान हैं, जिनसे न केवल संस्कृत भाषा के पंडितों ने अपितु अन्य भाषाओं के विद्वानों ने अपनी रचनाओं के विषय निर्देश के लिए तथा काव्यशैली के विधान के लिए निरन्तर प्रेरणा ग्रहण की है और वर्तमान में भी कर रहे हैं। ऐसे उपजीव्य काव्य मुख्यत: तीन हैं—1. रामायण 2. महाभारत 3.श्रीमद्भगवत इन तीनों ही उपजीव्य काव्यों का परवर्ती कवियों की रचनाओं पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। इन ग्रन्थों को मानवीय सभ्यता की मर्यादा एवं आदर्श स्थापित करने वाला माना गया है, इनको अपनाकर मानव अपना एवं अपने राष्ट्र का सर्वतोमुखी विकास करने में सफल हो सकता है । इनका आश्रय लेकर ही संस्कृत महाकाव्य परम्परा का प्रादुर्भाव होता है। जो वैदिक साहित्य में पद्य साहित्य के रूप वर्णित है। इस इकाई के अर्न्तगत आप महाकाव्य परम्परा के कुलगुरू कहे जाने वाले महाकवि कालिदास, भारवी, माघ, श्री हर्ष के जीवन परिचय एवं उनके काव्य ग्रन्थों का अध्ययन करेंगे साथ ही संस्कृत पद्य साहित्य के उद्भव के विषय में भी जानेंगे।

अत: इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप वाल्मीकि का परिचय बताते हुये रामायण में वर्णित घटनाओं के सूक्ष्म अध्ययन करेंगे, आप महाभारत एवं उसके रचयिता वेदव्यास से सम्बन्धित विषय का अध्ययन करेंगे। साथ ही महाकाव्य परम्परा को भी जानेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- रामायण को आदि काव्य क्यों कहा जाता है,इसका उल्लेख करने में समर्थ हो सकेंगे ।
- महर्षि वाल्मीकि ने किस घटना के आधार पर राम कथा का चित्रण इस गूणार्थ को जान सकेंगे।
- वैदिक और लौकिक साहित्य की विशेषता के विषय में जान सकेंगे।
- महाभारत का परिवर्द्धन कितनी श्रेणियों में हुआ इसका अध्ययन करेंगे।
- महाभारत में जीवन से सम्बन्धित सामान्य और विशिष्ट प्रकार की शिक्षाओं के विषय में जान सकेंगे।
- कालिदास के समय विषयक मतों को बता सकेंगे ।
- भारवि के जीवन परिचय का अध्ययन कर सकेगें ।
- माघ के जीवन परिचय का अध्ययन कर सकेगें ।
- श्री हर्ष के व्यक्तित्व बाता सकेंगे ।

1.3 संस्कृत साहित्य का सामान्य परिचय : भाग-1

1.3.1 संस्कृत काव्य साहित्य की परम्परा—

साहित्य शब्द और अर्थ के सामञ्जस्य का सूचक है। इसकी व्युत्पत्ति 'सिहतयो: भाव: साहित्य' अर्थात् शब्द तथा अर्थ का भाव। इस मौलिक अर्थ में इस शब्द का प्रयोग हमारे काव्यग्रन्थों तथा अलंकार ग्रंथों में अनेक स्थानों पर दीख पड़ता है। वैदिक एवं लौकिक साहित्य के सन्धिकाल पर विराजमान आदि काव्य की संज्ञा से विभूषित रामायण आदि काव्य महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित है। यह ग्रन्थ राम कथा के समस्त परवर्ती काव्यों एवं

नाटकों का स्रोत है। इस महाकाव्य में नायकत्व राम का है, नायिका चित्रण की केन्द्र बिन्दु सीता है। सम्पूर्ण महाकाव्य का अंगीरस करूण है। शेष अन्य रस सहायक रस के रूप में पदे –पदे दृष्टिगोचर है। राम और रावण के युद्ध का विस्तृत वर्णन इसी महाकाव्य में प्राप्त है। महाभारत धर्मग्रन्थ के साथ–साथ मानवीय सभ्यता की मर्यादा एवं आदर्श स्थापित करने वाला एक महासूत्र है, जिसको अपनाकर मानव अपना एवं अपने राष्ट्र का सर्वतोमुखी विकास करने में सफल हो सकता है। इसको 'उपजीव्य काव्य' कहा गया है। अन्य सभी को उपजीवी ।

1.3.1.2 उपजीव्य काव्य—

संसार में प्रत्येक साहित्य में प्रतिभा संपन्न में कवियों के ऐसे मर्मस्पर्शी काव्य हुआ करते हैं। जिनसे स्फूर्ति तथा प्रेरणा प्राप्त कर परवर्ति कवि अपनी लेखनी काव्यरचना के लिए उठाते हैं। ऐसे काव्यों को पर्याप्त प्रभावशाली होने के कारण हम 'उपजीव्य काव्य' के नाम से अभिहित करते हैं। संस्कृत साहित्य में भी ऐसे उपजीव्य काव्य विद्यमान हैं, जिनसे न केवल संस्कृत भाषा के पंडितों ने अपितु अन्य भाषाओं के विद्वानों ने अपनी रचनाओं के विषय निर्देश के लिए तथा काव्यशैली के विधान के लिए निरन्तर प्रेरणा ग्रहण की है और वर्तमान में भी कर रहे हैं। ऐसे उपजीव्य काव्य मुख्यत: तीन हैं—1. रामायण 2. महाभारत 3.श्रीमद्भगवत इन तीनों ही उपजीव्य काव्यों का परवर्ती कवियों की रचनाओं पर व्यापक प्रभाव पड़ा है।

वाल्मीकि कृत रामायण का परिचय एवं समय—

महर्षि वाल्मीकि संस्कृत के आदिकवि के आदिकवि हैं तथा उनका रामायण आदिकाव्य है। उनकी कविता देश तथा काल की अवधि के द्वारा परिच्छिन्न नहीं की जा सकती। वे उन विश्व-कवियों में अग्रणी है जिनकी वाणी एक देश विशेष के प्राणियों का ही मंगल साधन नहीं करती और न किसी काल-विशेष के जीवों का मनोरंजन करती है। काल-क्रम से संस्कृत साहित्य के विकास में आदिम होने पर भी वाल्मीकि की अमृतमयी वाणी में सौन्दर्य – सृष्टिका चरम उत्कर्ष है तथा महनीय काव्य-कला का परम औदात्य है। वाल्मीकि का रामायण 'महनीय कला' के लिए जिस आदर्श को काव्य-गोष्ठी में प्रस्तुत किया है वह वाल्मीकि के इस काव्य में सुचारू रूप से अपनी अभिव्यक्ति पा रहा है। फ्लाउबेर की मान्यता में 'ग्रेट आर्ट (महान् कला) इन वस्तुओं की साधना तथा प्रसारणसे मण्डित होती है 2 – मानव सोख्य की अभिवृद्धि, दीन-आर्त जनों का उद्धार, परस्पर में सहानुभुति का प्रसार, हमारे और संसार के बीच सम्बन्ध के विषय में नवीन या प्राचीन सत्यों का अनुसन्धान, जिससे इस भूतल पर हमारा जीवन उदात्त तथा ओजस्वी बन जाय या **ईश्वर की महिमा झलके।** ' यह लक्षण वाल्मीकि के रामायण के ऊपर अक्षरश: घटित होता है। जीवन को ओजस्वी तथा उदात्त बनाने के लिए रामायण में जिन आदेशों की वाल्मीकि ने अपनी अमर तुलिका से चितत्रत किया, वे भारतवर्ष के लिए ही मान्य और आदरणीय नहीं है, प्रत्युत् महर्षि वाल्मीकि अपनी मानव-मात्र के सामने उच्च नैतिक स्तर तथा सामाजिक उदात्तता की भावना को प्रस्तुत करते हैं। हमारी दृष्टि में वाल्मीकि का काव्य शाश्वतवाद का उज्ज्वल उदाहरण है। वर्ण्य विषयों की दृष्टि से काव्य को हम दो भागों में विभक्त कर सकते है:-

रामायण का प्रतिपाद्य एवं मूल्यांकन—

इस प्रकार की साहित्यिक रचना किसी काल-विशेष के लिए ही रोचक और उपादेय होती है, उस काल या युग का परिवर्तन होने पर नई आर्थिक स्थिति या सामाजिक ढॉचा आने पर वह केवल पुरानी ही नहीं पड. जाती बल्कि वह अनावश्यक, अनुपादेय, निष्प्राण तथा निर्जीव बन जाती है। प्रत्येक युग में कतिपय समस्याएँ अपना विशिष्ट समाधान चाहती जैसे मध्ययुगीन यूरोप में 'फ्युडल सिस्टम' (सामन्तीय प्रथा), वर्तमान युग में वर्गो का परस्पर संघर्ष , मालिक और मजदूर का परस्पर विद्रोह, जमीदार तथा किसान का मनोमालिन्य, जो

किसी विशेष आर्थिक ढॉंचे की उपज है। इन समस्याओं का समाधान अनेक मूल्यवान् कृतियों का प्रेरक रहा है, परन्तु उस युग-विशेष के परिवर्तन के साथ ही साथ ये कला-कृतियॉं भी विस्मृति के गर्त में विलीन हो जाती हैं।

जीवन के स्थायी मूल्यवान् तत्वों, तथ्यों तथा सिद्धान्तों पर आधारित काव्य- कृतियॉं मानव-जीवन बालू की भीत के समान शीघ्र ही ढहकर गिर जाने वाली वस्तु नहीं है। उसमें स्थायित्व है; पीछे आने वाली पीढियों को राह दिखाने की क्षमता है। और यह सम्भव होता है महनीय शोभन गुणों के कारण; जैसे उदात्तता, अर्थ और काम की धर्मानुकूलता, संकट के समय दीन का संरक्षण, विपत्ति के अघात से प्रताड़ित मानव को अपने बाहु-बल से बचाना, शरणागत का रक्षण आदि। इन्हीं गुणों की प्रतिष्ठा जीवन में स्थायिता तथा महनीयता की जननी होती है। ऐसे काव्यों को हम शाश्वत काव्य का अभिधान दे सकते हैं। वाल्मीकि का काव्य इस शाश्वत काव्य का समुज्जल निदर्शन है, क्योंकि वह मानव-जीवन के स्थायी मूल्यवान् तत्वों को लेकर निर्मित किया गया है। संस्कृत की आलोचना-परम्परा में रामायण 'सिद्धरस' प्रबन्ध कहा जाता है। कथा-वस्तु की विवेचना के अवसर पर आनन्दवर्धन का यह प्रख्यात श्लोक है (पृष्ठ148)

अभिनव गुप्त की व्याख्या से 'सिद्धरस' का अर्थ स्पष्ट झलकता है –सिद्ध: आस्वादमात्र - शेष:; नतु भावनीयो रसो यस्मिन्- अर्थात् जिस में रस की भावना नहीं करनी पड़ती, प्रत्युत रस आस्वाद के रूप में ही परिणत हो गया रहता है, वह काव्य 'सिद्धरस' कहलाता है, जैसे रामायण।

संस्कृत की काव्य-धारा रसकूल का आश्रय लेकर प्रवाहित होगी – इसका परिचय उसी मिल गया जब प्रेमपरायण सहचर के आकस्मिक वियोग से सन्तप्त क्रौन्ची के करूण निनाद को सुनकर वाल्मीकि के हृदय का शोक श्लोक के रूप में छलक पड़ा था- शोक: श्लोकत्वमागत:। काव्य का जीवन रस है, काव्य का आत्मा रस है- यह आदि- कवि की आलोचना-जगत को महती देन है। वाल्मीकि के काव्य की सबसे बड़ी विशिष्टता है- उदात्तता। पात्रों के चित्रणमें, प्रसंगों के वर्णन में, प्रकृति के चित्रण में तथा सौन्दर्य की स्फूर्तिमें सर्वत्र उदात्तता स्वाभाविक रूप से विराजती है। आदिकवि के इस काव्य-मन्दिर की पीठस्थली है राम तथा जानकी का पावन चरित्र। राम शोभन गुणों के भव्य पुन्ज हैं। वाल्मीकि ने ही हमें रामराज्य की सच्ची कल्पना देकर संसार के सामने एक आदरणीय आदर्श प्रस्तुत किया राम कृतज्ञता की मूर्ति हैं- वे किसी प्रकार किये गए एक भी उपकार से सन्तुष्ट हो जाते हैं; परन्तु सैकड़ो अपकारों का भी वे स्मरण नहीं रखते (2।1।11):-

कथन्चिदुपकारेण कृतेनैकेन तुष्यति।
न स्मरत्यपकाराणां शतमप्यात्मकतया ।।

प्रत्येक देश में स्त्रियॉं मिल सकती हैं तथा बन्धुजन भी प्राप्त हो सकते हैं, परन्तु मैं तो ऐसा देश ही नहीं देखता जहाँ सहोदर भ्राता मिल सके। अनूठी उक्ति है राम की यह। शत्रु के भ्राता विभीषण को बिना विचार किये ही शरणगति प्रदान करना राम के चरित्र का मर्मस्थल है, परन्तु मेरी दृष्टि में उनकी उदात्तता का परिचय रावण-वध के प्रसंग में हमें मिलता है। राम का यह औदार्य आज तो कल्पना के भी बाहर है:-

मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं न प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव।।

हे विभीषण, वैर का अन्त होता है शत्रु के मरण से। रावण की मृत्यु के साथ ही साथ हमारी शत्रुता भी समाप्त हो गई। उसका दाह-संस्कार आदि क्रिया करो। मेरा भी वह वैसा ही है जैसा तुम्हारा। 'मामाप्येष यथा तव'- रामचरित्र की उदात्तता का चरम उत्कर्ष है।

रामायण का कला पक्ष—

रामायण में हृदयपक्ष का प्राधान्य होने पर भी कलापक्ष की अवहेलना नहीं है। वाल्मीकि की भाषा उदात्त भावों की अभिव्यक का समर्थ माध्यम है। छोटे-छोटे, प्राय: समासविहीन पदों में महर्षि ने बड़े ही सरस तथा सरल शब्दों के द्वारा अपने भावों की अभिव्यंजना की है। शाब्दी सुषमा की ओर महर्षि का ध्यान स्वत: आकृष्ट हुआ है तथा उन्होंने इसका प्रकटीकरण बड़ी सुन्दरता तथा भावुकता के साथ किया है। आनुप्रासिक शोभा के लिए एक पद्य का दृष्टान्त पर्याप्त होगा।

तस्य संदिदिहे बुद्धिस्तथा सीतां निरीक्ष्य च ।
आम्नायानामयोगेन विद्यां प्रशिथिलामिव।।

अलंकार से विहीन, सुषमा से हीन सीता को देखकर हनुमान जी ने बड़े कष्ट से पहचाना कि यही सीता है, जिस प्रकार संस्कार से हीन तथा अर्थान्तर (भिन्न अर्थ) में प्रयुक्त वीणा को सुनकर श्रोता बड़ी कठिनता से उसके स्वरूप को पहचानता है (सुन्दर काण्ड 15/37):-

दु:खेन बुबुधे सीतां हनुमान् अनलंकृताम्।
संस्कारेण यथा हीनां वाचमर्थान्तरं गताम्।।

इसी प्रकार उत्प्रेक्षा का प्रदर्शन भी बड़ा चमत्कारपूर्ण है। लंका-दाह के अनन्तर हनुमान अरिष्ट पर्वत के ऊपर जब चढ़ते हैं (सर्ग 56), तब वाल्मीकि ने उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगा दी है- एक से एक नवीन चमत्कारी उत्प्रेक्षा जिसे कवि की वाणी ने स्पर्श कर उच्छिष्ट नहीं बना डाला है। पर्वत के श्रृड़गों से लटकने वाले मेघों के द्वारा प्रतीत होता है कि वह पहाड़ चादर ओढ़े हुए है:-**सोत्तरीयमिवाम्भोदै: श्रृड़गान्तर विलम्बिभि।** जल की बाढ़ की गम्भीर गड़गड़ाहट के कारण वह पर्वत अध्ययन-सा प्रतीत होता है तथा अनेक झरनों के शब्दों से वह गीत गाता –सा मालूम पड़ रहा है (सुन्दर काण्ड 56/28)

तोयौघनि:स्वनैर्मन्द्रै: प्राधीतमिव सवर्त: ।
प्रगीतमिव विस्पष्टं नानाप्रस्रवणस्वनै: ।।

रामायण का अंगी रस—

इस विषय में आनन्दवर्धन का स्पष्ट कथन है कि रामायण के आरम्भ में 'शोक: श्लोकत्वमागत:' इस कथन के द्वारा वाल्मीकि ने स्वयं ही करूण रस की सूचना दी है और सीता के आत्यन्तिक वियोग तक अपने प्रबन्ध का निर्माण कर उन्होंने करूण रस का पूर्ण निर्वाह किया है। फलत रामायण का अंगीरस 'करूणा' ही है (ध्वन्यालोक, चतुर्थ उद्योत, पृष्ट 237) अन्य रस जैसे श्रृंगार और वीर अंग रस हैं। वाल्मीकि के अनुसरणकर्ता कवियों ने भी अपने काव्यों में करूण रस का परिपोष किया है।

वाल्मीकि समग्र कविसमाज के उपजीव्य है, विशेषत: कालिदास तथा भवभूति के। इन दोनों महाकवियों ने रामायण का गाढ अनुशीलन किया था और इनकी कविता में हमें जो रस मिलता है उसमें रामायण की भक्ति कम सहायक नहीं रही है। कालिदास का श्रृंगार रस सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, परन्तु उनका 'करूण' रस कम प्रभावशाली नहीं हैं कालिदास ने उभयविध 'करूण' को उपस्थित कर उसे सांगोपांग रूप से दिखलाया है। पत्नी की करूणा का रूप हम रघुवंश के 'अज-विलाप' में पाते है और पति के निमित्त पत्नी की करूण परिवेदना 'रति-विलाप' के रूप में हमें रूलाती है। ताप से लोहा भी पिघल उठता है, तब कोमल मानव-चित्त सन्ताप से मृदु बन जायगा- क्या इस विषय में संदेह के लिए स्थान है ? 'अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु? कालिदास के इन करूण वर्णनों में मानव-हृदय को प्रभावित करने की क्षमता है परन्तु भवभूति के उत्तर -रामचरित में तो यह अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गया है। यह भवभूति का ही काम था कि उन्होंने सीता के वियोग में राम को रोते देखकर पत्थर को रूलाया है और वज्र के हृदय को भी विदीर्ण होते दिखाया है – अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदय। भवभूति ने करूण को 'एको रस:' –मुख्य रस, अर्थात् समस्त रसों की प्रकृति माना है और अन्य रसों को उनकी विकृति माना है। एको रस:

करूण एव निमित्तभेदात्' - इस कथन के मूल को हमें वाल्मीकि के अन्दर खोजना चाहिये। वाल्मीकि का यह महाकाव्य पृथ्वीतलों को विदीर्ण कर उगनेवाले उस विराट् वटवृक्ष के समान है, जो अपनी शीतल छाया से भारत के समस्त मानवों को आश्रय देता हुआ प्रकृति की विशिष्ट विभूति के समान अपना मस्तक ऊपर उठाये हुए खडा है। महाकाव्य प्रधानतया वीर-रस प्रधान हुआ करते हैं, जिनमें युद्ध का घोष, विजय-दुन्दुभि का गर्जन तथा सैनिकों का माहात्म्य प्रदर्शित होता है परन्तु रामायण माहात्म्य वीर-रस के प्रदर्शन में नहीं हैं। किसी देवचरित के वर्णन में भी रामायण का गौरव नहीं है; क्योंकि महर्षि वाल्मीकि ने जब आदर्श गुणों से मण्डित किसी व्यक्ति का परिचय पूछा ,तब नारद ने एक मानव को ही उन अनुपम गुणों का भाजन बतलाया-'तैर्युक्त: श्रूतयां नर:' रामायण नर-चरित्र का ही कीर्तन है। भारतीय गार्हस्थ्य -जीवन का विस्तृत चित्रण रामायण का मुख्य उद्देश्य प्रतीत हो रहा है। आदर्श पिता, आदर्श माता, आदर्श भ्राता, आदर्श पति , आदर्श पत्नी -आदि जितने आदर्शो को इस अनुपम महाकाव्य में आदि कवि की शब्द-तूलिका ने खींचा है वे सब गृहधर्म के पट पर ही चित्रित किये गये हैं। इतना ही क्यों, राम-रावण का वह भयानक युद्ध भी इस काव्य का मुख्य उद्देश्य नहीं है। वह तो राम-जानकी-पति-पत्नी- की परस्पर विशुद्-प्रीति को पुष्ट करने का एक उपकरण-मात्र है और ऐसा होना स्वाभाविक ही है। रामायण को भारतीय सभ्यता ने अपनी अभिव्यक्ति के लिये प्रधान साधन बना रखा है और भारतीय सभ्यता की प्रतिष्ठा गृहस्थाश्रम है। अत: यदि इस गार्हस्थ्य धर्म की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिये आदिकवि ने इस महाकाव्य का प्रणयन किया तो इसमे आश्चर्य ही क्या है ? रामायण तो भारतीय सभ्यता का प्रतीक ठहरा, दोनों में परस्पर उपकार्योपकारक-भाव बना हुआ है । एक को हम दूसरी की सहायता से समझ सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न-1

निम्नलिखित प्रश्नों में सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिये -

1. निम्नलिखित में आदि कवि कौन है।

क. कबीरदास ख. तुलसीदास ग. **वाल्मीकि** घ. इनमें से कोई नहीं

2. रामायण के रचनाकार है।

क. आनन्दवर्द्धन ख. **वाल्मीकि** ग. तुलसीदास घ. कालीदास

3. रावण का वध किसने किया था।

क. **रामचन्द्र** ख. कृष्ण ग. ब्रह्मा घ. शिव

4. संस्कृत की आलोचना-परम्परा में कौन 'सिद्धरस' प्रबन्ध कहा जाता है

क. **रामायण** ख. महाभारत ग. ध्वन्यालोक घ. कोई नहीं

महर्षि वेदव्यास का परिचय—

व्यासगिरां निर्यासं सारं विश्वस्य भारतं वन्दे।
भूषणतयैव संज्ञां यदडिकतां भारती वहति ।।

रामायण तथा महाभारत हमारे जातीय इतिहास हैं। भारतीय सभ्यता का भव्य रूप इन ग्रन्थों में जिस प्रकार फूट निकलता है वैसा अन्यत्र नहीं। कौरवों और पाण्डवों का इतिहास – वर्णन ही इस ग्रन्थ का उद्देश्य नहीं है, अपितु हमारे हिन्दू-धर्म का विस्तृत एवं पूर्ण चित्रण भी प्रयोजन है। महाभारत का शान्तिपर्व जीवन की समस्याओं को सुलझाने का कार्य हजारों वर्षो से करता आ रहा है। इसलिए इस इतिहास ग्रन्थ को हम अपना धर्मगन्थ मानते आये हैं, जिसका पठन-पाठन श्रवण-मनन, सब प्रकार से हमारा कल्याणकारक है। इस ग्रन्थ का सांस्कृतिक मूल्य भी कम नहीं है। सच तो यह है कि केवल इसी ग्रन्थ के अध्ययन से हम अपनी संस्कृति के शुद्ध स्वरूप से परिचय पा सकते हैं। भारतीय साहित्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ 'भगवद्गीता' इसी महाभारत का एक अंश है। इसके अतिरिक्त 'विष्णुसहस्रनाम', 'अनुगीता',

'भीष्मस्तवराज', 'गजेन्द्रमोक्ष' जैसे आध्यात्मिक तथा भक्तिपूर्ण ग्रन्थ इसी के अंश हैं। इन्हीं पॉच ग्रन्थों को 'पंचरत्न' के नाम से पुकारते हैं। इन्हीं गुणों के कारण महाभारत 'पंचम वेद' के नाम से विख्यात है ।

वाल्मीकि के समान व्यास भी संस्कृत कवियों के लिए उपजीव्य हैं। महाभारत के उपाख्यानों का अवलम्बन कर ही कालान्तर में हमारे कवियों ने काव्य, नाटक, गद्य, चम्पू, पद्य , कथा, आख्यायिका आदि नाना प्रकार के साहित्य की सृष्टि की है। इतना ही क्यों ? जावा,सुमात्रा के साहित्य में भी महाभारत विद्यमान है। वहॉ के लोग भी महाभारत के कथानक से उसी प्रकार शिक्षा ग्रहणकरते हैं तथा पाण्डव-चरित के अभिनय से उसी प्रकार मनोरंजन करते हैं जिस प्रकार भारतवासी। महाभारत इतना विशाल है कि व्यासजी का यह कथन सर्वथा उचित प्रतीत होता है- 'इस ग्रन्थ में जो कुछ है वह अन्यत्र है, परन्तु जो कुछ इसमें नहीं है, वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है।[1] प्राचीन राजनीति को जानने के लिए हमें इसी ग्रन्थ की शरण लेनी पड़ती है। विदुरनीति, जिसमें आचार तथा लोकव्यवहार के नियमों का सुन्दर निरूपण है, महाभारत का ही एक अंश है। इस प्रकार ऐतिहासिक, धार्मिक , राजनीतिक आदि अनेक दृष्टियों से महाभारत एक गौरवपूर्ण ग्रन्थ है।

महाभारत के रचयिता महर्षि वेदव्यास का सम्बन्ध महाभारत के पात्रों के साथ बहुत ही घनिष्ठ है। उनकी माता का नाम सत्यवती था। मल्लाहों के राजा दासराज के द्वारा जन्मकाल से ही उनकी रक्षा तथा पोषण हुआ था। यमुना के किसी द्वीप में जन्म के कारण व्यास जी 'द्वैपायन' कहलाते थे, शरीर के रंग के कारण 'कृष्णमुनि' तथा यज्ञीय उपयोग के लिए एक को वेद चार संहिताओं में विभाग करने के कारण 'वेदव्यास' के नाम से विख्यात थे। वे धृतराष्ट्र पाण्डु तथा विदुर के जन्मदाता ही नहीं थे, प्रत्युत पाण्डवों का विपत्ति के समय छाया के समान अनुगमन करने वाले थे तथा अपने उपदेशों से उन्हें धैर्य, ढाढस तथा न्यायपथ पर आरूढ़ रहने की शिक्षा दिया करते थे। कौरवों को युद्ध से विरत् करने के लिए इन्होंने कोई भी प्रयत्न उठा नहीं रखा, परन्तु विषय –भोग के पुतले इन कौरवों ने इनके उपदेशों को लात मारकर अपनी करनी का फल खूब ही पाया। इनसे बढकर भारतीय युद्ध के वर्णन करने का अधिकारी कोई दूसरा विद्वान् नहीं था। इन्होंने तीन वर्षो तक सतत परिश्रम से – सदा उत्थान से –इस अनुपम ग्रन्थ की रचना की (आदिपूर्व-56/52):-

त्रिभिर्वर्षै: सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनि:।
महाभारतमाख्यानं कृतवानिदमुत्तमम् ।।

ऐसे महनीय ग्रन्थ की तीन वर्षो के भीतर रचना का कार्य ग्रन्थकार की अनुपम काव्य-प्रतिभा तथा अदम्य उत्साह का पर्याप्त सूचक है।

आजकल महाभारत में एक लाख श्लोक मिलते हैं। इसलिए इसे 'शतसाहस्र-संहिता' कहते हैं। इसका यह स्वरूप कम से कम डेढ़ हजार वर्ष से पुराना अवश्य है, क्योंकि गुप्त –कालीन शिलालेख में यह 'शतसाहस्री संहिता' के नाम से उल्लिखित हुआ है। विद्वानों का कहना है कि महाभारत का वह रूप अनेक शताब्दियो में विकसित हुआ। बहुत प्राचीन काल से अनेक गाथाएँ तथा आख्यान इस देश में प्रचलित थे, जिनमें कौरवों तथा पाण्डवों की वीरता का वर्णन किया था। अथर्ववेद में परीक्षित का आख्यान उपलब्ध होता है। अन्यवैदिक ग्रन्थों में यत्र-तत्र महाभारत के वीर पुरूषों की बातें उल्लिखित मिलतीहैं। इन्हीं सब गाथाओं तथा आख्यानों को एकत्र कर महर्षि वेदव्यास ने जिस काव्य का रूप दिया है वही आजकल का सुप्रसिद्ध महाभारत है।

महाभारत का परिचय—

महाभारत के विकास के तीन क्रमिक स्वरूप माने जाते हैं- (1) जय, (2) भारत, (3) महाभारत। इस ग्रन्थ का मौलिक रूप (1) 'जय' नाम से प्रसिद्ध था। इस ग्रन्थ में नारायण, 'महाभारत' का मूल प्रतीत होता है। वहीं स्वयं लिखा हुआ है कि इसका प्राचीन नाम जय था। पाण्डवों के विजय-वर्णन के कारण ही इस ग्रन्थ का ऐसा नामकरण किया गया है।

(2) भारत – 'जय के अनन्तर विकसित होने पर इस ग्रन्थ का अभिधान पड़ा - भारत। नाम से प्रतीत होता है कि यह भारतवंशी कौरवों तथा पाण्डवों के युद्ध का वर्णन परक ग्रन्थ था। उस समय उसका परिणाम केवल चौबीस सहस्र श्लोक था और यह आख्यानों से रहित था। (3) उपाख्यानों के समावेश ने इसे भारत से 'महाभारत' का रूप प्रदान किया, जो अपने 'खिल पर्व '(अर्थात् परिशिष्ट रूप) 'हरिवंश' से संयुक्त होकर परिमाण में चतुर्गुण हो गया –एक लाख श्लोक वाला।

(3) **महाभारत** - लगभग पॉच सौ वर्ष ईस्वी पूर्व विरचित आश्वलायन गृह्यसूत्र में 'भारत' के साथ 'महाभारत' का नाम निर्दिष्ट है। भारत के वर्तमान रूप में परिबृंहण का कार्य उपाख्यानों के जोड़ने से ही निष्पन्न हुआ है। इन उपाख्यानों में कुछ तो प्राचीन ऋषि तथा राजाओं के जीवन से सम्बद्ध होने के कारण घटना-प्रधान हैं, कतिपय तत्कालीन लोक –कथा के ही साहित्यिक संस्करण हैं और इस दृष्टि से इनकी तुलना जातकों के साथ की जा सकती है। अध्यात्म, धर्मतथा नीति की विशद विवेचना ने इस महाभारत को भारतीय धर्म तथा संस्कृति का विशाल 'विश्वकोष' बनाने में कुछ उठा नहीं रखा। डाक्टर सुखठणकर का प्रमाणपुष्ट मत है कि भृगुवंशी ब्राह्मणों के द्वारा किये गये सम्पादनों का ही फल महाभारत का वर्तमान वृद्धिंगत रूप है। कुलपति शौकन स्वयं भार्गव थे, उनकी जिज्ञासा भार्गववश की कथा सुनने की थी। तत्र वंशमहं पूर्वं श्रोतुमिच्छामि भार्गवम्। महाभारत के नाना उपाख्यानों का सम्बन्ध स्पष्टरूप से भार्गवों के साथ है। और्व (आदि) कार्तवीर्य (वन) , अम्बोपाख्यान (उद्योग) , विपुला (शान्ति), उर्त्तक (अश्व0) इन समग्र विख्यात् आख्यानों का सीधा सम्बन्ध भार्गवों के साथ है। आदि पर्व के प्रथम 53 अध्याय (पौलोम तथा पौष्यपर्व) भार्गववंशीय कथा से अपना सम्बन्ध रखता है।

महाभारत का रचना काल—

आज उपलब्ध महाभारत लक्ष श्लोकात्मक हैं। यह स्वरूप अठारह पर्वो का न होकर हरिवंश से संयुक्त करने पर ही सिद्ध होता है। परिशिष्ट होनेसे हरिवंश भी महाभारत का अविभाज्य अंग माना जाता था और इन दोनों को मिलाने पर ही एक लाख श्लोक की संख्या निर्णीत होती है। इस 1 महाभारत के काल-निर्णय के निमित्त कतिपय प्रमाण उपस्थित किये जाते है।

(क) अठारह पर्वो का यह ग्रन्थ तथा हरिवंश संवत् 535 और 635 के बीच जावा तथा बाली द्वीपों में विद्यमान थे। कविभाषा में अनूदित समग्र ग्रन्थ के आठ पर्व-आदि, विराट, उद्योग, भीष्म, आरमवासी, मुसल,प्रस्थानिक और सवर्गरोहण-बाली में इस समय उपलब्ध हैं और कुछ प्रकाशित भी हुए हैं। अनुवाद के बीच-बीच में मूल श्लोक भी दिये गये है, जो महाभारत के श्लोक से मिलते हैं। फलत: 535 सं0 से कम से कम दो सौ वर्ष पूर्व भारत में महाभारत का प्रामाण्य अंगीकृत था।

(ख) गुप्त शिलालेखों में एक शिलालेख (चेदि संवत् 197 विक्रमी 502=445 ईस्वी) में महाभारत का उल्लेख 'शतसाहस्री संहिता' अभिधान द्वारा किया गया है। अत: इस समय से दो सौ वर्ष पूर्व महाभारत को वर्तमान रूप में होना अनुमान सिद्ध है।

(ग) महाकवि अश्वघोष ने अपने 'वज्रसूची उपनिषद्' में हरिवंश के श्राद्ध माहात्म्य में से 'सप्तव्याधा दशार्णेषु' (हरिवंश 24/20, 21) इत्यादि श्लोक तथा महाभारत के ही अन्य श्लोक (शान्तिपर्व 261/17) पाये जाते हैं। इससे प्रकट है कि प्रथम शती से पूर्व हरिवंश को मिलाकर वर्तमान महाभारत प्रचलित था।

(घ) आश्वलायन गृह्यसूत्रों में (3/4/4) भारत और महाभारत का पृथक –पृथक उल्लेख किया गया है। बौधायन धर्मसूत्रों (2/2/26) के एक स्थान पर महाभारत वर्णित ययाति उपाख्यान का एक श्लोक मिलता है (आदि 78/10) तथा बौधायन गृह्य सूत्र में 'विश्णुसहस्रनाम' का स्पष्ट उल्लेख ही नहीं है, प्रत्युत् इसमें (2/22/9) गीता का 'पत्रं पुष्पं फलं तोय' श्लोक (गीता9/26) उद्धृत है। बौधायन ईस्वी सन् से लगभग चार सौ वर्ष पहिले हुए थे- ऐसा डॉ0 बूलर ने प्रमाणित किया है।

(ड़) महाभारत में जहॉं विष्णु के अवतारों का वर्णनकिया गया है, वहॉं बुद्धका नाम तक नहीं है। नारायणीयोपाख्यान (शान्तिपर्व 339/100) में दश अवतारों के भीतर हंस को प्रथम अवतार माना गया है और बुद्ध का उल्लेख न कर 'कल्कि'का निर्देश कृष्ण के तुरन्त बाद में किया गया है। फलत: बुद्ध से अनभिज्ञ महाभारत बुद्धपूर्वयुग की नि:संदिग्ध रचना है।

(च) चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में आनेवाल यूनानी राजदूत मेगस्थानीज ने अपने भारत-विषयक ग्रन्थ में लिखा है कि हिरेक्लीज अपने मूल पुरूष डायोनिसस से पन्द्रहवॉं था और उसकी पूजा मथुरा के निवासी शौरसेनीय लीग आदर के साथ करते थे। हिरेक्लीज से श्रीकृष्ण का ही बोध होता है, जो महाभारत के अनुसार दक्ष प्रजापति से पन्द्रहवें पुरूष थे (अनुशासन 14/7/25-33)। इतना ही नहीं, मेगास्थनीज ने विचित्र लोगों-कर्ण प्रावरण, एकपाद , ललटाक्ष आदि- का और सोना निकालनेवाली चीटियों का जो वर्णन अपने ग्रन्थ में किया है वह महाभारत के ही आधार पर है (सभापर्व 51 और 52 अ0)। फलत: वह केवल महाभारत से ही परिचित नहीं था, प्रत्युत् उस युग में प्रचलित कृष्ण-चरित तथा कृष्ण पूजा से भी अवगत था। इन प्रमाणों के साक्ष्य पर यह निर्विवाद सत्य है कि वर्तमान महाभारत का निर्माण बुद्ध के पूर्व युग से सम्बद्ध है। ईस्वी पूर्व पन्चम अथवा षष्ठ शती में उसकी रचना हुई।

ग्रन्थ परिचय—

महाभारत के खण्डों को पूर्व कहते हैं। ये संख्या में 18 अठारह हैं-

(1) आदि, (2) सभा, (3) वन, (4) विराट, (5) उद्योग, (6) भीष्म , (7) द्रोण, (8) कर्ण, (9) शल्य, (10) सौप्तिक, (11) स्त्री, (12) शान्ति, (13) अनुशासन, (14) अश्वमेघ, (15) आश्रमवासी, (16) मौसल, **(17)** महाप्रस्थानिक, (18) स्वर्गारोहण।

रामायण एवं महाभारत का तुलनात्मक अध्ययन—

रामायण और महाभारत की तुलना करने से अनेकआवश्यक तथ्यों का पता चलता है। मुख्य तुलना दो विषयों में की जा सकती है। प्रथम तो उनके वर्णनीय विषय को लेकर और दूसरी उनके रचना-काल को लेकर। रामायण आदिकाव्य माना जाता है और महाभारत इतिहास गिना जाता है। इस पारस्परिक भेद का यह अभिप्राय है कि रामायण के काव्यगत चमत्कार महत्व की वस्तु है। महाभारत में प्राचीनकाल के अनेक प्रसिद्ध राजाओं के इतिवृत्त का वर्णन करना ही ग्रन्थकार का उद्देश्य है। इसीलिए रामायण में राम-रावण की घटना ही सर्वभावेन मुख्य है। अन्य छोटे-मोटे कथानक भी हैं, परन्तु वे प्रधान वृत्त को पुष्ट करने के लिए ही रचित हैं। उधर महाभारत में प्रधान घटना कौरवों तथा पाण्डवों का युद्ध है, पर इसके साथ-साथ प्राचीन काल की अनेक कथाऍं अवान्तर रूप से दी हुई , जो मुख्य घटना से कम महत्व नहीं रखती। दोनों का भौगोलिक विस्तार भिन्न-भिन्न है। रामायण में जिस भारतवर्ष की चर्चा है उसकी दक्षिणी सीमा विन्ध्य और दण्डक है, पूर्वी सीमा विदेह है तथा पश्चिमी सीमा सुराष्ट्र है; परन्तु महाभारत के समय आर्यावर्त का विशेष विस्तार दीख पड़ता है। पूर्वी सीमा गंगासागर का संगम है, दक्षिण में चोल तथा मालाबार प्रान्तों की सत्ता है। इतना ही नहीं , लंका के भी अधिपति उपहार लेकर लेकर स्वयं उस यज्ञ में उपस्थित होते हैं। फलत: भारतवर्ष का भौगोलिक विस्तार उस युग में रामायण की अपेक्षा अत्यधिक है। दोनों के स्वरूप में भी पर्याप्त अन्तर है। रामायण में एक ही कवि की कोमल लेखनी ने अपना चमत्कार दिखलाया है। कविता

में समरसता, शब्द और अर्थ का मंजुल सामन्जस्य है, जिससे यह स्पष्ट है कि इसके रचना का श्रेय किसी एक ही व्यक्ति को है; परन्तु महाभारत के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता। वह तो अनेक शताब्दियों के साहित्यिक प्रयासों का फल है। धीरे-धीरे अपने अल्पकलेवर से बढता हुआ वह लक्षश्लोकात्मक विशालकाय ग्रन्थ के रूप में आ गया है। रामायण के लेखक की चर्चा कहीं नही है, प्रत्युत लव तथा कुश के द्वाराउसके गाये जाने के तथ्य से हम परिचित है। परन्तु महाभारत लिपिबद्ध किया गया ग्रन्थरत्न है,जिसके लिपिबद्ध करने का श्रेय स्वयं गणेशजी को प्राप्त है। व्यास जी बोलते जाते थे और गणेशजी उसे लिखते जाते थे।

रामायण और महाभारत में किसकी रचना पहले हुई ? यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। गत शताब्दी के प्रसिद्ध जर्मन विद्वान डाक्टर वेबर ने सर्वप्रथम यह कहना प्रारम्भ किया कि रामायण की अपेक्षा महाभारत की रचना पहले हुई। रामायण में सुन्दर पदविन्यास तथा सुबोध रचना को वे अर्वाचीनता मानते थे। भारत के भी कतिपयविद्वानों ने इसी मत की घोषणा की , परन्तु भारतीय परम्परा उक्त मत के अत्यन्त विरूद्ध है। वाल्मीकि आदिकवि और महाभारत के रचयिता व्यास उनके पश्चाद्वर्ती द्वितीय कवि हैं। युग के हिसाब से भी अन्तर पड़ता है। वाल्मीकि त्रेतायुग में होने वाले रामचन्द्र के समकालिक हैं और व्यास द्वापरयुग में उत्पन्न होनेवाले पाण्डवों के समसामयिक हैं। इतना ही नहीं, दोनों ग्रन्थों के अनुशीलन से स्पष्ट पता चलता है कि कालक्रम में वाल्मीकि-रामायण महाभारत से पहले की रचना है। इसके पोषक प्रमाण मुख्यत: नीचे दिये जाते है:--

(1) महाभारत के पात्रों के चरित्र में तथा घटनाओं में व्यवहारिकता का पुट है। जुआ खेलना, खेल में हार जाना, राज्य का न मिलना और उसके लिए युद्ध करना आदि घटनायें व्यवहार तथा विश्वास के क्षेत्र से बाहर नहीं है; पर रामायण में ऐसी घटनाएँ हैं जिन पर साधारण मनुष्य अपनाविश्वास नहीं जमा पाता। सन्तान के लिए पुत्रेष्टि याग करना रीछ और बानरों की सहायता से लड़ना, समुन्द्र के ऊपर पत्थर का विराट पुल बॉधना, रावण का दश सिर होना आदि घटनाएँ मानव-संस्कृति की उस प्राथमिक दशा की ओर करती हैं जब आश्चर्यजनक घटनाओं में विश्वास करना कोई अस्वाभाविक बात न थी।

(2) रामायण में आर्य-सभ्यता अपने विशुद्ध रूप में चित्रित की गई है। उसमें म्लेच्छों का, जो सम्भवत: भिन्न वर्ग तथा संस्कृति के अनुयायी थे, तनिक भी सम्पर्क नही दीख पड़ता, परन्तु महाभारत में म्लेच्छों का सम्पर्क पर्याप्त रूप से विद्यमान है। दुर्योधन की आज्ञा से जिस पुरोचन नामक मन्त्री ने लाख (लाक्षा) का घर बनाया था, वह म्लेच्छ ही था। महाभारत के युद्ध में दोनों ओर से लड़ने वाले अनेक म्लेछ राजाओं के भी नाम मिलते हैं। इतना ही नहीं, विद्वान लोग म्लेच्छो की भाषा से भी परिचत थे। विदुर ने इसी म्लेच्छ-भाषा में युधिष्ठिर को लाख के घर की घटना की सूचना पहले ही सभा में दी थी। उक्त भाषा का प्रयोग इसलिए किया गया कि अन्य सभासद् इसकों समझ न सकें।

(3) भौगोलिक दृष्टि से विचार करने पर भी महाभारत पीछे लिखा गया मालूम होता है। रामायण की रचना के समय में दक्षिण भारत में अनार्य जंगली जातियों का ही निवास था। आर्यो की सभ्यता विन्ध्य पर्वत तक ही सीमित थी, परन्तु महाभारत के समय में दक्षिण भारत राजनीतिक दृष्टि से व्यवस्थित सुशासित तथा सभ्य दीख पड़ता है। भीष्मपर्व में दक्षिण भारत का यह राजनीतिक परिवर्तन सूचित करता है कि महाभारत की रचना रामायण से पीछे हुई।

(4) महाभारत युद्ध में युद्धकला की विशेष उन्नति दिखाई पडती है। द्रौपदी के स्वयंबर में सीता-स्वयंवर के समान केवल एक धनुष को तोड़ देना ही वीरत्व का मापदण्ड नहीं है, प्रत्युत एक विशिष्ट प्रकार से लक्ष्य भेद करना वीरता की कसौटी है। लंकायुद्ध में योद्धागण परस्पर केवल पत्थरों और वृक्षों से प्रहार करते हैं, परन्तु महाभारत युद्ध में सैनिक लोग विशिष्ट सेनापति की देख-रेख में लड़ते हैं। व्युह की रचना इस युद्धकी

महती विशेषता है, जिसमें अल्पसंख्यक सैनिक बहुसंख्यक सेना के आक्रमण को रोकने में समर्थ होता हैं। युद्धकला का यह महाभारत –कालीन विकास इस बात को प्रमाणित कर रहा है कि महाभारत बाद की रचना है।

(5) दोनों की सामाजिक दशा में विशेष अन्तर है रामायण का समाज आदर्शवाद कर प्रतिष्ठित है। पिता कुटुम्ब का नेता तथा पोषक है। राम आदर्श पुत्र है, भरत भ्रातृत्व के गुणों के आगार हैं, सुग्रीव मित्रता की कसौटी हैं। ऊपर महाभारत की सामाजिक दशा में आदर्शवाद के लिए स्थान नहीं है। भरत के समान भीम अपने पितृतुल्य जेठे भाई के आदेश का पालन करना अपना कर्तव्य नहीं मानते। यदि धर्मराज संधि करने के इच्छुक हैं, तो वे उनका घोर विरोध(अश्वत्थामा द्वारा) करने पर तुले हैं। विजयकी सिद्धि के लिए चोरी करना या असत्य भाषण किसी प्रकारका पाप नहीं माना जाता था (अश्वत्थामा हतौ नरो वा कुंजरो वा)।

(6) रामायण में नैतिक भावना अपने ऊँचे आदर्श पर प्रतिष्ठित है, परन्तु महाभारत में यह भावना ह्रास पाकर नीचे खिसकने लगी है। मैथिली तथा द्रौपदी के चरित्र की तुलना इसे स्पष्ट करती है। सुन्दरकाण्ड में हनुमान सीता को अपनी पीठ पर बैठा कर राम के पास चलने का प्रस्ताव करते हैं, परन्तु सीता पर-पुरूष के शरीर का स्पर्श नहीं कर सकती हैं। अत: वह इसे तिरस्कार कर देती हैं। रावणवध के अनन्तर सीता कठिन अग्नि-परीक्षा में तप्त होकर अपने पावन चरित्र को सिद्ध करती हैं। महाभारत की द्रौपदी काम्यक वन में जयद्रथ के द्वारा हरण की जाती हैं, परन्तु उसका पुनर्ग्रहण विना किसी रोक-टोक के धीरे से कर लिया जाता है।

(7) रामायण में महाभारत की घटनाओं तथा पात्रों का उल्लेख तक नही है, परन्तु महाभारत रामायण की कथा तथा पात्रों से पूरी तरह परिचित है। वनपर्व के तीर्थ-यात्रा प्रसंग में श्रृ ङ्गवेरपुर' (प्रयाग जिले का सिंगरामऊ, वन पर्व85/65) तथा गोप्रतार' (फैजाबाद में सरयू का गुप्तार घाट , वनपर्व 85/70) तीर्थ में गिने गये हैं, क्योंकि पहले स्थान पर राम ने गंगा पार किया और दूसरे पर वे अपनी प्रजाओं के साथ भूलोक से स्वर्ग में चले गये। वनपर्व के अठारह अध्यायों में (अ0 274-291) रामोपाख्यान पर्व है, जिसमें रामचन्द्र की कथा संक्षेप से वर्णित है। इस उपाख्यान में वाल्मीकीय रामायण के श्लोक भी ज्यों के त्यों रखे गये हैं। उपमाएँ तथा कल्पनाएँ भी वाल्मीकि से ली गई है। रामायण के श्लोकों की समता केवल रामोपाख्यान में ही उपलब्ध नहीं होती, प्रत्युत महाभारत के अन्य पर्वो में भी यह समता तथा निर्देश नितान्त सुस्पष्ट हैं। उदाहरणार्थ –माया सीता के मारते समय इन्द्रजीत ने हनुमानजी से जो वचन कहे थे, वे ही वचन द्रोणपर्व में भी अक्षरश: प्राप्त होते हैं।

न हन्तव्या: स्त्रिय:इति यद् ब्रवीषि प्लवंगम।
पीडाकरममत्रिणां यत्तु कर्तव्यमेव तत्।। (युद्ध0 81-28)

महाभारत के द्रोण पर्व में इसका उल्लेख वाल्मीकि के नाम से है-

अति चायं पुरा गीत: श्लोको वाल्मीकिना भुवि।
न हन्तव्या: स्त्रिय इति यद् ब्रवीषि प्लवंगम।।
सर्वकालं मनुष्येण व्यवसायवता सदा।
पीडाकरममित्राणां यत् स्यात् कर्तव्यमेव तत्।।

इन प्रमाणों के अनुशीलन से किसी भी निश्पक्ष आलोचक को भारतीय परम्परा की सत्यता पर अविश्वास नहीं हो सकता कि रामायण कालक्रम से महाभारत से पूर्व की रचना है।

अभ्यास प्रश्न-2

निम्नलिखित में सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिये –

1.द्वैपायन किसे कहा जाता है।

क. वाल्मीकि ख. **व्यास** ग. कृष्ण घ. बलराम

2. शतसाहस्री संहिता किसे कहते है।

क. रामायण ख. **महाभारत** ग. सनतकुमार संहिता घ. पुराण

3. महाभारत का प्राचीन नाम है।

क. **जय** ख. महाभारत ग. संहिता घ. कोई नही

4. भारत के साथ महाभारत का नाम किस ग्रन्थ में मिलता है।

क. गौतम धर्मसूत्र ख. पारस्कर गृह्यसूत्र ग. **आश्वलायन गृह्यसूत्र** घ. कोई नहीं

5. महाभारत में कितने श्लोक है।

क. **1 लाख** ख. 2 लाख ग. 3 लाख घ. 4 लाख

6. महाभारत के उपाख्यानों का सम्बन्ध सर्वाधिक किस वंश से है।

क. **भृगु** ख. अंगिरा ग. वशिष्ठ घ. अत्रि

7. यूनानी राजदूत मेगास्थनीज किसके कार्यकाल में आया था।

क. समुद्रगुप्त ख. विष्णुगुपत ग. **चन्द्रगुप्त** मौर्य घ. रामगुप्त

8. महाभारत के खण्डों को क्या कहा जाता है।

क. अध्याय ख. **पर्व** ग. रत्न घ. मरीचि

1.3.1.3 संस्कृत महाकाव्य—

महाकाव्य का लक्षण— काव्यशास्त्र में रस सम्प्रदाय के आचार्य विश्वनाथ द्वारा रचित साहित्यदर्पण में महाकाव्य के स्वरूप तथा गुण-दोषों का शुद्ध वर्णन किया गया है जिसका वर्णन करते हुए आचार्य कहते है:-

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियों वाऽपिधीरोदात्तगुणान्वितः॥
एकवंशभवा भूपा कुलजा बहवोऽपि वा।
श्रृंगार वीर शान्तानामेकोड्.गी रस इश्यते॥
अड्.गानि, सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटक सन्धयः।
इतिासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सदाश्रयम्॥
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेश्वेकं च फल भवेत।
आदौ नामस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा॥
क्वचिद् निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः॥
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह।
नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते॥
सर्गान्ते भावि सर्गस्य कथायां सूचनं भवेत्।
सन्ध्या सूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वान्तवासराः
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवन सागराः।
सम्भोग विप्रलम्भौ च मुनिस्वर्ग पुराध्वराः॥
रणप्रयाणो पयममन्त्र पुत्रोदयादयः।
वर्णननीया यथायोगं सांगोपांगा अमी इह॥
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्ये तरस्य वा।
नामास्य सर्गो पादेयकथया सर्गनाम तु॥

महाकाव्य सर्गों में विभक्त होता है। नायक कोई देवता होता है या उच्च वंशोत्पन्न क्षत्रिय होता है। वह धीरोदात्त प्रकृति का नायक होता है। एक वंश के कई राजा भी किसी एक महाकाव्य के नायक हो सकते हैं। प्रधान रस श्रृगाँर वीर या शान्त होता है और अन्य रस उसके सहायक होते हैं। कथावस्तु नाटक के समान होती है। वह ऐतिहासिक अथवा किसी सज्जन के सत्कर्म से सम्बन्धित हो सकती है। नाटक में वर्णित सभी संधियॉ भी महाकाव्य में होती हैं। पुरुषार्थ - चतुष्ट्य का वर्णन महान काव्यों में किया जाता है और उन चारों पुरुषार्थों में किसी एक पुरुषार्थ की प्राप्ति का लक्ष्य होता है। उसकी प्राप्ति के साधनों का वर्णन प्रधान होता है। महाकाव्य के आरम्भ में त्रिविध मंगलाचरणें में से एक होना चाहिए। वर्ण्य विषय में कहीं दुर्जनों की निन्दा तो कहीं सज्जनों के गुणों की प्रशंसा। सन्ध्या ,सूर्योदय, चन्द्रोदय, रात्रि, गोधूलि, दिन, अन्धकार, प्रेमियों का मिलन और वियोग, आखेट, ऋषि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, आक्रमण, विवाह, उपदेश, पुत्रजन्म आदि सभी प्रकार के वर्णन महाकाव्य में होते हैं। छन्द एक सर्ग में एक ही होता है। सर्ग के अन्त में छन्द बदल दिया जाता है। कभी 7 कभी एक ही सर्ग में अनेक छन्द भी द्रष्टव्य होते हैं। महाकाव्य में सर्गों की संख्या आठ से अधिक अथवा कम से कम आठ होनी चाहिए। ये सर्ग न तो बहुत छोटे हो और नहीं बहुत बड़े सर्ग के अन्त में आगे आने वाली कथा की सूचना होती है। महाकाव्य का नामकरण कवि वर्ण्य विषय नायक या किसी अन्य व्यक्ति के नाम पर होता है। प्रत्येक सर्ग का नामकरण उसके अन्तर्गत वर्णित विषय के आधार पर होता है।

कविकुलगुरू महाकविकालिदास का परिचय—

कालिदास ने अपने जीवन के सम्बन्ध में अपने ग्रन्थों में कहीं भी कुछ नहीं लिखा है, किन्तु विद्वत्समाज में यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि कालिदास उज्जयिनी के राजा महाराज विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में एक महारत्न थे। बचपन में इन्होंने कुछ भी पढ़ा लिखा नहीं था। एक स्त्री के कारण इन्हें अनमोल विद्यारत्न प्राप्त हुआ। इसकी कथा इस प्रकार प्रसिद्ध है - महाराज सदानन्द की पुत्री विद्योत्तमा बड़ी विदुषी और सुन्दरी थी। उसको अपनी विद्या पर बहुत गर्व था। उसने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो मुझे शास्त्रार्थ में पराजित करेगा, उसी से मै अपना विवाह करुँगी। उस राजकुमारी के रुप , यौवन और विद्या की प्रशंसा सुनकर दूर - दूर से विद्वान् आते थे , परन्तु शास्त्रार्थ में इससे पराजित होकर चले जाते थे। जब विद्वानो ने देखा कि यह राजकुमारी किसी प्रकार भी वश में नहीं आती है, सबको पराजित कर देती है, तब उसकी विद्वत्ता से लज्जित होकर सभी ने राय की कि किसी ढंग से इसका विवाह ऐसे महामूर्ख के साथ करा दिया जाय कि जिससे यह जीवन भर अपने अहंकार पर पश्चाताप करती रहे। परिणामस्वरुप वे लोग एक मूर्ख की खोज में पड़ गये। एक दिन कहीं रास्ते में जाते हुए देखा कि भेड़ चराने वाला एक आदमी पेड़ के ऊपर जिस डाल पर बैठा है, उसी को जड़ से काट रहा है। विद्वानों ने उसे देखकर समझा कि यह तो बहुत बड़ा मूर्ख है। इसी से विद्योत्तमा का विवाह हो जाय तो अच्छा है। बाद में बड़े प्रेम से नीचे बुलाया और कहा कि चलो हम लोग तुम्हारा विवाह एक राजकुमारी के साथ करा देंगे, परन्तु इस बात का ध्यान रखना कि राजसभा में मुँह से कुछ भी नहीं बोलना, जो कुछ भी कहना हो वह इशारे से कहना। लो, यह यह धोती , चादर , जामा , और पगड़ी पहन लो। पण्डित बनकर हम लोगों के साथ चलो तो तुम्हारा विवाह जरुर करा दिया जायेगा। इस प्रकार पण्डितों की बात पर विश्वास कर मुर्ख पण्डित बनकर राजभवन में पहुँच गया। पहले से ही उपस्थित विद्वानों ने उसका खूब सत्कार किया और उसे सबसे ऊँचे आसन पर बैठा दिया। विद्योत्तमा से कहा कि बृहस्पति के समान ये विद्वान् आपके साथ शास्त्रार्थ करने के लिए आये हुए है। किन्तु इस समय ये तपस्या करने के कारण मौनव्रत लिये हुए हैं। शास्त्रार्थ में आपको जो कुछ कहना हो उसे संकेत से कहिये।

यह सुनकर राजकुमारी ने अपने मन में यह सोचकर कि ईश्वर एक है, एक अंगुली उठाई। उधर मूर्ख ने समझा कि यह एक अंगुली उठाकर मेरी एक ऑख फोड़ने का संकेत कर रही है। इसलिए उसकी दोनों ऑख फोड़ने के अभिप्राय से अपनी दो अंगुलियों को उठाया। इस पर विद्योत्तमा के विरोधी उपस्थित विद्वानों ने इसका अर्थ

लगाया कि ये यह संकेत कर रहे कि आत्मा एक नहीं है किन्तु दो है; एक जीवात्मा तथा दूसरा परमात्मा। विद्वानों के इस कुचक्रूर के परिणामस्वरुप उस राजकुमारी को उससे हार मानकर पूर्व में की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार अपना विवाह उस मूर्ख के साथ कर लेना पड़ा। रात के समय एकान्त में जब दोनों का मिलन हुआ, तब तक किसी तरफ से एक ऊँट चिल्ला उठा। राजकुमारी ने पूछा कि कौन शोर मचा रहा है। उस मूर्ख ने उत्तर दिया कि उट्र चिल्लाता है। राजकुमारी ने चौंककर फिर पूछा कि कैसा शोर है। तब वह उश्ट्र बोलता है श के बदले उष्ट्र बोलता है ष् कहने लगा , क्योंकि वह जन्म से महामूर्ख था , उष्ट्र का शुद्व उच्चारण कैसे कर सकता था। बाद में विद्योत्तमा को पण्डितों की धूर्तता का पता चल गया , इस पर वह पश्चात्ताप करती हुई फूट-फूट कर रोने लगी। बाद में अत्यन्त दुःखी होकर उस मूर्ख को घर के बाहर निकाल दिया और कहा कि तुम विद्वान् होकर आओगे तो मेरे साथ तुम्हारा सम्बन्ध हो सकता है, अन्यथा नहीं। इधर वह मूर्ख इस व्यवहार से बड़ा ही लज्जित हुआ , पहले तो सोचा कि अपना प्राण दे दूँ फिर सोच- समझकर विद्योपार्जन हेतु परिश्रम करने लगा। भगवती काली की उसने बड़ी उपासना की , फलस्वरुप देवी की कृपा से थोड़े ही दिनों में वह एक प्रभावशाली विलक्षण विद्वान् हो गया जिसका नाम संस्कृत- साहित्य ही नहीं , विश्व के इतिहास में अजर - अमर हो गया। सच्ची लगन से क्या नहीं हो सकता है। ये ही हैं चरितनायक कविवर कालिदास , जो उपासना द्वारा भगवती काली की कृपा से महाकवि कालिदास के नाम से प्रसिद्ध हो गये। जब वे कवि होकर अपने घर लौटे , तब घर का दरवाजा बन्द था। उसे खुलवाने के अभिप्राय से इन्होंने संस्कृत में कहा कि 'अनावृतकपाटं द्वार देहि तब विदुषी पत्नी ने प्रश्न किया कि 'अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः' कवि ने अपनी पत्नी विद्योत्तमा के प्रश्न-भूत वाक्य के अन्दर वर्तमान - अस्ति, कश्चिद् और वाग् - इन तीन शब्दों से आरम्भ करके तीन काव्य बना डाले।

अस्ति शब्द से आरम्भ करके - कुमारसम्भव महाकाव्य।

कश्चिद् शब्द से आरम्भ करके - मेघदूत खण्डकाव्य।

वाग् शब्द से आरम्भ करके - रघुवंश महाकाव्य।

विद्योत्तमा को इस प्रकार पति को एक प्रतिभासम्पन्न महाकवि के रुप में पाकर जैसा आनन्द का अनुभव हुआ होगा , वह लिखे के बाहर है। इसी प्रकार कालिदास और विक्रमादित्य तथा कालिदास और भोज के सम्बन्ध में भी कई किंवदन्तियॉ विद्वत्समाज में प्रसिद्ध है , जिन्हें यहॉ लिखकर भूमिका का कलेवर बढ़ाना उचित नहीं। कालिदास कब हुए, कहॉ हुए किस वंश में और उन्होंने कितने ग्रन्थ लिखे , इत्यादि प्रश्नों का अभी तक ठीक-ठीक निर्णय नहीं हो पाया है। क्योंकि उन्होने अपने सम्बन्ध में अपने ग्रंथों के अन्दर कहीं कुछ भी नहीं लिखा है। फिर भी विद्वानों ने उनके ग्रन्थों के आधार पर अब तक जो कल्पनाएँ की हैं , उसी के आधार पर बराबर ही विचार होता आ रहा है।

महाकविकालिदास के ग्रन्थों का परिचय—

किस कालिदास ने कौन-से ग्रन्थ लिखे हैं ? इसका निर्णय करना एक प्रकार से असम्भव - सा है। फिर भी अधिक आलोचकों तथा विद्वानों के मत में उज्जयिनीनरेश महाराजा विक्रमादित्य की अभिरुपभूयिष्ठा सभा को अलंकृत करने वाले कालिदास के 8 ग्रन्थ माने जाते हैं। दो महाकाव्य - एक कुमार - सम्भव , दूसरा रघुवंश ; एक खण्डकाव्य - मेघदूत ; दो स्फुट काव्य - ऋतुसंहार और श्रृंगारतिलक तथा तीन नाटक - एक अभिज्ञानशाकुन्तल , दूसरा मालविकाग्निमित्र ,तीसरा विक्रमोर्वशीय। कुछ लोग नलोदय और श्रुतबोध को भी इन्ही की कृति मानते हैं। विद्वानो की परम्परा में अनेक कालिदास होने की बात प्रसिद्ध हैं। दशम शताब्दी में वर्तमान राजशेखर कवि ने अपने काव्यमीमांसा में तीन कालिदासों का स्पष्ट उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त एकादश शताब्दी में राजा भोज के दरबार में भी एक कालिदास थे , इसका पता वल्लाल कवि - प्रणीत भोजप्रबन्ध से लगता हैं। अनेक कालिदासों को देखकर कुछ आलोचकों ने यह भी माना है कि जैसे आद्यस्वामी शंकराचार्य की परम्परा पर चलने वाले आगे के संन्यासियों को शंकराचार्य कह दिया जाता है , वैसे ही आदि कालिदास के समान कविता

करने वाले कवि को भी कालिदास कहने लग गये थे। इसलिए संस्कृत में अनेक कालिदासों की उपलब्धि विभिन्न समयों में होती है। जो कुछ हो , विद्वान् लोग इस कल्पना कैसे स्वयं समझ लें।

महाकविकालिदास का समय—

कालिदास के समय के सम्बन्ध में प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों में बहुत बड़ा मतभेद है। विभिन्न विद्वानों ने आन्तरिक प्रमाणों के आधार पर कालिदास की सत्ता ई0 पू0 प्रथम से लेकर ईसा की छठी शताब्दी तक मानी है। इस सम्बन्ध में प्रधान रुप से दो मत हैं। एक प्राचीन और दूसरा अर्वाचीन प्राचीन मत के पोषक संस्कृत के भारतीय विद्वान् हैं और अर्वाचीन मत के अनुयायी अंग्रेजी के पाश्चात्य विद्वान् तथा इसके अनुकरण करने वाले कुछ भारतीय विद्वान् हैं।

धन्वन्तरी क्षपणकामरसिंह षङ्कुवेतालभट्ट-घटखर्पर - कालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नवविक्रमस्य ।।

इस जनश्रुति के आधार परभारतीय संस्कृति के विद्वान् मानते हैं कि कविवर कालिदास विद्वत्प्रिय विक्रमसंवत् के प्रवर्तक उज्जयिनी के राजा महाराजाधिराज विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में से एक प्रमुख रत्न थे , जिनके बिना महाराज को एक क्षण भी अच्छा नहीं लगता था। इसकी अद्भूत कवि-कल्पना पर महाराजा सदा मुग्ध रहते थे। कालिदास के ग्रन्थों से भी विक्रमादित्य के दरबार में रहने का संकेत मिलता हैं। शाकुन्तल की प्रस्तावना में विक्रम की अभिरुपभूयिष्ठा परिषद् में विश्वविख्यात शकुन्तला नाटक का अभिनय करने का संकेत हैं। विक्रमोर्वशीय नाटक में यद्यपि राजा पुरुरवा नायक हैं , तथापि विक्रम का स्पष्ट नामोल्लेख है। " अनुत्सेकः खलु विक्रमा-लंकारः " इत्यादि वचनों से भी इसकी पुष्टि होती है कि कालिदास का विक्रम से सम्बन्ध अवश्य था। रामचन्द्र महाकाव्य में तो स्पष्ट उल्लेख हैं कि शकाराति वीर विक्रमादित्य ने कालिदास की बहुत बड़ी ख्याति की थी। देखिए - " ख्यातिं कामपि कालिदासकवयो नीताः शकारातिना "। इसलिए जब तक परम्परागत इन जनश्रुतियों के खण्डन करने के लिए इसके विरुद्ध कोई प्रबल प्रमाण नहीं मिलता , तब तक ' नहाऱमूला जनश्रुतिः ' के आधार पर यह मानना सर्वथा न्यायसंगत है कि महाकवि कालिदास विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में एक महारत्न थे। पाश्चात्य विद्वानों में से केवल सर विलियम जोन्स महोदय ने भारतीय प्राचीन मत को ही प्रामाणिक माना है और अंग्रेजी में शकुन्तला का अनुवाद किया है।

कालिदास के समय के सम्बन्ध में विभिन्न मतभेद—

कालिदास ने प्रथम शताब्दी के शुंगवंशी राजा अग्निमित्र को अपने माल-विकाग्निमित्र नाटक का नायक बनाया है और षष्ठ शताब्दी के महाराज हर्षवर्द्धन के दरबार के महाकवि बाणभट्ट ने अपने हर्षचरित में कालिदास की कविता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। अतः कालिदास का समय ई0 पू0 एक से लेकर षष्ठ शताब्दी के बीच में कहीं होना चाहिए। इस आधार पर कालिदास के समय के सम्बन्ध में प्रधान रुप से तीन मत उपस्थित होते हैं।

1. कालिदास षष्ठ शताब्दी में थे।
2. कालिदास गुप्तनरेशों के समय में थे।
3. कालिदास की सत्ता ई0 पू0 प्रथम शताब्दी में थी।

महाकविभारवि का परिचय एवं समय—

'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के रचयिता के रूप में तथा संस्कृत महाकाव्यों के इतिहास में कालिदास के बाद भारवि का नाम विख्यात है। इन्होंने महाकाव्य के विचित्र मार्ग का प्रवर्तन किया जिसमें भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष पर ही अधिक बल रहता है। पाण्डित्य-प्रकर्ष की अभिव्यक्ति और मूल विषय का त्याग करके लम्बे वर्णनों में उलझ जाना इस मार्ग की विशिष्टता है। पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति अश्वघोष में भी थी किन्तु वे विषय का त्याग नहीं करते थे। भारवि के बाद के कवियों ने दोनों को अपनाया। इसलिए भारवि का एक विशिष्ट स्थान है।

महाकविभारवि का जीवन वृत्त—

संस्कृत के अन्य महान् कवियों के समान भारवि के जीवन-वृत्त के सम्बन्ध में भी अनेक किंवदन्तियों और अप्रामाणिक सूचनाओं का समुदाय प्राप्त होता हैं दण्डी के द्वारा रचित 'अवन्तिसुन्दरीकथा' नामक ग्रन्थ का कुछ अंश प्राप्त हुआ है, जिसका एक नाम अवंतिसुन्दरी कथासार भी है। उसमें भारवि के विषय में कुछ महत्वपूर्ण सूचना दी गयी है। कहा गया है कि भारवि दण्डी के प्रपितामह थे और उनका वास्तविक नाम 'दामोदर' था। भारवि के पिता का नाम नारायणस्वामी था। कुछ विद्वानों का कथन है कि उक्त दामोदर भारवि के अनुज थे और दण्डी इन्हीं दामोदर के प्रपौत्र थे। दामोदर ने भारवि को माध्यम बनाकर राजा विष्णुवर्धन से सम्पर्क किया था। भारवि को वहाँ 'महाशैव' कहा गया है। किरातार्जुनीय में भारवि ने शिव की महिमा का वर्णन भी किया हैं भारवि के मित्र विष्णुवर्धन की पहचान विद्वानों ने सत्याश्रय (चालुक्यनरेश पुलिकेशन् द्वितीय) के अनुज के रूप में की है (615ई॰ के लगभग)।

'किरातार्जुनीयम् ' के द्वितीय सर्ग के श्लोक 'सहसा विदधीत न क्रियाम्' (30) को लेकर कई कथाएँ प्रचलित हैं जिनमें भारवि का योगदान कहा गया है। भारवि को सभी विद्वान् दाक्षिणात्य मानते हैं। सदारऋजन राय ने भारवि द्वारा समुद्र में सूर्यास्त-वर्णन करने के कारण भारवि को पश्चिम समुद्र (अरब सागर) के तट का निवासी सिद्ध किया है।

महाकविभारवि का समय—

भारवि का समय मुख्यतः वाह्य प्रमाणों पर ही आश्रित है। अपनी एकमात्र रचना 'किरातार्जुनीयम्' में ऐसा कोई संकेत इन्होंने नहीं दिया है जिससे इनके काल का निश्चय हो सके। बाह्य प्रमाणों में सबसे महत्त्वपूर्ण ' ऐहोल का शिलालेख ' है जो कर्नाटक राज्य के बादामी जिले में मेगुती नामक ग्राम के निकट एक पहाड़ी पर बने जैन मन्दिर की बाहरी दीवार पर अंकित हैं। इसका समय 634 ई॰ (' शकसंवत् 556) हैं रविकीर्ति नामक कवि ने इस मन्दिर (जिनवेश्म) का निर्माण करके कुछ ऐतिहासिक महत्त्व के श्लोक की रचना कर इसमें उत्कीर्ण कराये थे। उनमें अन्तिम (37 वाँ) पद्य इस प्रकार है-

येनायोजि नवेऽष्मस्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।
स विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः।।

यहाँ रविकीर्ति ने अपने आपकों काव्य के क्षेत्र में कालिदास और भारवि की कीर्ति का आश्रय लेने वाला कहा है। स्पष्टतः भारवि 634 ई॰ तक पर्याप्त प्रसिद्ध हो चुके थे। इस प्रसिद्धि की अवधि के विषय में विद्वानों ने अनुमान किये हैं। कीथ का मत है कि उन्हें 550 ई॰ के आसपास माना जा सकता है। सरदारऋजन राय ने उक्त संकेत से 150-200 वर्ष पूर्व अर्थात् पाँचवीं शताब्दी ई॰ में भारवि को मानने का सुझाव दिया है। किन्तु अन्य स्रोतों से इस विषय पर अधिक स्पष्टता प्राप्त होती है। दण्डि-कृत 'अवन्तिसुन्दरीकथा' के एक अंश का उद्धरण जो, हरिहरशास्त्री ने निम्नांकित रूप में किया है ,जिसमें दामोदर द्वारा भारवि के माध्यम से विष्णुवर्धन नामक राजा की कृपा प्राप्त करने का निर्देश है - यतः कौशिककुमारो (दामोदरो) महाशैवं महाप्रभाव प्रदीप्तभांस भारवि रविमिवेन्दुरनुरुध्य दर्श इव पुण्यकर्माणि विष्णुवर्धनाख्ये राजसूनौ प्रणयमन्वबध्नात्। विष्णुवर्धन चालुक्य-नरेश सत्याश्रय (पुलिकेशिन्-द्वितीय) का अनुज था, उसने सेनापति के रूप में नर्मदा - तट पर हर्षवर्धन को पराजित किया था। उसी ने गोदावरी जिले में पिष्टपुर को राजधानी बनाकर पूर्वी चालुक्य - वंश की स्थापना 615 में की थी। भारवि से मित्रता के कारण विष्णुवर्धन ने उन्हें अपना सभा-पण्डित बनाया था। इस प्रकार 615ई॰ के आस पास भारवि का भी समय माना जा सकता है। 634ई॰ में उनकी पर्याप्त प्रसिद्धि के कारण रविकीर्ति ने उनका उल्लेख किया भारवि के समय के निर्धारण का एक अन्य सूत्र भी उक्त 'अवन्तिसुन्दरीकथा' से प्राप्त होता है। काञ्ची के पल्लव-नरेश सिंहविष्णु (शासनकाल 575-600ई॰) ने भी भारवि को आश्रय दिया था। बाद में सिंहविष्णु के पुत्र महेन्द्रविक्रम ('मत्तविलासप्रहसन' का लेखक) के आश्रय में भी भारवि रहे। भारवि को मनोरथ

नामक पुत्र था। यही मनोरथ दण्डी के पितामह थे। यह सूचना 'अवन्तिसुन्दरीकथा' से प्राप्त होती है। एक दानपत्र से भी भारवि के काव्य का सम्बन्ध प्राप्त होता है। कोंकण के गंग - नरेश अविनीत का पुत्र दुर्विनीत (समय 580ई०) था जिसने 'बृहत्कथा' (गुणाढ्य-कृत पैशाची भाषा में निबद्ध लोककथा - संगह) का संस्कृत रूपान्तर 'शब्दावतार' के नाम से किया था तथा किरातार्जुनीयम् के 15 वें सर्ग (चित्रकाव्य से पूर्ण सर्ग) पर टीका भी लिखी थी । यह दानपत्र 'मैसूर आर्कियोलॉजिकल रिपोर्ट (1916) में पृष्ठ 36 पर मुद्रित है - **''श्रीमत्कोंकणमहाराजाधिराजस्य अविनीतनाम्नः पुत्रेण शब्दावतारकारेण देवभारती निबद्ध - बृहत्कथेन किरातार्जुनीयपञ्चदशसर्गटीकाकारेण दुर्विनीतनामधेयेन''।** इन सूत्रों से यह अनुमान हो सकता है कि भारवि का समय 550 ई० से 620 ई० के बीच होगा। अष्टाध्यायी की वृत्ति 'काशिका' (660ई०) में जयादित्य ने किरातार्जुनीय के एक पद्यखण्ड (3/14) ' संशय्य कर्णादिषु तिष्ठते यः का उद्धरण दिया है। महाकवि माघ ने अपने 'शिशुपालवध' की रचना स्पष्टतः भारवि के महाकाव्य की ख्याति से प्रेरित होकर प्रतिस्पर्धा में ही की थी। माघ का समय 675 ई० के आसापास माना जाता है। अतः भारवि को इन रचनाओं के कुछ पूर्व उक्त कालावधि में रखा जा सकता है। बाण द्वारा अपने हर्षचरित के प्रस्तावना में भारवि का उल्लेख न होना कुछ विद्वानों को खटकता है किन्तु इसे दो कारणों से स्पष्ट किया जा सकता है। पहली बात यह है कि बाण के समय (7 वी शताब्दी का पूर्वार्ध) में उत्तरभारत में भारवि अधिक विख्यात नहीं हुए होंगे। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बाण के आश्रयदाता महाराज हर्षवर्धन के शत्रु पुलिकेशिन् के अनुज की राजसभा में भारवि थे। अतः बाण ने उनका उल्लेख नहीं किया।

महाकविभारवि भारवि का ग्रन्थ—

किरातार्जुनीयम् , यह भारवि की एकमात्र उपलब्ध कृति है। विचित्र मार्ग या कलावाद का प्रवर्तन करने वाले इस महाकाव्य में 18 सर्ग हैं। इसका कथानक महाभारत के वनपर्व के कुछ अध्यायों पर आश्रित है। वनवास-काल में अर्जुन द्वारा कौरवों पर विजय-प्राप्ति के लिए इन्द्रकील पर्वत पर जाकर तपस्या करने, किरात-वेश में आये हुए शिव से युद्ध करने एवं प्रसन्न हुए शिव से पशुपत अस्त्र की प्राप्ति की मुख्य कथा इसमें निरूपित है। इसीलिए इसका शीर्षक है-किरातर्जुनीयम्। किरातः (किरातवेशधारी शिवः) च अर्जुनश्च-किरातार्जुनौ (द्वन्द्वसमास) तावधिकृत्य कृतं काव्यं किरातर्जुनीयम् (द्वन्द्वाच्छः से छ अर्थात् ईय प्रत्यय)। इसके कई सर्ग मुख्य कथा को छोड़कर कलात्मक वर्णनों में लगाये गये हैं। 15 वें सर्ग में युद्ध के क्रम में चित्रकाव्य की छटा दिखायी गयी है। इस महाकाव्य में सर्गों की कथा इस प्रकार है-द्वैतवन में वनेचर का आकर युधिष्ठिर को दुर्योधन की प्रजा-पालन-नीति का वर्णन सुनाना, द्रौपदी का उत्तेजनापूर्ण भाषण (सर्ग-1) युधिष्ठिर और भीम का वार्तालाप, भीम द्वारा द्रौपदी का समर्थन करते हुए पराक्रम की महत्ता दिखाना, युधिष्ठिर का प्रतिवाद (सहसा विदधीत न क्रियाम्), व्यास का आगमन (सर्ग-2); व्यास द्वारा अर्जुन को शिव की आराधना करके पाशुपतास्त्र प्राप्त करने का उपदेश, योग-विधि का निरूपण करके व्यास का अन्तर्धान होना, व्यास द्वारा प्रेषित यक्ष के साथ अर्जुन का प्रस्थान (सर्ग-3) इन्द्रकील पर्वत पर अर्जुन का पहुँचना, शरद् ऋतु का मनोरम वर्णन (सर्ग-4); हिमालय का वर्णन तथा यक्ष का अर्जुन को इन्दिय-संयम का उपदेश (5); अर्जुन की तपस्या, विघ्न डालने के लिए इन्द्र द्वारा प्रेषित अप्सराओं का आगमन (6); गन्धर्वों तथा अप्सराओं के विलासों का वर्णन, वन-विहार, पुष्पचयन (7); गन्धर्वों और अप्सराओं की उद्यान क्रीड़ा तथा जल-क्रीड़ा का मोहक वर्णन (8); सांयकाल, चन्द्रोदय, मान मानभश् , दूती-प्रेषण, सुरति तथा प्रभात का वर्णन (9); अप्सराओं की चेष्टाएँ, उनकी विफलता (सर्ग-10); मुनि-रूप में इन्द्र का आगमन, इन्द्रार्जुन-संवाद, इन्द्र का अर्जुन को शिवाराधना का उपदेश (11); अर्जुन की तपस्या, तपस्वियों का शिव को प्रेरित करना, अर्जुन को देवताओं का कार्यसाधक जानकर 'मूक' नामक दानव का शूकर रूप में अर्जुन वध के लिए आगमन, किरातवेशधारी शिव का आगमन (12); शूकर (मूक दानव) पर शिव और अर्जुन दोनों का बाण-प्रहार, दानव की मृत्यु, बाण के विषय में शिव के भेजे गये वनेचर की अर्जुन के प्रति उलाहना पूर्ण

कथन (13) वनेचर के लिए अर्जुन की उक्ति तथा किरातवेशधारी शिव का युद्ध हेतु आना (14); युद्ध का चित्रकाव्य के रूप में वर्णन (15) शिव और अर्जुन का अस्त्रयुद्ध, मल्लयुद्ध (16); शिव और उनकी सेना के साथ अर्जुन का युद्ध (17) बाहुयुद्ध के बाद शिव का अपने मूल रूप में प्रकट होना, इन्द्रादि का आगमन, अर्जुन को पाशुपतास्त्र की प्राप्ति, इन्द्रिादि द्वारा भी अर्जुन को विविध अस्त्रों का प्रदान, अर्जुन का युधिष्ठिर के पास आगमन (सर्ग-18)। स्पष्टतः इस महाकाव्य में प्रकृति-वर्णन, क्रीड़ादि-वर्णन एवं युद्ध-वर्णन के द्वारा मुख्य कथानक का विस्तार किया गया है। इस महाकाव्य का आरम्भ 'श्रियः' शब्द से होता है। प्रत्येक सर्ग के अन्तिम पद्य में 'लक्ष्मी' शब्द भी प्रयुक्त है। इस प्रकार मांगलिक शब्द का आदिमध्यावसान में प्रयोग करके महाकाव्य को मांगलिक बनाया गया है। कलावादी भारवि ने सुन्दर हृदयावर्जक संवादों, काल्पनिक चित्रों तथा रमणीय वर्णनों से इसे भरकर नवीन दिशा का प्रवर्तन किया है। श्रंगार चेष्टाओं के वर्णन में मुक्तक काव्य की चित्रात्मकता इसमें उन्होंने भरी है। चतुर्थ से एकादश सर्ग तक के अन्तराल को ऐसे ही वर्णनों से भरा गया है। युद्ध का लम्बा वर्णन भी महाकाव्य की विशालता को भले ही रेखाकिंत करे,फिर भी उसमें कविता की आत्मा तिरोहित हो गयी है। इस महाकाव्य के नायक अर्जुन धीरोदात्त कोटि के हैं। वीर रस प्रमुख है, श्रंगार रस अंश के रूप में है। इस महाकाव्य पर मल्लिनाथ ने टीका लिखी है, 15 वें सर्ग पर दुर्विनीत ने भारवि के काल में ही टीका लिखी थी। माघ ने इस काव्य की सभी विशिष्टताओं का अनुकरण करके 'शिशुपालवध' की रचना की। इस महाकाव्य के प्रथम तीन सर्ग बहुत लोकप्रिय हैं। इसमें मुख्य रूप से भारवि का राजनीति-ज्ञान प्रकट हुआ है।

बोध प्रश्न -

1. भारवि का समय मुख्यत: प्रमाणों पर आधारित है -

क. अन्तरंग ख. बहिरंग ग. अन्तरंग व बहिरंग घ . साक्ष्य

2. अवंतिसुन्दरी कथा के रचनाका हैं -

क. दण्डी ख. भारवि ग. बाण घ . माघ

3. किरातवेशधारी हैं -

क. अर्जुन ख . शिव ग. युधिष्ठिर घ. कृष्ण

4. महाकाव्य किसमें निबद्ध होता है -

क. सर्गों में ख . नि:श्वासों में ग. उल्लासों में घ. अंकों में

महाकविमाघ का परिचय एवं समय—

शिशुपालवध के कर्ता का नाम 'माघ' है। डॉक्टर याकोवी का मत है कि जिस प्रकार 'भारवि' ने अपनी प्रतिभा की प्रखरता सूचित करने के लिए 'भा-रवि' (सूर्य का तेज) नाम रखा, उसी भॉति शिशुपालवध के अज्ञातनामा रचयिता ने अपनी कविता से भारवि को ध्वस्त करने के लिए 'माघ' का नाम धारण किया, क्योंकि माघमास में सूर्य की किरणे ठंडी पड़ जाती हैं। परन्तु यह कल्पना बिल्कुल निराधार जान पड़ती है शिशुपालवध के कर्ता का व्यक्तिगत नाम ही 'माघ' है, उपाधि नहीं। माघ की जीवन घटनाओं का पता 'भोजप्रबन्ध' तथा ''प्रबन्ध-चिन्तामणि' से लगता है। दोनों पुस्तकों में प्राय: एक –सी कहानी दी गयी है। माघ के जीवन की रूपरेखा को हम जान सकते हैं।

महाकविमाघ का परिचय—

माघ के दादा सुप्रभदेव वर्मलात नामक राजा के, जो गुजरात के किसी प्रदेश का शासक था, प्रधान मन्त्री थे। अत: माघ कवि का जन्म एक प्रतिष्ठित धनाढय ब्राह्मणकुल में हुआ था। इनके पिता 'दत्तक' बडे. विद्वान् तथा दानी थे । गरीबों की सहायता में इन्होंने अपने धन का अधिकांश भाग लगा दिया। माघ का जन्म भीन-माल में हुआ था। यह गुजरात का एक प्रधान नगर था, जो बहुत दिनों तक राजधानी तथा विद्या का मुख्य केन्द्र था। प्रसिद्ध ज्योतिषी ब्रह्मगुप्त ने 625 ई0 के आस-पास अपने 'ब्रह्म्गुप्तसिद्धान्त' को

यही बनाया। इन्होंने अपने को 'भीनमल्लाचार्य लिखा है। हुवेनसांग ने भी इसकी समृद्धि का वर्णन किया है । पिता की दानशीलता का प्रभाव पुत्र पर भी पड़ा। ये भी खूब दानी निकले। राजा भोज से इनकी बड़ी मित्रता थी । राजा भोज का इन्होने अपने घर पर बड़े आवभगत से सत्कार किया। धीरे-धीरे अधिक दान देने से निर्धन हो गये। यह धारा का प्रसिद्ध राजा भोज नहीं हो सकता। इतिहास इसे असंभव सिद्ध कर रहा है। अत एव कुछ लोग 'भोजप्रबन्ध' की कथा पर विश्वास नहीं करते, परन्तु इतिहास में कम से कम दो भोज अवश्य थे। एक तो प्रसिद्ध धारानरेश भोज (1010-50 ई0) थे और दूसरे भोज सातवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुए। सम्भवत: इसी दूसरे राजा के समय में माघ हुए थे। 'भोजप्रबन्ध' ने दोनों भोजों की कथाओं में हड़बड़ी मचा डाली हैं।

माघ अपने मित्र भोज के पास आश्रय के लिए आये, 'भोज-प्रबन्ध' में लिखा है कि इनकी पत्नी राजा के पास 'कुमुदवनमपश्रिश्रीमदम्भोजखण्डमद्' आदि पद्यको, जो माघ –काव्यके प्रभात-वर्णन (11सर्ग) में मिलता है, ले गयी ।इस पद्य को सुनकर राजाने प्रभूत धन दिया। उसे लेकर माघ-पत्नी ने रास्ते में दरिद्रों को बांट दिया। माघ के पास पहुँचने पर उसकी पत्नी के पास एक कोड़ी भी न बची रही, परन्तु याचकों का तॉता बँधा ही रहा। कोई उपाय न देखकर दानी माघ ने अपने प्राणछोड़ दिये। प्रात:-काल भोज ने माघ का यथोचित अग्नि संस्कार दिया और बहुत दु:ख मनाया। माघ की पत्नी भी सती हो गयी।

माघ के जीवन की यही घटना ज्ञात है। यह सच्ची है या नहीं ,परन्तु इतना तो हम नि:सन्देह कह सकते है कि माघ परम्परानुसार एक प्रतिष्ठित धनाढय ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। जीवन के सुख की समग्र सामग्री इनके पास थी। पिता ने इन्हे शिक्षा दी थी। पिता के समान ही ये दानी तथा उपकारी थे। सम्भवत: भोज के यहॉ इनका बडा मान था।

महाकविमाघ का समय—

माघ के समय-निरूपण के लिए एक संदेह –हीन प्रमाण उपलब्ध हुआ है। आनन्दवर्धन ने शिशुपालवध के दो पद्यों को ध्वन्यालोक में उदाहरण के लिए उद्धृत किया है- रम्या इति प्राप्तवती: पताका: (3/53) तथा त्रासाकुल: परिपतन् (5/26)। फलत: माघ आनन्दवर्धन (नवम शती का पूर्वार्ध) से प्राचीन हैं। एक शिलालेख से इसका यथार्थ ज्ञान होता है। डॉ0 कीलहार्न को राजपुताने के 'वसन्तगढ' नामक किसी स्थान से 'वर्मलात' राजा का एक शिलालेख मिला है। शिलालेख का समय संवत्682, अर्थात् 625 ई0 है शिशुपालवधकी हस्तलिखित प्रतियों में सुप्रभदेव के आश्रयदाता का नाम भिन्न-भिन्न मिलता है। धर्ममान, वर्मनाम, धर्मलात, वर्मलात आदि अनेक पाठ भेद पाये जाते हैं। भीनमाल के आसपास के प्रदेश में इस शिलालेख की उपलब्धि से डॉक्टर किलहार्न 'वर्मलात' को असली पाठ मानकर इस राजा तथा सुप्रभदेव के आश्रयदाता को यथार्थत: अभिन्न मानते हैं। अत: सुप्रभदेव का समय 625 ई0 से लेकर700 ई0 के पास है। अत एव इनके पौत्र माघ का समय भी लगभग 650 ई0 से लेकर700 ई0 तक होगा,अर्थात् माघ का आविर्भाव काल सातवीं सदी का उत्तरार्द्ध मानना उचित है।

महाकविमाघ : ग्रन्थ परिचय—

माघ का केवल एक ही महाकाव्य 'शिशुपालवध' है। श्रीकृष्ण के द्वारा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में चेदिनरेश शिशुपाल के वध का सांगोपांग वर्णनहै । यही 'शिशुपालवध' महाकाव्य का वर्ण्य विषय है । इसका प्रेरणास्रोतमुख्यतया श्रीमद्भागवत है, गौण रूप से महाभारत ।वैष्णव माघ के ऊपर भागवत अपना प्रभाव जमाये था। फलत: उसी के आधार पर कथा का विन्यास है। सर्गो की संख्या 20 तथा श्लोको की 1650 (एक हजार छ: सौ पचास) ।द्वारका में श्रीकृष्ण के पास नारद पधारकर दुष्टों के वध के लिए प्रेरणा देते हैं (1सर्ग) युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञमें जाने के लिए बलराम तथा उद्धव द्वारा मन्त्रणा द्वारा निश्चय किया जाता है (2सं0) श्रीकृष्ण दलबल के साथ इन्द्रप्रस्थ की यात्रा करते है (3सं0) तदनन्तर महाकाव्य के पूरक विषयों का वर्णन आरम्भ होता है।

रैवतक का (4 सं0), कृष्ण के रैवतक-निवास का (5 सं0) , ऋतुओं का (6स0) ,वनविहार का (7स0), जलक्रीड़ा का (8स0) ,सूर्यास्त तथा चन्द्रोदयका (9स0) , मधुपान और सुरतका (10सं0), पाण्डवों से मिलन तथा सभा प्रवेश का (13 स0), राजसूययाग तथा दान का (14सं0),शिशुपाल द्वारा विद्रोहका(15 स0), दूतों की उक्त-प्रत्युक्ति का (16 सं0), सभासदों के क्षोभ तथा युद्धार्थ कवचधारण का (17 स0),युद्धका (18 तथा 19 स0) तथा श्रीकृष्ण और शिशुपाल के साथ द्वन्द्व युद्ध का वर्णन 20 सर्ग में निष्पन्न होता है। इस विषयसूची पर आपातत:दृष्टि डालने से स्पष्ट है कि लघुकाय वृत्त को परिवृंहित कर महाकाव्यत्व के निर्वाह के लिए माघ ने आठ सर्गो की योजना (4 सर्ग-11 सर्ग) अपनी प्रतिभा के बल पर की है। अलंकृत महाकाव्य की यह आदर्श कल्पना महाकवि माघ का संस्कृत साहित्य को अविस्मरणीय योगदान है, जिसका अनुसरण तथा परिबृंहण कर हमारा काव्यसाहित्य समृद्ध, सम्पन्न तथा सुसंस्कृत हुआ है।

अभ्यास प्रश्न-4

1. शिशुपाल का वध किसने किया।

क. कृष्ण ख. रूक्मि ग. द्रुपद घ. बलराम

2. शिशुपाल वध किसकी रचना है।

क. माघ ख. भारवि ग. श्रीहर्ष घ. कोई नहीं

3. माघ के दादा का क्या नाम था।

क. सुप्रभदेव वर्मलात ख. प्रभदेव ग. सुकर्म घ. कीर्तिमान

4. 'ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त' किसकी रचना है।

क. ब्रह्मगुप्त ख. भास्कराचार्य ग. कमलाकर भट्ट घ. वराहमिहिर

5. ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त की रचना कब हुई।

क. 650 ई0 ख**. 625 ई0** ग. 635 ई0 घ. कीर्तिमान

6. माघ का जन्म कहॉ हुआ था।

क. महाराष्ट्र ख. मध्यप्रदेश ग. गुजरात घ.कोई नहीं

7. भारवि शब्द से तात्पर्य है –

क. चन्द्र की छाया ख. सूर्य की छाया ग. वृक्ष की छाया घ. किसी वस्तु की छाया

8. माघे सन्ति .....।

क. चतुर्गुणा ख. त्रयो गुणा: ग. पंच गुणा घ. षड् गुणा:

महाकवि श्री हर्ष व्यक्तित्व एवं कृतित्व–

बाणभट्ट के 'हर्षचरित' तथा ह्वेनसांग के यात्राविचरण से हमें स्फुटरूप से ज्ञात है कि हर्षवर्धन 'हूण-हरिण-केसरी' प्रभाकरवर्धन तथा यशोमती के पुत्र थे। ये अपने पिता के दूसरे लड़के थे। इनके ज्येष्ठ भ्राता का नाम राज्यवर्धन था। 'राज्यश्री' नाम की इनकी बहिन योग्य विदुषी थी। बाल्यकाल में इन्हें समुचित शिक्षा दी गई थी। पिता ने पंजाब में रहनेवाले हूणों को पराजित करने के लिए राज्यवर्धन के साथ इन्हें भेजा। राज्यवर्धन आगे जाकर शत्रुओं का विनाश कर रहे थे, इधर हर्षवर्धन आखेट आदि मनोरंजन के साथ-साथ शत्रुओं का पीछा कर रहे थे। इतने में पिता की अस्वस्थता के दु:खद समाचार को लिए हुए एक दूत आया। राजधानी लौट आने पर हर्ष ने पूज्य पितृदेव को मृत्युशैय्या पर पाया। प्रभाकरवर्धन ने हर्षवर्धन को 'निरवशेषा:शत्रवो नेया:' का उपदेश देकर इस असार संसार से विदाई ली। मन्त्रियों के कहने पर ज्येष्ठ भ्राता के आगमन में कुछ विलम्ब जानकर हर्षवर्धन ने राज्य की बागडोर अपने हाथ में ले ली। कुछ समय के अनन्तर राज्यवर्धन ने आकर शासन भार अपने ऊपर लिया, परन्तु वह स्वयं ही वडीय नरेश शशांक की कुटिल नीति का शिकार बन गया। शशांक ने विश्वास दिला

कर राज्यवर्धन को मार डाला। हर्ष के हृदय में भ्रातृवध का समाचार सुनकर प्रतिहिंसा की प्रबल अग्नि प्रज्वलित हो उठी। हर्षवर्धन ने यथासमय शशांक का विनाश कर बंगाल को अपने राज्य में मिला लिया। रिक्त सिंहासन की बागडोर हर्ष-वर्धन में अपने सुमृद्धतथा राज्यकाल 606 ई0 से लेकर 647 ई0 तक माना जाता है।

महाराजा हर्षवर्धन केवल वीर-लक्ष्मी के उपासक न थे, अपितु ललित कलाओं के भी अत्यन्त प्रेमी थे। आपकी सभा को अनेक गुण और गौरव युक्त विद्वान् सर्वदा सुशोभित किया करते थे। बाणभट्ट, मयूरभट्ट तथा मातंगदिवस कर जैसे कवियों से मण्डित इनकी सभा साहित्य-संसार में सदा प्रख्यात रही है। सुना जाता है कि दिवाकर का जन्म नीच (चाण्डल) जाति में हुआ था, परन्तु ये अपनी गुणगरिमा से बाण और मयूर के समान ही राजा के आदरपात्र थे। इस बात को राजशेखर ने सरस्वती के प्रभाव को दिखलाते हुए बड़े ही अच्छे ढंग से कहा है- अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्माङदिवाकर:। **श्रीहर्षस्याभवतृ सभ्य: समो वाणमयूरयों: ।।**

दशवीं शताब्दी में उत्पत्र होने वाले महाकवि पद्मगुप्त ने अपने 'नवसाहसांकचरित' महाकाव्य में महाराज हर्ष की सभा में बाण और मयूर की उपस्थित का वर्णन इस प्रकार किया है:—**स चित्रवर्णविच्छितिहारिणोरवनीपति: । श्रीहर्ष इव संघटचके बाणमयूरयो: ।।** महाराज हर्ष केवल कवि और पण्डितों के ही आश्रयदाता और गुणग्राही न थे , बल्कि उन्होंने स्वयं भी अनेक रमणीय और सरद ग्रन्थों की रचना कर सरस्वती के विपुल भण्डार को भरा है। इस बात को हम अच्छी तरह से कह सकते हैं कि महाकवि कालिदास की यह सरल सूक्ति ''निसर्गभित्रस्पदमेकसंस्थमस्मिन् द्वयं श्रीश्च सरस्वती चं महाराज हर्ष के विषय में अच्छी तरह से चरितार्थ होती है। इस भारतवर्ष में विकमादित्य , शूद्रक , हाल प्रभृति अनेक विद्या के उपासक राजा हो गये है , परन्तु उन सब में महाराज हर्ष (हर्षवर्धन) अद्वितीय हैं। महाकवि पीयूषवर्ष जयवेद ने अपने 'प्रसन्नराघव' नाटक में महाराज हर्ष को कविताकामिनी का हर्ष (हर्षोहर्ष:) कहा है। उन्होनें वाणभट्ट के साथ हर्ष का नामोल्लेख भी किया है। विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी में उत्पन्न होने वाले सोड्ढल ने अपनी 'उदयसुन्दरीकथा' नामक चम्पू में श्रीहर्ष की , सरस्वती को हर्ष प्रदान करने के कारण, 'श्रीर्हर्ष' कहकर प्रशंसा की है:--

श्रीहर्ष इत्यवनिवर्तिषु पाथिवेष नाम्नैव केवलमजायत वस्तुतस्तु।
'श्रीहर्ष' एष निजसंसदि येन राज्ञा सम्पूजित: कनककोटिशतेन बाण: ।।

इसी तरह दामोदर गुप्त ने 'कुटनीमत' नामक ग्रन्थ में 'रत्नावली' का नाम लेकर संकेत किया है। यह नाटिका किसी राजा के द्वारा बनाई गई है और उसके निर्माता महाराज हर्ष है, ऐसा कहते हुए उन्होंने उनकी हर्ष की काव्यचातुरी की अत्यन्त प्रशंसा की है इत्सिङ नामक चीनी बौद्व परिव्राजक अपने धर्मग्रन्थों को पढ़ने की इच्छा से हर्ष की मृत्यु के बाद भारतवर्ष में आया था। उसने अपने यात्रा विवरणात्मक ग्रन्थ में महाराज हर्ष को 'नागान्द' नाटक का रचयिता होना स्पष्ट ही लिखा है। उसने यह लिखा है:-- 'राजा शीलादित्य (हर्ष) ने बोधिसत्व जीमूतवाहन की आख्यायिका को नाटकरूप में परिणत किया और उस नाटक का संगीतादि सामग्री के साथ नंटों के द्वारा अभिनय कराया।' इस प्रमाण से स्पष्ट है कि महाराज हर्ष ने 'नागान्द' नाटक का निर्माण किया था , परन्तु इन प्रमाणों के होते हुए भी जो विद्वान् महाराज हर्ष के ग्रन्थ-रचयिता होने में सन्देह करते है वे बाणभट्ट के इस कथन पर विचार कर अपने सन्देह को दूर कर लें। श्री बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' में दो बार राजा (श्री हर्ष) की काव्य-व्याकरणचातुरी की प्रशंसा की है। बाणभट्ट का यह कथन हर्ष की काव्य-चातुरी को प्रकट कर रहा है। 'अस्य कवित्स्य वाचो न पर्याप्तो विषय:'। इस प्रकार से बाणभट्ट ने हर्ष की काव्य रचना की चतुरता को स्पष्ट ही प्रकट किया है। इन ऊपर लिखित प्रमाणों से हमें विश्वास होता है कि महाराज हर्षवर्धन अच्छे कवि थे एवं कविता करने में खूब दक्ष थे। श्रीहर्ष का ग्रन्थ मिलते है--रत्नावली, नागानन्द और प्रियदर्शिका। साहित्य-संसार में रत्नावली के रचयिता के सम्बन्ध में बड़ा आन्दोलन हो चुका है। इस बड़ी गड़बड़ी का मूल कारण मम्मट के काव्यप्रकाश का एक वाक्यांश है। मम्मट ने काव्य के प्रयोजनों में अर्थप्राप्ति भी एक प्रयोजन माना है--हजारों महाकवि कविता-देवी की पूजा कर लक्ष्मी के कृपापात्र बन गये हैं। उदाहरणार्थ , धावकादि कवियों ने हर्षवर्धन

से असंख्य धन पाया (श्री-हर्षादेःधावकादीनामिव धनम्) । काव्यप्रकाश के कतिपय टीकाकारों ने इससे यह अर्थ निकाला है कि घावक ने रत्नावली की रचना हर्षवर्धन के नाम से करके असंख्य सम्मति पाई। काव्यप्रकाश के किसी-किसी काश्मीरी प्रति में धावक के स्थान पर बाण का नाम उल्लिखित है , जिसके आधार पर कितने ही विद्वान् बाणभट् पर ही रत्नावली के कर्तृत्व का भार आरोपित करते है । परन्तु ये सब आधुनिक विद्वानों की अनिश्चित कल्पनायें हैं ।

काव्य-प्रकाश के उल्लेख का यही आशय है कि श्रीहर्ष ने बड़ी भारी सम्पति कवियों को दे डाली । श्रीहर्ष जैसे उदाराशय तथा महादानी नरेश के लिये यह बात असम्भव नहीं जान पडती । जब असंख्यों ब्राहम्ण , भिक्षु तथा जैनों का आदर होता था तथा उनको प्रशंसनीय दान मिलता था , तब गुणग्राही हर्ष के लिये उसकी कीर्तिलता को पल्लवित करनेवाले कवियों को दान देने में--आदर करने में--भला संकोच कैसे हो सकता है ? काव्यप्रकाश के उल्लेख का प्रकरणगम्य तात्पर्य यही है। अनेकों अर्वाचीन तथा प्राचीन कवियों ने श्रीहर्ष के समीचीन कवि-समाश्रय की शतशः प्रशंसा की है। अभिनन्द कवि ने मम्मट के कथन को दुहराया है**:-- श्रीहर्षो विततार गद्यकवये बाणाय वाणीफलम्**। एक दूसरे काव्य -मर्मज्ञ ने ठीक ही लिखा है:--

हेम्नो भारशतानि वा मदमुचां वृन्दानि वा दन्तिनां
श्रीहर्षण समर्पितानि कवये बाणय कुत्राद्य तत् ।
या बाणेन तु तस्य सूक्तिनिकरैरूटङ्किताः कीर्तय-
स्ता: कल्पप्रलयेऽपि यान्ति न मनांग मन्ये परिम्लानताम् ।।

भावार्थ यह है कि हर्ष ने बाणभट्ट को हजारों दिग्गज तथा असंख्य सम्पति दे डाली , परन्तु आज उनका नामोनिशान नहीं हैं ; किन्तु बाण ने हर्ष की कीर्ति को काव्यरूप में जो जड़ दिया वह कराल काल के फेर में पड़कर भी मलिन नहीं हो सकती । इससे स्पष्ट है कि ये सब उल्लेख हर्ष के आश्रयदान तथा कवि सत्कार को लक्षित करते है । हर्ष की स्वयं दर्शन में अच्छी गति थी। वह ह्वेनसांग के संसर्ग से बौद्व दर्शन का एक अभिज्ञ पण्डित बन गया था । ऐसे उदार दानी तथा विद्वान् सम्राट का ऊदार अपने नाम से काव्य गढ़ने की कालिमा पोतना काव्यजगत् में अत्यन्त कलुषित कार्य है । उसका अपने आश्रित कवियों से सहायता लेना असंभव कार्य नही प्रतीत होता , उसको इन नाटकों के कर्तृत्व से वंचित करना हर्ष के महान् गुणों की अवज्ञा करना है । एक क्षण के लिए बाण या घावक को रत्नावली का कर्ता मान भी लिया जाय , परन्तु नागानन्द तथा प्रिय-दर्शिका का कर्तृत्व तो हर्ष से ही सम्बद्व है । कोई भी आलोचक बाणभट्ट को नागानन्द का कर्ता मानने को उद्यत नहीं है । सर्वसम्मति से इस नाटकत्रय की रचना हर्ष की लेखनी से हुई है । अत एव रत्नावली के कर्तृत्व को बाण पर आरोपित करना निन्दनीय जान पड़ता है । पूर्वोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इन तीन नाटकों की रचना स्वंय सम्राट् हर्षवर्धन ने की ।

महाकवि श्री हर्ष के ग्रन्थों का परिचय—

इनकी तीन रचनायें है--(1) प्रियदर्शिका , (2) रत्नावली तथा (3) नागानन्द । ये तीनों रूपक एक ही लेखक की रचनायें है ; इसमें सन्देह करने के लिए स्थान नहीं है । तीनों में घटनाओं का आश्चर्यजनक साम्य है । रत्नावली में सागरिका अपने चित्तविनोद के लिये राजा का चित्र खींचती है । नागानन्द में जीमूतवाहन उसी उद्देश्य से मलयवती का चित्र बनाता है । दोनों स्थानों पर चित्रों के द्वारा ही पात्रों के स्निग्ध हृदय तथा प्रणय की कथा का परिचय दर्शकों का मिलता है । रत्नावली में अपमानित होने पर सागरिका अपने गले को लतापाश से बाँधकर प्राण देने का उद्योग करती है । नागानन्द में भी यही घटना है—नायिका मलयवती प्रणय में अनादृत होने से अपने गले को जकड़ कर मरने का प्रयास करती है । दोनों स्थानों पर नायक के द्वारा उनके प्राणों की रक्षा होती है । इतना ही नहीं , बहुत से पद्य इनमें परस्पर उद्धृत किये गए हैं। फलत: ये तीनों ही लेखक की लेखनी की सुचारु रचनाये है । इन रुपकों में लेखनकर्म का भी निर्णय अन्तरंग परीक्षा के बल पर किया जा सकता है। प्रियदर्शिक तथा रत्नावली दोंनों ही प्रणय नाटिकायें है और एक ही कथानक -उदयन के कथानक - से सम्बन्ध रखती है । प्रिय -

दर्शिका में घटना का विन्यास बहुत ढंग का है। रत्नावली में हम घटनाओं के प्रस्ताव में तथा नायिका के प्रणवर्णन में सुधार पातें हैं , जो निश्चयेन 'रत्नावली' को परवर्ती सिद्व कर रहा है। नागानन्द के अंतिम नाटक होने का प्रमाण उसके अभिनेय विषय की गम्भीरता तथा महनीयता है। इसके भी तीन अंको में प्रणय का वर्णन है, परन्तु यहाँ कवि विवाह-सम्बन्ध को प्रतिष्ठित करने के लिए गंधर्व-विवाह की पद्धति अपनाता है, जहाँ परवर्ती नाटिकाओं में द्वितीय विवाह की सिद्धि प्रथम विवाहिता राजमहिषी की स्वेच्छा पर वह अवलम्बित करता है। श्रीहर्ष का चित अब सांसारिक प्रपंचों से ऊब गया है और वह प्रणय से शान्ति की ओर जाता है। उसकी जीवन-सन्ध्या के अनुरूप ही शान्त रसात्मक नागानन्द का प्रणयन है, जहाँ राजाओं के भोगविलासमय नगर से हटकर प्रधान घटनायें आश्रम के शान्त वातावरण में ही घटित होती है।

1.3.1.4 नीतिकाव्य एवं गीतिकाव्य—

नीति का अर्थ एवं महत्त्व—

नीति शब्द 'नी' धातु में 'क्तिन' प्रत्यय से जुड़कर बना है,जिसका अर्थ है जिस मार्ग (व्यवहार) से व्यक्ति और समाज का जीवन सरलता के साथ व्यतीत हो उसे नीति कहते हैं। नीति का अर्थ सही मार्ग की ओर ले जाना है, नीति का सही रूप में पालन करने से व्यक्ति एवं समाज दोनों का कल्याण होता है।

नीति के अर्थ को हम कई प्रकार से समझा सकते हैं। मनुष्य जीवन को वास्तविक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए साधन रूप में जिन बातों की आवश्यकता है वही नीति है। देखा जाय तो वास्तव में नीति का अर्थ है 'कर्माकर्मविवेक'। समाज में रहने वाले व्यक्ति, वर्ग, जाति, राष्ट्र आदि भिन्न-भिन्न घटक हैं यहाँ रहकर परस्पर उनको कैसा व्यवहार करना चाहिये इसके कुछ विशेष नियम होते हैं वही नीति है। चार पुरूषार्थों- धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष इन्हें प्राप्त करने के उपायों का निर्देश जिस के द्वारा होता है वही नीति है। नीति शब्द का अर्थ होता है ले जाना, पहुँचाना, दिग्दर्शन कराना, नेतृत्व करना तथा उपायों को बतलाना है 'नीयन्ते संलभ्यन्ते उपायादय इति वा नीतिः'। नीति वचनों के अनुसार यदि मनुष्य व्यवहार करता है तो वह अभीष्ट फल प्राप्त करता है, इस प्रकार मनुष्य जीवन के लक्ष्य की सिद्धि में नीति के द्वारा ही उचित मार्ग का निर्देश होता है, मनुष्य यदि नीति के विरूद्ध आचरण करता है, तो वह अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में असफल हो जाता है। नीति शास्त्र के ज्ञाता चाणक्य का सर्वप्रथम वाक्य है- 'सुखस्य मूलं धर्मः' सुख का मूल आधार धर्म है इसलिये सबसे उत्तम नीति धर्माचरण ही है, क्योंकि संसार का प्रत्येक प्राणी सदैव सुख की ही आकांक्षा रखता है और नीति का सहारा भी वह केवल अपने सुख के लिए ही करता है। ऋग्वेद में नीति का प्रयोग अभीष्ट फल की प्राप्ति से है-'ऋजुनीति नो वरूणो मित्रो नयतु विद्वान्' (ऋक 1/90/1) इसमें मित्र और वरूण से प्रार्थना करते हुए कहा है कि हमें ऋजु अर्थात् सरल नीति से अभीष्ट फल की सिद्धि होती है विषय की दृष्टि से नीति को दो भागों में विभाजित किया जाता है पहली राजनीति तथा दूसरी धर्मनीति। नीति के द्वारा फल के अनुरूप बीज का निर्देश प्राप्त होता है, इस तरह यदि देखा जाय तो आदिकाल से ही मानव को सही मार्ग पर चलने के लिए नीति-वचनों का प्रतिपादन होता आ रहा है।

संस्कृत साहित्य में नीतियां—

संस्कृत भाषा में नीति साहित्य का विशाल भण्डार है। इसमें नीति उपदेशों का संग्रह है, नीति शास्त्र के उद्भावक परमपिता ब्रह्मा, प्रतिष्ठापक भगवान् विष्णु और प्रवर्तक शंकर हैं। एक तरफ वैदिक संस्कृत साहित्य में नीति-वचनों का प्रचुर भण्डार पड़ा है वहीं दूसरी ओर लौकिक संस्कृत साहित्य में पुराणों, स्मृतियों, रामायण, महाभारत आदि महाकाव्यों एवं विभिन्न नाटकों में भी भिन्न-भिन्न धाराओं से परिपूर्ण नीति भण्डार दृष्टिगोचर होता है। नीति -वचनों के विशेष संग्रह वाल्मीकीय रामायण के सप्तम काण्ड में भरे पड़े हैं। महाभारत में भी उद्योग पर्व के आठवें अध्याय में महात्मा विदुर द्वारा कथित नीति-वचन विदुर नीति के नाम से सुप्रसिद्ध है। इसी प्रकार महाभारत

के ही भीष्म पर्व के 25 वें तथा 42 वें अध्याय में सम्पूर्ण विश्व में विख्यात श्रीमद्भगवद् गीता तथा योग शास्त्र के साथ-साथ ब्रह्म विद्या से सम्बन्धित एक महत्त्वपूर्ण नीति शास्त्र है। महाभारत के शान्ति पर्व का वर्णित राजधर्म तो राजनीति ही है, इन समस्त नीतियों की चर्चा परवर्ती नीति ग्रन्थों में पदे-पदे उद्धृत की गयी, जैसे- विष्णुशर्मा के पंचतंत्र और हितोपदेश आदि में भी महाभारत के नीतियों की चर्चा है। भारतीय इतिहास के महामनीषी चाणक्य ने अपने ग्रंथ कौटिल्य अर्थशास्त्र के अन्तर्गत नीति-वचनों का वर्णन किया है, इसके अतिरिक्त चाणक्य नीति, चाणक्य नीति दर्पण और चाणक्य नीति सूत्र आदि ग्रंथों में भी उनके नीति वचनों का संग्रह है। दैत्य गुरू शुक्राचार्य ने भी नीति-वचनों का प्रणयन किया है, जिसे शुक्र नीति कहते हैं। कामन्दकीय नीति सार के अतिरिक्त कामदेव सेमेन्द्र द्वारा नीति कल्प तरू और सोमदेव सूरी कृत्य नीति वाक्यामृत आदि नीति ग्रन्थ भी संस्कृत साहित्य के अर्न्तगत आते हैं। इनके पश्चात् वर्तमान में सुप्रसिद्ध एवं प्रशंसा पात्र नीति नियमों के रचयिता भर्तृहरि द्वारा नीति शतक की रचना की गयी जो लोक विश्रुत है,विद्यापति और चंडेश्वर ठाकुर का पुरूष परीक्षा तथा राजनीति रत्नाकर आदि नीति के निर्देशक ग्रन्थों भी उपलब्ध हैं। इन समस्त नीति के भण्डार ग्रंथों के अतिरिक्त परामर्श , शिक्षा, मंत्रणा और व्यावहारिक ज्ञान आदि के अनेक ग्रंथ हैं जो नीति परक उपदेश की कोटि में आते हैं। नीति के उपदेश और काव्यों के बीच में विभाजक रेखा अत्यन्त छोटी है, फिर भी यह निर्धारित होता है कि नीति उपदेशात्मक काव्यों की रचना निम्न शैलियों में की गई होगी - कहीं पर दाम्पत्य जीवन के संवाद में, कहीं युगल पशुओं के आलाप में, कहीं शिव पार्वती के परिसंवाद में तो, कहीं पर वक्रोक्ति-अन्योक्ति और प्रहेलिका आदि के रूप में इन नीति परक काव्यों में कहीं पर प्रभु सम्मित वाक्य के द्वारा तथा कहीं पर कान्ता सम्मित उपदेश वाक्य के द्वारा तदरूप मार्गों पर चलने का निर्देश दिया गया है। इन्हीं नीति वचनों के अनुपालन से मनुष्य पुरूषार्थों की प्राप्ति में सिद्ध और सफल हो जाता। इनमें कुछ अत्यन्त प्रचलित एवं सुप्रसिद्ध व्यवहारोपयोगी नीतियों के वर्णन आपके अध्ययनार्थ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

शुक्र नीति का परिचय—

परमपिता ब्रह्माजी के मानस पुत्रों में भृगु का नाम प्रमुख है, इन्हीं भृगु के पुत्र असुरगुरू महर्षि शुक्राचार्य हुए। योगविद्या के प्रकाण्ड आचार्य शुक्राचार्य की शुक्र नीति विश्व प्रसिद्ध है। यद्यपि ये असुरों के गुरू थे किन्तु मन से ये भगवान् के अनन्य भक्त थे। इनमें तपस्या, योगसाधना, अध्यात्मज्ञान तथा नीति का बहुत बल था, इन्होंने अपने योग बल के द्वारा असम्भव कार्य भी सम्भव किये। शुक्राचार्य के नीति सम्बन्धी उपदेश बहुत ही उपयोगी तथा अनुपालनीय हैं,इनके नीतिमय उपदेश महाभारत तथा पुराणों में यत्र-तत्र विद्यमान है। आधुनिक समय में आचार्य शुक्र के नाम से एक शुक्र नीति नामक ग्रंथ उपलब्ध है। सम्पूर्ण शुक्र नीति में पाँच अध्याय तथा 2200 श्लोक हैं, इसमें लोक व्यवहार का ज्ञान, राजा के कर्तव्य, राजधर्म, दण्डविधान, मंत्री परिषद् आदि के लक्ष्यों का समावेश है। इसके साथ ही साथ स्त्री धर्म, प्रतिमाओं का स्वरूप, विवाद, संधि तथा युद्ध नीति आदि का वर्णन है।

चाणक्य नीति का परिचय—

चाणक्य का जन्म लगभग चार सौ साल पूर्व भारत के तक्षशिला नामक स्थान में हुआ। चाणक्य के बचपन का नाम विष्णुगुप्त शर्मा था। कुटज गोत्र के होने के कारण ये कौटिल्य कहलाये। चणक के पुत्र होने के कारण चाणक्य कहलाये, अपने चातुर्य के कारण भी इन्हें चाणक्य कहा जाता है। ये विद्वान और नीतिमान् थे। भारतीय राजनीति में कूटनीतिज्ञ के रूप में चाणक्य का स्थान सर्वश्रेष्ठ व सर्वोपरि माना जाता है। चाणक्य ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा तक्षशिला में प्राप्त की, प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् ये उच्च शिक्षा अध्ययन के लिए पाटलिपुत्र आये। मगध के सिंहासन पर उस समय अत्यन्त लोभी व अत्याचारी राजा घनानन्द अधिष्ठित था। अनोखी प्रतिभा के धनी व महाविद्वान चाणक्य के सानिध्य में आकर घननन्द दानी हो गया। चाणक्य विद्वान तो थे किन्तु उनका रूप अच्छा नहीं था, ये कृष्ण वर्ण के थे। एक बार राजा घनानन्द ने चाणक्य को दरबार में आमंत्रित किया। वहां राजा ने इनके रूप को लेकर इनका अपमान किया। चाणक्य को राजा की बातों पर अत्यधिक क्रोध आया,

तब उन्होंने दरबार में अपनी चोटी खोल दी और राजा से बोले- दरबार में आज जो तुमने मेरा अपमान किया है मैं तुमसे उसका बदला अवश्य लूँगा। जब तक मैं किसी योग्य व्यक्ति को मगध के सिंहासन पर आरूढ़ नहीं करूँगा तब तक अपनी चोटी नहीं बाँधूगा। चाणक्य ने एक साधारण युवक चन्द्रगुप्त को विशाल मगध के साम्राज्य का अधिपति बनाया, इसीलिए इन्हें कूटनीति का सम्राट भी कहते हैं। इससे हमें ज्ञात होता है कि चाणक्य दृढ़ निश्चयी थे। आचार्य चाणक्य के लघु चाणक्य, वृद्ध चाणक्य, चाणक्य नीतिदर्पण, कौटलीय अर्थशास्त्र तथा चाणक्य सूत्र आदि अनेक ग्रंथ प्रसिद्ध हैं चाणक्य के द्वारा लिखी पुस्तक अर्थशास्त्र में शासन सम्बन्धी जो सिद्धान्त हैं वे आज भी अद्वितीय हैं।

विदुरनीति का परिचय—

पिछले पृष्ठों में आप शुक्र व चाणक्य नीति से परिचित हुए। इस अध्याय में आप विदुर नीति से परिचित होंगे। धर्म के अवतार महात्मा विदुर अत्यन्त बुद्धिमान, धर्मज्ञ, ईश्वर भक्त, नीतिनिपुण व व्यवहार कुशल थे। महात्मा विदुर धृतराष्ट्र और पाण्डु के छोटे भ्राता थे, ये दासी पुत्र थे इस कारण ये राज्य के अधिकारी नहीं हुए। पाण्डु की मृत्यु के पश्चात् जब धृतराष्ट्र राजा बने तब ये उनके मंत्री बने। विदुर नीति के तो पंडित थे ही इनकी बनायी गई विदुर नीति एक प्रामाणिक नीति मानी गई। नीति निपुण विदुर सदा धर्म के पक्ष में रहते अधर्म का खण्डन तो ये सभा के मध्य भी कर देते थे। पाण्डवों को जब बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास हुआ तो ये बड़े दुःखी हुए। विदुर जानते थे कि युद्ध विनाशकारी होगा, क्योंकि महाराज धृतराष्ट्र तो अपने पुत्र मोह में इस प्रकार बँध चुके थे कि वे कोई समाधान नहीं खोज पा रहे थे। दुर्योधन अपनी जिद पर अड़ा था। द्यूत क्रीडा की शर्त के अनुसार पांडवों ने बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास पूर्ण करने के बाद जब अपना राज्य वापस मांगा तो पुत्र मोह में बँधे धृतराष्ट्र उन्हें कोई निर्णायक उत्तर नहीं दे पाये। द्यूत क्रीडा के समय भी विदुर ने धृतराष्ट्र को चेतावनी दी थी कि यदि यह खेल समाप्त नहीं किया गया तो अनर्थ हो जायेगा और हस्तिनापुर को विनाश की कगार से कोई नहीं बचा सकता। विदुर नीति युद्ध की नीति न होकर जीवन में प्रेम व्यवहार की नीति के रूप में अपना विशेष स्थान रखती है। जिस प्रकार चाणक्य नीति राजनीतिज्ञ सिद्धान्तों से ओत प्रोत है वहीं विदुर नीति सत् असत् की दृष्टि से विशेष महत्त्व रखती है। विदुर सदा सत् विचारों का ही परामर्श देते। देखा जाय तो महाराज धृतराष्ट्र और विदुर के बीच ये कैसा संयोग था धृतराष्ट्र अपने पुत्र मोह में फंसे थे इसके विपरीत विदुर अपनी नीति में बँधे हुए थे। जब महाभारत का युद्ध प्रारम्भ हुआ तो ये किसी तरफ भी नहीं हुए, लेकिन मन से ये सदा पांडवों के पक्ष में थे और समय समय पर उन्होंने पांडवों की सहायता की तथा उन्हें कई विपत्तियों से भी बचाया।

नीति की चर्चा महाभारत में कई स्थलों पर आयी। महाभारत में वर्णन आता है कि धृतराष्ट्र ने पुत्र मोह में कई बार पांडवों के साथ अन्याय किया। इसी वजह से धृतराष्ट्र बहुत दुःखी थे तब उन्होंने अपनी चिन्ता मिटाने के लिए विदुर से उपाय पूछा। विदुर ने जो भी उपदेश धृतराष्ट्र को दिये, वह विदुर नीति के नाम से प्रसिद्ध हुई। महाभारत में उद्योग पर्व के 33वें से 44वें अध्याय तक नीति सम्बन्धी उपदेश संग्रहित हैं इसमें महात्मा विदुर ने राजा धृतराष्ट्र को लोक परलोक की बहुत सी बातें बतायी हैं।

पंचतंत्र में नीति—

पंचतंत्र जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, पाँच तन्त्रों में निबद्ध है। आचार्य विष्णुगुप्त शर्मा द्वारा रचित पंचतंत्र सरल होने के साथ-साथ बड़ा महत्व का है। यह नीति ग्रन्थ प्रत्येक वर्ग के लिए प्रेरणादायी होने के साथ इसकी लोकप्रियता भारत में ही नहीं बल्कि विश्वव्यापी है। कई विदेशी भाषाओं में अनका अनुवाद हुआ है। पंचतंत्र की रचना काल के विषय में कई मतभेद हैं लेकिन कई निष्कर्षों के आधार पर इतिहासकारों ने पंचतंत्र का रचनाकाल 300 ईसा पूर्व के लगभग स्वीकार किया है। जैसा कि आपको विदित है कि पंचतंत्र के अर्न्तगत पाँच तंत्र आते हैं। आचार्य विष्णुशर्मा एक धर्मशास्त्री थे। सम्पूर्ण पंचतंत्र की कथाएँ पांच तन्त्रों में विभक्त है। इस सम्बन्ध में एक

कथा प्रचलित है कहते हैं कि भारत की दक्षिण दिशा में महिलारोप्य नामक एक नगर था। वहाँ अमरशक्ति नामक एक राजा राज्य करता था। उसके तीन पुत्र बहुशक्ति, उग्रशक्ति और अनंत शक्ति थे। राजा के तीनों पुत्र महामूर्ख थे, राजा ने इन पुत्रों को विद्वान बनाने के लिए नीतिज्ञ विष्णुशर्मा नामक ब्राह्मण को सौंप दिया। विष्णुशर्मा ने राजा को आश्वासन दिया कि मैं मात्र 6महीने में तीनों राजकुमारों को नीतिशास्त्र का ज्ञाता बना देगा। तब विष्णुशर्मा ने पाँच तंत्रों की रचना की मित्रभेद, मित्रसम्प्राप्ति, काकोलूकीय, लब्धप्रणाश और अपरीक्षित कारक। इन तंत्रों के माध्यम से विष्णुशर्मा ने राजकुमारों को नीतिशास्त्रज्ञ बना दिया। तभी यह पाँच तत्त्वों वाला पंचतंत्र नामक नीति ग्रंथ समस्त भूतल पर नीतिज्ञान के लिए प्रसिद्ध हो गया। पंचतंत्र में पाँचों तंत्रों को मिलाकर 71 कथाएँ हैं। मित्रभेद में 22, मित्रसम्प्राप्ति में 8, काकोलूकीय में 16, लब्ध प्रणाश में 12तथा अपरीक्षित कारक तंत्र में13 कथाएँ हैं। इनमें से 45 कथाओं में विष्णुशर्मा ने पशु पक्षियों को पात्र बनाया गया है। आचार्य विष्णुशर्मा ने कथाओं के बीच-बीच में अनेक स्थलों पर नीतिकारों को स्मरण किया है।

हितोपदेश में नीति—

हितोपदेश दो शब्दों के योग से बना है- हित और उपदेश। हितोपदेश की व्युत्पत्ति धा(हि)क्त के योग से होती है यहाँ पर'धा' को 'हि' हो गया और क्त प्रत्यय से हित शब्द बना है। हित और उपदेश शब्द में हितस्य उपदेशः षष्ठी तत्पुरूष समास के बाद गुण संधि करने पर हितोपदेश शब्द की व्युत्पत्ति हुई जिसका अर्थ है हितकारी उपदेश। इस प्रकार हितोपदेश का व्यापक अर्थ प्रत्यक्ष है, एक प्रकार से देखा जाय तो ये हितकारक नीतियों का ही उपदेश है। अर्थ गौरव से युक्त महाकाव्य किरातार्जुनीयम् के प्रथम सर्ग में हित शब्द तीन बार प्रयुक्त हुआ है। हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः अर्थात् जो हितकारी हो और वह मधुर भी हो ऐसा वचन अति दुर्लभ है अर्थात् सुलभ नहीं है। नहि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः कहने का तात्पर्य यह है कि जो लोग दूसरों का हित चाहते हैं वह कटु सत्य भी बोलते हैं। नीति शास्त्र एक ऐसा शास्त्र है जिसे प्रत्येक मनुष्य अपने व्यवहार में लाता है। विष्णुशर्मा द्वारा रचित पंचतंत्र-

श्रुतो हितोपदेशोऽयं पाटतं संस्कृतोक्तिषु।
वचां सर्वत्र वैचित्र्यं नीतिविद्यां ददाति च॥

यह हितोपदेश नामक ग्रंथ संस्कृत भाषा में वार्तालाप करने में पटुता के साथ ही साथ वाणी की विचित्रता तथा नीति सम्बन्धी विद्या को प्राप्त कराता है। हितोपदेश के सम्बन्ध में एक कथा प्रचलित है- गंगा नदी के तट पर पाटलिपुत्र नामक नगर में सुदर्शन नामक राजा राज्य करते थे, उनके चार पुत्र थे। धीरे-धीरे समय बीतता गया और राजा को अपने अनपढ़ पुत्रों के विषय में अत्यधिक चिन्ता होने लगी, क्योंकि वे जानते थे कि शास्त्र के द्वारा अनेक संदेहों को दूर किया जा सकता है, जिसने शास्त्र का अभ्यास नहीं किया देखा जाय तो वह वास्तव में मूर्ख है उसके विषय में कहा गया है-यौवन, धन-सम्पत्ति, प्रभुता और अविवेक। इनमें एक-एक भी सबसे बड़ा अनर्थ करने वाला है, जिसमें ये चारों हों उसके विषय में तो क्या कहना। तत्पश्चात् राजा ने सोचा मेरे पुत्रों में तो ये चारों बातें विद्यमान हैं,इसलिए इस सम्बन्ध में मुझे कुछ उपाय करना चाहिए, चिन्तित राजा ने नीतिशास्त्रज्ञ पं0 विष्णुशर्मा को बुलाकर कहा मेरे इन पुत्रों को नीतिशास्त्र का उपदेश देकर शिक्षित करें। विष्णुशर्मा ने राजा के पुत्रों को जो हितकारी उपदेश दिये वही हितोपदेश कहलाया। हितोपदेश की रचना का समय 11 शती के लगभग माना जा सकता है। सर्वजनहिताय पंचतंत्र तथा अन्य नीति ग्रंथों के आधार पर ही पं0 श्रीनारायणशर्मा ने हितोपदेश नामक ग्रंथ की रचना की। यह ग्रंथ चार भागों में विभक्त है - मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह और संधि। हितोपदेश की कथाओं के प्रमुखपात्र कौआ, मृग, कछुआ, चूहा, धूर्तगीदड़, मुसाफिर, बिलाव, अंधागिद्ध, संन्यासी, चिड़िया आदि हैं। देखा जाय तो इनमें से अधिकतर जंगली प्राणी, पशु पक्षी हैं। इनके अध्ययन से हमें व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त होता है। इन कथाओं में मित्रलाभ में 216, सुहृद्भेद में 184, विग्रह में 149 और संधि में 133 श्लोकों की संख्या है।

संस्कृत गीति काव्य—

गीतिकाव्य का अर्थ अंग्रेजी के शब्द 'लिरिक' के समानांतर है। इस पर विद्वानों में मतभेद भी हैं। हिन्दी साहित्यकोश के अनुसार गीतिकाव्य 'लिरिक' के तत्व बोध के लिए निर्मित आधुनिक शब्द है, जिसका मूलभूतः आधार गीत अथवा गीतिकाव्य है। गीत का प्रयोग प्राचीनतम है और नाट्यशास्त्र में इसके प्रयोग मिलते हैं। 'गीत शब्दितगानयोः(हेमचन्द्र) और गीत गानमिमेसमे (अमरकोश)।

सामान्य शब्दों में गीतिकाव्य का अर्थ है 'गाया जा सकने वाला काव्य' परन्तु प्रत्येक गाए जाने वाले काव्य को गीतिकाव्य नहीं कहा जा सकता। जिस गीत में तीव्र भावानुभूति, संगीतात्मकता, वैयक्तिकता आदि गुण होते हैं, उसे गीतिकाव्य कहते हैं। इसीलिए कहा गया है कि भारतीय गीतिकाव्य की परम्परा स्फुटतः भारतीय वेदों से पूर्व की है। मानव सभ्यता में गीत की प्राचीन परंपरा है। गीत अथवा संगीत का मानव जीवन में विशेष महत्व है। साहित्यदर्पणकार इस सन्दर्भ में कहते हैं— **'भाषा विभाषा नियमात् काव्यं सर्गसमुत्थितम्। एकार्थप्रवणैः पद्यैः सन्धि साग्रयवर्जितम्। खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारि च'।**

संस्कृत गीतिकाव्य उत्पत्ति एवं विकास—

संस्कृत में कथा-प्रधान महाकाव्यों के अतिरिक्त ऐसे अनेकों काव्य ग्रन्थों की रचना भी हुई है, जिसमें उन्मुक्त माननीयभावों एवं उच्छवासों को प्रमुख स्थान दिया गया है। गेयता तथा संगीत के तत्वों से युक्त होने के कारण इन्हें गीतिकाव्य कहा गया है। महाकाव्यों की भॉती इन गीतिकाव्यों में कवि कथा की नियोजित रूढियों और पारम्परिक वर्णनों की सीमा में बड़ा नहीं होता है। यहां वह सर्वथा उन्मुक्त होकर जीवन और जगत् के अपने निजी अनुभवों को गीतों के माध्यम से अभिव्यक्ति देता है। इस क्षेत्र में प्रकृति उसकी स्वच्छन्द सर्जरी होती है। वह प्रकृति के साथ अपने हृदय को रागात्मक भावों का सहयोग स्थापित पर एक पारलौकिक संसार की सृष्टि करता है जिसके मधुरस से श्रोता और पाठक आत्मविभोर होकर उन्मुक्त कंठ से प्रशंसा कर उठते हैं। संक्षेप में गीतिकाव्य के संस्कृत साहित्यरूपी पारलौकिक वाटिका के ऐसे विभाग हैं। जिनमें विहार कर सरस पाठक मृत्युलोक में भी पारलौकिक आन्नद का अनुभव करते हैं।

वैदिक वाङ्मय से ही संस्कृतसाहित्य का उद्भव हुवा हैं। वैदिक काल से काव्यत्व का प्रचार प्राप्त होता आ रहा है। इसमें गीतिकाव्य के सौन्दर्य परक सुन्दर उदाहरण प्राप्त होते हैं। रामायण में अनेक स्थानों पर गीतिकाव्य के तत्त्वों का प्रयोग किया है। रामायण एक प्रबन्ध काव्य है फिर भी वाल्मीकि ने अनेक स्थलों पर गीतिकाव्य के तत्त्वों का प्रयोग किया है। गीतिकाव्य की विकास परम्परा में महाभारत का भी अप्रत्यक्ष रूप से योगदान अवश्य है। वाल्मीकि ने अपने मनोभाव को प्रकट करने के लिए काव्य की जिस प्रवृत्ति का प्रारम्भ किया वह महाभारत में भी स्पष्ट रूप से लक्षित होता रहा है। महाभारत के स्वयंवर अवसर में, नल उपाख्यान में पद की मनोदशा तथा पाण्डवों के वन गमन काल में करुण क्रन्दन आदि अनेक स्थलों में गीतिकाव्य के लक्षण घटित होते हैं। रामायण, महाभारत जैसे आर्ष काव्यों में भी अनुभूत भावों को गीति के रूप में प्रकट किया गया है। महाकाव्य में गाम्भीर्य, प्रशस्तता तथा उदात्तता गुण अपेक्षित होता है किन्तु इसके विपरीत गीतिकाव्य में माधुर्य, मृदुता तथा आन्तरिक वेग आदि गुण मुख्य होते हैं। व्याकरणशास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य पाणिनि के 'पातालविजय' काव्य में भी गीतिकाव्य के उदाहरण प्राप्त होते हैं। महाकवि कालिदास की रचनाओं में गीतितत्व विकसित रूप में प्रकट हुआ है।

महाकवि कालिदास रचित 'मेघदूत', जयदेव रचित 'गीतगोविन्द', अमरू कवि का 'अमरुशतकम्' तथा पंडितराज जगन्नाथ कृत 'भामिनीविलास' ऐसे ही कृतियां हैं जिनका आस्वाद किये बिना संस्कृतसाहित्य की काव्य माधुरी से परिचित नहीं हुआ जा सकता है। संस्कृतसाहित्य में गीतिकाव्य के तत्व वेदों से ही प्राप्त होने लगते हैं। ऋग्वेद में 'उषा' का वर्णन अद्भुत गीतात्मकता से युक्त है। आदिकवि वाल्मीकि प्रणीत रामायण के सत्रहवें सर्ग में निहित अशोकवाटिका का वर्णन अलौकिक गीतात्मकता से युक्त है। यहां तक कि आदि कवि की

कवित्वशक्ति की प्राप्ति से संबंधित प्राथमिक घटना कौञ्च-बध अपने आप में अपूर्व रागात्मकता छुपाए हुए हैं। रामायण के पश्चात् संस्कृत के अनेकों नाटकों में गीतिकाव्य के तत्व ढूंढे जा सकते हैं। नाटकों में निहित गीतात्मकता की ओर भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में संकेत कर दिया है।**'मृदुललितपदाढ्यं गूढशब्दार्थहीनं।जनपदसुखबोध्यं युक्तिमन्नृत्ययोज्यम्'।।**

भरत का यह कथन यद्यपि नाटकों के विषय में है फिर भी संकेत रूप में इसमें गीतिकाव्य की मृदुललित शब्दों का प्रयोग, गूढ अर्थ वाले क्लिष्ट पदों का बहिष्कार सर्वजन बोध्यता तथा विभिन्न रसों श्रृंगार, करूण, अद्भुत, शांत, आदि का परिपाक आदि विशेषताएं निहित है। इस प्रकार संस्कृत गीतिकाव्य सर्जना का प्रारम्भ बहुत प्राचीन काल से ही हुआ और अद्यावधि पर्यन्त इसकी रचना होती चली आ रही है। संस्कृत गीतिकाव्य की सुविस्तृत परम्परा अधोलिखित प्रमुख रूपों में प्राप्त होती है।

गीतिकाव्य के तीन भेद है। 1.प्रबन्धगीति (खण्डकाव्य), 2.मुक्तकगीति 3.मुक्तक संदोह इनमें से मुक्तकगीति के चार भेद हैं। 1.श्रृंगारमुक्तक, 2.करूणमुक्तक, 3.नीतिमुक्तक 4.वैराग्यमुक्तक इसी प्रकार मुक्तक संदोह के दो भेद है। 1.विषयप्रधान 2.स्तोत्र के रूप में प्राप्त होते है।

प्रबन्धगीति की कोटि में कालिदास कृत मेघदूत में कालिदास ने प्रकृति के अनेक मनोहर चित्रों को प्रस्तुत किया हैं। कालिदास का प्रकृति चेतना में विश्वास है जिसको उन्होंने स्थान-स्थान पर प्रदर्शित किया है। ऋतुसंहार की भी गणना गीतिकाव्य में की जाती है। इसी प्रकार जयदेवकृत गीतगोविन्द प्रमुख हैं। मुक्तकगीति के अंतर्गत अमरुशतक, भर्तहरि कृत शतकत्रय (श्रृंगारशतक, नीतिशतक, वैराग्यशतक)। गोवर्धनाचार्य कृत आर्यासप्तशती, पण्डितराज जगन्नाथ का विलासकाव्य, गंगालहरी। मुक्तक संदोह की कोटि में कालिदास कृत ऋतुसंहार, भामिनीविलास, चंडीशतक आदि की गणना की जा सकती है।

1.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपने जाना कि रामायण को आदिकाव्य कहा जाता है। इसके रचयिता महर्षि वाल्मीकि है। यही भारतीय काव्य जगत का उद्गम स्रोत भी माना जाता है। रामायण अपने परवर्ती विशाल काव्य एवं नाट्य साहित्य का उद्गम ग्रन्थ है। रामायण की प्रशंसा समस्त साहित्य जगत् करता है। वाल्मीकि को कविकोकिल की संज्ञा से विभूषित किया गया है। रामायण का अंगी रस करूण है। चरित्र चित्रण के लिये रामायण में वर्णित पात्रों की चारित्रिक विशेषतायें मानदण्ड के रूप में परिलक्षित है। सीता का चरित्र एक स्त्री सुलभ मर्यादा की शिक्षा सम्पूर्ण परवर्ती समाज को प्रदान करता है। एक आदर्श पत्नी का प्रतिबिम्बन इनके चरित्र में प्रतिपद अनुकरणीय है। इसी प्रकार नायक राम एक पत्नीव्रत नायक है। वह विषम परिस्थितियों में भी विचलित नहीं होता। इसीलिये भारतीय मनीषा कहती है कि – **राम तुम्हारा चरित्र स्वयं ही काव्य है। जो कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है**। इसके अध्ययन से आपने जाना कि रामायण तथा महाभारत हमारे जातीय इतिहास हैं। भारतीय सभ्यता का भव्य रूप इन ग्रन्थों में जिस प्रकार फूट निकलता है वैसा अन्यत्र नहीं। कौरवों और पाण्डवों का इतिहास –वर्णन ही इस ग्रन्थ का उद्देश्य नहीं है, अपितु हमारे हिन्दू-धर्म का विस्तृत एवं पूर्ण चित्रण भी प्रयोजन है। महाभारत का शान्तिपर्व जीवन की समस्याओं को सुलझाने का कार्य हजारों वर्षो से करता आ रहा है। इसलिए इस इतिहास ग्रन्थ को हम अपना धर्मग्रन्थ मानते आये हैं, जिसका पठन-पाठन श्रवण-मनन, सब प्रकार से हमारा कल्याणकारक है। इस ग्रन्थ का सांस्कृतिक मूल्य भी कम नहीं है। सच तो यह है कि केवल इसी ग्रन्थ के अध्ययन से हम अपनी संस्कृति के शुद्ध स्वरूप से परिचय पा सकते हैं। भारतीय साहित्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ 'भगवद्गीता' इसी महाभारत का एक अंश है। रामायण और महाभारत दोनों में बहुत कुछ अन्तर है। फिर भी रामायण में वर्णित तथ्यों के समानान्तर उनके चर्चायें महाभारत में कई पर्वों में पायी जाती है। महाभारत के अनेक पर्वों में रामायणकालीन घटनाओं की वस्तु स्थिति का परिचय प्राप्त है। यह ग्रन्थ जय भारत और महाभारत के नाम से क्रमश: पूर्णता को प्राप्त हुआ। इसमें

कुल श्लोकों की संख्या 100000 मानी गयी है। आपने कालिदास, भारवि , माघ, श्री हर्ष का परिचय एवं वह किस शताब्दी में हुए थे। उनके ग्रन्थ क्या है ? इसके विषय में परिचित प्राप्त किया। इनके परिचय को जानते हुए उनके महत्त्व को भी जाना। साथ ही आपने नीतिकाव्य एवं गीतिकाव्य के विषय में भी परिचय प्राप्त किया।अत: इस इकाई का अवलोकन कर आप रामायण महाकाव्य के साहित्यिक, सामाजिक तथा अन्य वैशिष्ट्य को बता सकेंगे।

1.5 शब्दावली

1. स्वर्गारोहण – स्वर्ग पर पहुँचना।
2. शरशय्या - बाणों से बनाये हुये शयन स्थान को कहा जाता है।
3. भाराक्रान्त - भार से आक्रान्त
4. उच्चवंशोत्पन्न - उच्चवंश में उत्पन्न
5. अनात्मश्लाघी - आत्मश्लाघा से परे
6. अस्ति - है
7. कश्चित - कौन
8. वाग - वाणी
9. विरही - बेचैन
10. भ्रातवध - भाई का वध
11. शर्त्रवः - शत्रुओं ने
12. अधे - आह
13. प्रभाव: - प्रभाव
14. उद्भावक - उत्पन्न करने वाला
15. परोक्ष - पीठ पीछे
16. दीर्घदर्शी - दूर तक दृष्टि रखने वाला
17. हितकारी - हित करने वाले
18. क्षात्रधर्मानुकूल – क्षत्रिय धर्म के अनुकूल
19. रामायण – राम और अयन दो शब्दों से मिलकर रामायण शब्द बनता है। अयन का अर्थ है घर, निवास । नायक- ग्रन्थ के वर्णन गौरव के लिये कथावस्तु का श्रेष्ठ संचालक नायक कहलाता है।

1.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.

1.ग. **वाल्मीकि**

2. ख. **वाल्मीकि**

3. क. **रामचन्द्र**

4. क **रामायण**

2.

1. ख. **व्यास**

2. ख. महाभारत

3. क. **जय**

4. ग. **आश्वलायन गृह्यसूत्र**

5. क. **1 लाख**

6. क. भृगु

7. ग. **चन्द्रगुप्त** मौर्य

8. ख. पर्व

3.

1.घ

2.क

3. ख

4. क

4.

1. क. **कृष्ण** 2. **माघ** 3. **सुप्रभदेव वर्मलात** 4. **क. ब्रह्मगुप्त**

5. ख**. 625 ई0** 6. ग. **गुजरात** 7. ख. सूर्य की छाया 8. ख. त्रयो गुणा:

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय – चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी।
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ वाचस्पति गैरोला – चौखम्भासुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
3. बलदेव उपाध्याय- संस्कृत साहित्य का इतिहास शारदा निकेतन5 बी, कस्तूरबा नगर,सिगरा वाराणसी।
4. डॉ0 बाबूराम त्रिपाठी- श्री भर्तृहरि कृत-नीतिशतकम्महालक्ष्मी प्रकाशनशहीद भगतसिंह मार्गआगरा।
5. प्रो0 बालशास्त्री - हितोपदेशव्याकरण विभाग संस्कृत चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन।
6. डा॰ उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' संस्कृत साहित्य का इतिहास।
7. आचार्य बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास।
8. आचार्य विश्वनाथ, साहित्य दर्पण।

1.8 अन्य उपयोगी ग्रंथ

1. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय
2. पुराण विमर्श – आचार्य बलदेव उपाध्याय- चौखम्भा सुरभारती
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ वाचस्पति गैरोला – चौखम्भा प्रकाशन
4. आचार्य धनंजय-दशरूपक
5. महाकवि भारवि-किरातार्जुनीयम्
6. डा॰ कपिलदेव द्विवेदी-संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास

1.9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. वाल्मीकि का परिचय अपने शब्दों में लिखिये।
2. राम का विस्तृत चरित्र चित्रण कीजिये।
3. व्यास का परिचय देते हुये व्यासोपाधि पर विस्तृत चर्चा कीजिये।
4. महाभारत के अंगीरस पर एक निबन्ध लिखिये।
5. कालिदास के जन्म समय के विषय में परिचय दीजिये।
6. माघ और भारवि की कला में अन्तर स्पष्ट कीजिये ।
7. श्री हर्ष के जन्म समय के विषय में परिचय दीजिये।

इकाई-2 संस्कृत साहित्य का सामान्य परिचय : भाग-2

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 संस्कृत गद्य साहित्य की परम्परा
    2.3.1 गद्यकाव्य परम्परा
    2.3.2 चम्पूकाव्य परम्परा
    2.3.3 कथा साहित्य परम्परा
    2.4 संस्कृत नाट्य साहित्य की परम्परा
    2.4.1 संस्कृत नाट्य साहित्य का परिचय
    2.4.2 संस्कृत नाट्य साहित्य के प्रमुख नाट्ककार
2.5 सारांश
2.6 शब्दावली
2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.9 अन्य उपयोगी ग्रंथ
2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

संस्कृत भाषा एवं साहित्य से सम्बन्धित यह तृतीय खण्ड की यह द्वितीय इकाई है। इससे पूर्व खण्ड में आपने संस्कृत काव्य साहित्य की परम्परा का अध्ययन किया। प्रस्तुत खण्ड में आप संस्कृत साहित्य के विषययक गद्यकाव्य परम्परा एवं नाट्य साहित्य की परम्परा में जानेंगे। वैदिक साहित्य में गद्य साहित्य का रूप उनमें वर्णित आख्यानों में दिखाई पड़ता है। इन आख्यानों में गद्य के साथ पद्य का भी भाग मिलता है जिसे ''गाथा'' कहते हैं। ऋग्वेद में 'नाराशंसी' गाथाओं का उल्लेख है। संस्कृत गद्य का आरम्भ ब्राह्मण-ग्रन्थों और उपनिषदों के गद्य में देखा जा सकता है। बहुत दिनों तक सरल स्वाभाविक शैली में गद्य लिखने की परम्परा चलती रही। समय के साथ गद्य में भी काव्य के उपादानों को प्रविष्ट कराने की प्रवृत्ति का जन्म हुवा। आरम्भिक शिलालेखों में गद्य-काव्य प्राप्त होते हैं। संस्कृत साहित्य में गद्य-काव्य की रचना छठी-सातवीं शताब्दी में गद्य काव्य के दण्डी, सुबन्धु एवं बाणभट्ट के द्वारा की गई। दण्डी का दशकुमारचरितम्, सुबन्धु की वासवदत्ता एवं बाणभट्ट की कादम्बरी तथा हर्षचरितम् संस्कृत साहित्य के उत्कृष्टतम गद्य काव्य हैं। लगभग 1200 वर्ष बाद उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ने 'शिवराजविजयम्' लिखकर बीच के खालीपन को दूर करने का प्रयास किया। इनके अतिरिक्त गद्य रचना विभिन्न कालों में प्रायः बाण का अनुकरण ही प्रतीत होता है। इस इकाई में आप संस्कृत गद्य काव्य की परम्परा का उद्भव किस प्रकार हुआ, गद्यकाव्य का प्रयोजन क्या है, गद्यकाव्य का विकास, प्रमुख संस्कृत गद्यकाव्यों के बारे में अध्ययन करेंगे।

साथ ही प्रस्तुत इकाई में आप यह जानेगें कि नाटक किसे कहते हैं। संस्कृत नाटकों का उद्भव एवं विकास किस प्रकार हुआ। महाकवि कालिदास आदि कवियों का संस्कृत नाटकों में क्या योगदान है। नाटकों के द्वारा सहृदय सामाजिक को आनन्द की प्राप्ति होती जो मानव के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसकी उपयोगिता से परिचित होंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- संस्कृत गद्यकाव्य की परम्परा से परिचित हो सकेंगे।
- गद्यपरम्परा से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण तथ्यों का अध्ययन कर सकेंगे।
- गद्यकाव्य के विकास क्रम के विषय में अध्ययन करेंगे।
- संस्कृत के प्रमुख गद्यकाव्यों के विषय में अध्ययन करेंगे।
- नाटक किसे कहते हैं इनका उद्भव किस प्रकार हुआ, यह जानने में समर्थ हो सकेंगे।
- उद्भव से सम्बन्धित भारतीय एवं पाश्चात्य मतों को समझा पायेगें।
- कालिदास की रचनाओं के बारे में बता सकेगें।
- सुबन्धु के समय विषयक मतों को बता सकेंगे।
- बाण के जीवन परिचय का अध्ययन कर सकेगें।
- दण्डी के व्यक्तित्व बाता सकेंगे।

2.3 संस्कृत गद्य साहित्य की परम्परा

2.3.1.1 गद्यकाव्य परम्परा—

मुख्य रूप से काव्य के तीन भेद माने गए हैं—पद्यकाव्य, गद्यकाव्य तथा चम्पू जिसे मिश्रितकाव्य भी कहते हैं। संस्कृतसाहित्य में गद्य की परम्परा वैदिक संहिताओं के समान प्राचीन कही जाती है। पद्य की अपेक्षा गद्य को

संस्कृतसाहित्य में अधिक महत्व दिया जाता है, क्योंकि गद्य के लेखक को अपने भावों को अभिव्यक्त करने की पूर्ण छूट है, किन्तु पद्य में छन्द अक्षर, ह्रस्व, दीर्घ आदि का बन्धन रहने से लेखक को उतनी स्वतन्त्रता नहीं रहती । इसलिए गद्य के सम्बन्ध में यह उक्ति है- **'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'** गद्य कवियों के लिए एक कसौटी है, जिसमें जितना प्रबल वैदुश्य रहेगा, वह कवी उतना ही उत्तम गद्य लिख सकता हैं।

वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्, निरुक्त, महाभारत, पुराण प्रवृत्ति ग्रन्थों से संस्कृत भाषा के गद्य को सम्वर्द्धनशील परम्परा प्राप्त हुई है। आगे चलकर टिकाओं, कथाकाव्यों आख्यायिका ग्रन्थों तथा चम्पू, नाटक आदि में भी गद्य का प्रौढ़ रूप सामने आया है । गद्यभाषा की प्राचीनतम गाथा एवं आख्यायिकाएँ आज हमें उपलब्ध नही है। आचार्य दण्डी, सुबन्धु और बाणभट्ट ये तीनों ही संस्कृत के गद्य वैभव के स्वामी है । फिर भी यह स्मरणीय है कि इनके पूर्व भी संस्कृत के गद्य लेखन की परम्परा अवश्य विद्यमान थी । दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में शास्त्रीय गद्य का अवतरण करने वाले तीन विद्वानों शबरस्वामी 400 ई0, स्वामी शंकराचार्य 700 ई0 तथा जयन्तभट्ट 900 ई0 के नाम उल्लेखनीय हैं। पौढ़मीमांसा शबरस्वामी का कर्म मीमांसाभाष्य, स्वामी शंकराचार्य कृत ब्रह्मसूत्र, गीता एवं उपनिषद के भाष्य सुप्रसिद्ध नैयायिक जयन्तभट्ट के न्यायमंजरी आदि दर्शनग्रन्थ गद्य का परिष्कृत एवं सुसंस्कृत रूप उपस्थित करते हैं ।

गद्यकाव्य के क्षेत्र में इस प्रकार के प्रबुद्ध, लोकप्रिय, श्लाघ्य गद्य के प्रवर्तन दण्डी, सुबन्धु और बाणभट्ट की कृतियों से लक्षित होता है । यद्यपि गद्य का वैभवशाली रूप, जिससे संस्कृत भाषा को आगे बढ़ाने का पर्याप्त अवसर हमें दण्डी, सुबन्धु तथा बाणभट्ट की रचनाओं में मिलता है । फिर भी यह सुनिश्चित मत है कि गद्य परम्परा दण्डी आदि से भी पहले की है। दण्डी, सुबन्धु और बाणभट्ट इन तीनों गद्यकार कवियों ने अपनी-अपनी स्वतन्त्र शैलियों को दिया, जो अत्यन्त ही रोचक थी, इसी परम्परा को आगे के गद्यकार इनका ठीक-ठीक अनुकरण करने में समर्थन हो सके ।

गद्यकाव्य का उद्भव एवं उत्कर्ष—

संस्कृत साहित्य में गद्य काव्य की परम्परा को वैदिक संहिताओं जितना प्राचीन कहा जा सकता है । साहित्य के अनुशीलन से यह सिद्ध होता है कि गद्य काव्य का प्रादुर्भाव सर्वप्रथम संस्कृत भाषा में ही हुआ है। प्राचीनतम गद्य का उदाहरण कृष्णयजुर्वेद, तैत्तिरीयसंहिता, ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषद ग्रन्थों, निरुक्त, महाभारत और महाभाष्य आदि-आदि ग्रन्थों में संस्कृत भाषा के गद्य को सम्वर्धनशील परम्परा उपलब्ध हुई । आगे चलकर गद्यकाव्य का पौढ़ रूप सामने आया तत्वज्ञान, दर्शन, विज्ञान, ज्योतिष, भाषाशास्त्र, व्याकरण आदि ग्रन्थों में भी गद्य को पुष्पित-पल्लवित करने की पूरी सुविधाएं प्राप्त रही। आरंभ में ऐतिहासिक गवेषणाओं से हमें प्रतीत होता है कि भारतीय साहित्य के प्राचीनतम अंश वैदिकसाहित्य में गाथाओं का अस्तित्व बड़ी प्रभावोत्पादक रीति से स्वीकार किया गया है । प्रारम्भ में यद्यपि गद्य रचना को काव्य कौशल का कारण माना जाने लगा था गद्य कृतियों को काव्य न कह कर उसको कवियों की कसौटी माना जाने लगा था, तथापि हम देखते हैं कि इसका परिणाम यह हुआ कि आत्मश्लाघा एवं काव्य कौशल के लिए कवियों ने ऐसे गद्य का निर्माण किया जो समासबहुल, अतिदुरूह और पाण्डित्य प्रदर्शन से भरपूर था। हम देखते हैं कि एक छोटी सी कथा को विभिन्न प्रसंगों में उलझा कर, इतना जटिल बना दिया गया कि मुख्य कथा को समझना ही दुष्कर हो जाता है। अतः यह कहा जा सकता है कि वैदिक काल से ही गद्य काव्य का उद्भव एवं उत्कर्ष प्रारम्भ हो चुका था।

गद्यकाव्य का विकास क्रम—

संस्कृत में गद्य काव्यों की प्राचीनता में कोई सन्देह नहीं । वैदिक युग से लेकर मध्यकाल तक गद्य के विकास का क्रम अत्यन्त मनोरम है। यह प्राचीन भाषा दो वर्गों में विभाजित हैं एक वैदिक एवं दूसरी लौकिक। वैदिक भाषा वैदिक साहित्य में- संहिताओं, ब्राह्मणों, आरण्यकों, उपनिषदों एवं सूक्तों में प्रयुक्त हुई है तथा लौकिक संस्कृत परवर्ती साहित्य में देखा गया है। साहित्य जहाँ प्रारम्भ में पद्यात्मक तथा बाद में गद्यात्मक हो जाता है,

वहीं लौकिक संस्कृत साहित्य का अधिकांश भाग पद्यात्मक है। यहाँ तक कि ज्योतिष, गणित, व्यवहार, आयुर्वेद जैसे शास्त्रीय विषयों में भी संस्कृत साहित्यकारों ने पद्य का ही आश्रय लिया। गद्य का प्रयोग व्याकरण ग्रन्थों, भाष्यों, आख्यायिकाओं तथा आंशिक रूप से नाटकों में हुआ है। संस्कृत साहित्य के विपुल विस्तार को देखते हुए उसमें गद्य का भाग बहुत ही कम है। लेखकों और पाठकों का रूझान पद्य की ओर अधिक रहा है। कंठस्थ करने में सरल होने के कारण गद्य जनप्रिय रहे हैं, वह भी उस समय में जब अध्ययन-अध्यापन मख्य रूप से मौखिक ही होता था। 'रामायण', 'महाभारत' तथा विशाल पुराण साहित्य पद्य में ही रचे गये थे, किन्तु शीघ्र ही गद्य ने अपने व्यवहारिक महत्व के कारण, साहित्य में प्रतिष्ठित पद प्राप्त कर लिया और उसे कवियों की सच्ची कसौटी माना जाने लगा। साहित्य की दृष्टि से संस्कृत गद्यकाव्य को हम मुख्यतः छ: भागों में विभाजित कर सकते हैं— 1. वैदिकगद्य, 2. दार्शनिकगद्य, 3. सूत्रात्मकगद्य, 4. पौराणिकगद्य, 5. शास्त्रीयगद्य, 6. लौकिकगद्य।

गद्यकाव्य के भेद एवं प्रकार—

'आख्यायिका कथा खण्डकथा परिकथा तथा। कथालिकेति मन्यन्ते गद्यकाव्यं च पञ्चधा'।।

अग्निपुराण में (336/12) गद्यकाव्य के पाँच भेदों का वर्णन मिलता है। दण्डी आदि आचार्यों ने संस्कृत गद्यकाव्य के दो ही मुख्य भेद किये हैं- कथा और आख्यायिका। यथा— **अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातय:।** काव्यादर्श 1/28

प्रमुख संस्कृत गद्यकाव्य—

महाकवि सुबन्धु— 'वासदत्ता' नामक गद्यकाव्य के रचयिता सुबन्ध का स्थितिकाल निश्चित नहीं है। निश्चित साक्ष्यों के अभाव में सुबन्धु का काल निर्धारित कर पाना दुरुह कार्य हैं कुछ स्रोतों के आधार पर सुबन्धु का सम्भावित समय प्राप्त किया जा सकता है। वामन, (समय 800ई०) ने 'काव्यलंकारसूत्र' में 'उत्कलिकप्राय' गद्य के उदाहरण के रूप में एक गद्यांश उद्धृत किया है।

कुलिशशिखरखरनखरप्रचयप्रचण्डचपेटपातिमत्तमातङ्गकुम्भस्थल-
गलन्मदच्छटाच्छुरितचारुकेसरभारभासुरमुखे केसरिणि.....।

यही गद्यांश बाण के 'हर्षचरित' में भी ज्यो का त्यों पाया जाता है। अत्यधिक भिन्नताओं के साथ ही गद्यांश सुबन्धु की 'वासवदत्ता'में भी पाया जाता है-

कुलिशशिखरखरनखरप्रचयप्रचण्डचपेटपातिमत्तमातङ्गकुम्भस्थल-
रुधिरच्छताच्छुरितचारुकेसरभासुरकेसरिकदम्बेन.....।

वामन और बाण के उद्धरणों में एकरूपता होने से यह प्रतीत होता है कि इस गद्यांशके सन्दर्भ में वामन बाण के 'हर्षचरित' से ही प्रभावित हुए होंगे क्योंकि बाण का काल सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध लगभग निश्चित हैं। बाण हर्ष के दरबारी कवि थे। हर्षका समय 606 से 647 ई० माना जाता है। अतः बाण इस समय के आधार पर वामन (800ई०) पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। पुनः 'हर्षचरित' और 'वासवदत्ता' में उद्धरणों की साम्यता से यह प्रतीत होता है कि बाण ने सुबन्धु से इस गद्यांश को ग्रहण किया होगा क्योंकि बाण ने 'हर्षचरित' के प्रारम्भ में 'वासवदत्ता' नामक रचना का उल्लेख किया है। इसमें बाण ने 'वासवदत्ता को कवित्व के गर्व का नाशक बताया है। यह भी कहा जा सकता है कि बाण की उपरोक्त उक्ति भास के 'स्वप्नवासवदत्तम् के बारे में भी हो सकती है लेकिन ऐसा सोचने के लिए कोई आधार नहीं है क्योंकि बाण ने 'हर्षचरित' के प्रारम्भ में भास का अलग से उल्लेख किया है। इसके अतिरक्त 'स्वप्नवासवदत्तम् सरल शैली में रचित एक नाटक है, जिसमें श्लिष्ट ता या विद्धता का कोई विशेष पुट नहीं दिखता। अतः कहा जा सकता है कि कवियों का मान-मर्दन कर सकने में कोई 'वासवदत्ता' सक्षम है तो वह है-सुबन्धु की 'वासवदत्ता'। अपने विद्वतापूर्ण वर्णनों के कारण, जटिल श्लेवषयुक्त सामसिक शैली के कारण सुबन्धु की 'वासवदत्ता' को ही यह गौरव दिया जा सकता है। इस सम्बन्ध डॉ० भोलाशंकर व्यास का विचार द्रष्टोव्य है- हमें ऐसा प्रतीत होता है, बाण को सुबन्धु की कृति का पूरी तरह पता था और हर्षचरित से

भी अधिक इस बात की पुष्टि कादम्बरी की कथानक रूढ़ियों के सजाने और शैली के प्रयोग से होती है।अतः बाण सुबन्धु से परवर्ती सिद्ध होते हैं।

वाक्पतिराज (700-725) ने प्राकृत-काव्य 'गउडवहो' की रचना किया हैं। इसमें उन्होंने सुबन्धु का उल्लेख किया है लेकिन बाण का नहीं। इससे यह प्रतीत होता है कि उस समय तक सुबन्धु की पर्याप्त प्रसिद्धि हो चुकी थी, पर बाण अभी तक अप्रसिद्ध ही थे। इन तथ्यों के आधार पर सुबन्धु के काल की उत्तरसीमा बाण से पूर्व अर्थात् लगभग 550 ई० आंका जा सकता है। अब सुबन्धु के काल की पूर्व सीमा पर विचार अपेक्षित है। सुबन्धु के काल की पूर्व सीमा 'वासवदत्ता' में उपलब्ध तथ्यों के आधार पर भी कुछ-कुछ निर्धारित की जा सकती है। इसमें रामायण, महाभारत, गुणाढ्य की बृहत्कथा, कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् इत्यादि का उल्लेख मिलता है। सुबन्धु ने एक रमणी के वर्णन के प्रसंग में श्लेजष के माध्यम से नैयायिक उद्योतकार तथा बौद्धधर्मकीर्ति के 'बौद्धसंगत्यालंकार' नामक ग्रन्थ का भी उल्लेख किया है परन्तु ये प्रमाण सुबन्धु के काल की पूर्वसीमा निर्धारित कर सकने में सक्षम नहीं है क्योंकि उपरोक्त कृतियों या उद्योतकार का समय बहुत निश्चित नहीं हो पाया है लेकिन इतना निश्चित है कि उल्लेख करने के कारण सुबन्धु इन सबके बाद के विरूद्ध होते हैं। इस सम्बन्ध में एक साक्ष्य सहायक सिद्ध हो सकता है। सुबन्धु ने 'वासवदत्ता' के प्रारम्भ में महान विक्रमादित्य की मृत्यु पर विलाप करते हुए लिखा है कि-

''सा रसवत्ता विहता नवका विलसन्ति चरित नो कंकः।
सरसीव कीर्तिशेषं गतवति भुवि विक्रमादित्ये।।

यहाँ पर वर्णित विक्रमादित्य कौन था, इसका यथार्थ परिचय नहीं मिल पाता है । इतिहास में अनेक विक्रमादित्य का उल्लेख मिलता है इसलिए यह भ्रम होना स्वाभाविक है कि किस विक्रमादित्य का उल्लेख किया गया है लेकिन यहाँ पर ऐसा प्रतीत होता है कि विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त द्वितीय (374-413ई०) का ही उल्लेख किया गया है क्योंकि वामन ने अपने 'काव्यलंकारसूत्र' में सुबन्धु को चन्द्रगुप्त के एक पुत्र का मन्त्री बताया है। अर्थप्रौढ़ी के पाँच भेदों में से अन्तिम साभिप्राय का वर्णन करते हुए वामन ने लिखा है-साभिप्रायत्वं यथा-

सोऽयं सम्प्रति चन्द्रगुप्तनयश्चतन्द्रपकार्शो युवा,
जातो भूपतिराश्रयः कृतधियां दिष्टतया कृर्तार्थश्रमः।

इसी की वृत्ति में वामन लिखते हैं-आश्रयः कृतधियामित्यस्य च सुबन्धुसाचिव्योपक्षेपमरत्वात् साभिप्रायत्वम्। डॉ० मानसिंह का मत है कि 'चन्द्रगुप्तनयः' से चन्द्रगुप्त द्वितीय के पुत्र कुमारगुप्त प्रथम का अभिप्राय है। ऐसा प्रतीत होता है कि कुमार गुप्त प्रथम युवावस्था में अपने पिता के पश्चा त् 414ई० में सत्तासीन हुआ (सम्प्रति चन्द्रगुप्तनयष्चन्द्रप्रकाषोयुवा), उसने सुबन्धु को बुद्धिमान (कृतार्थ) समझकर अपना मन्त्री बनाया। सुबन्ध को उस समय तक युवावस्था पार कर लेना चाहिए। इसलिए उनका जन्म कुछ पहले (400ई०) हुआ होगा और उन्होंने विक्रमादित्य चन्द्रगुप्तद्वितीयका शासनकाल भी देख था। कुमारगुप्त प्रथम के शासन के उत्तरार्द्ध में शत्रुओं का आक्रमण हुआ जिसको सुबन्धु ने भी देखा। 'वासवदत्ता' उनके जीवन के उत्तरार्द्ध की रचना होगी। स्कन्दगुप्त (455-676) के शासन काल में भी सुबन्धु जीवित रहे होंगे। अतः सुबन्धु को 400-465ई० के बीच का माना जा सकता है। ऐसा भी माना जा सकता है कि 'चन्द्रप्रकाश:' कुमारगुप्त प्रथम का विशेषण है क्योंकि कुमारगुप्त प्रथम के उनके सिक्कों में उसकी तुलना चन्द्रमा से की गयी है। ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर कुमार गुप्त प्रथम का मृत्युकाल लगभग 455 ई० माना गया है।

सुबन्धु द्वारा उद्योतकार का उल्लेख करना भी उपरोक्त समय को मानने में सहायक है क्योंकि ऐसा समझा जाता है कि उद्योतकार ने प्रसिद्ध तर्कशास्त्री दिड्.नाग की आलोचना की है और ए०बी०कीथ ने दिड्.नाग को 400ई० का माना है। बलदेवउपाध्याय ने भी दिड्.नाग का समय 345-425ई० माना है। इस प्रकार उद्योतकार उसके बाद के ही रहे होंगे। बलदेव उपाध्याय के अनुसार उद्योतकार का समय षष्ठ शतक ई० हैं सुबन्धु द्वारा उद्योतकार का

उल्लेख यह प्रमाणित करता है कि उद्योतकार का 'न्यायवार्तिक' 'वासवदत्ता' की रचना के समय ख्याति प्राप्त कर चुका होगा। उपर्युक्त साक्ष्यों के आधार पर सुबन्धु के काल की पूर्वसीमा 385-414ई० के लगभग मान जा सकती है। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वानों ने भी अपने शोध के आधार पर सुबन्धु के समय के सम्बन्ध में अपना मन्तव्य प्रकट किया है, जो इस प्रकार है-

1.पण्डित शंकदेवशास्त्री ने सुबन्धु का समय 500 ई० या इससे कुछ पूर्व माना है।

2.डॉ० भोलाशंकर व्यास के अनुसार सुबन्धु का काल छठीं सदी का मध्य है।

3.चन्द्रशेखर पाण्डेय ने सुबन्धु को 600 ई० या इससे कुछ पूर्व का ठहराया है ।

4.डॉ० कपिलदेव द्विवेदी का मानना है कि सुबन्धु 600ई० के लगभग रहे होंगे।

5.आचार्य बलदेव उपाध्याय ने भी इनको षष्ठ् सदी के अन्त का बताया है ।

अन्त में सुबन्धु के समय के सम्बन्ध में लुईस एच० डो के शब्दों को निष्कतर्ष माना जा सकता है। इनके अनुसार सुबन्धु के काल की पूर्वसीमा उद्योतकार के बाद तथा उत्तरसीमा बाणभट्ट के पूर्व निर्धारित की जानी चाहिए। इस प्रकार सुबन्धु का काल 400-550ई० निर्धारित किया जा सकता है और यह कहा जा सकता है कि सुबन्धु इसी बीच कभी रहे होंगे। इस प्रकार हम सुबन्धु के काल एव जीवनवृत्त के सम्बन्ध में उपर्युक्त तथ्यों एवं तर्कों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सुबन्धु 'वासवदत्ता' के रचयिता है जो उनकी एकमात्र कृति है। विक्रमादित्य-चन्द्रगुप्त द्वितीय के पुत्र कुमार गुप्त प्रथम (415 ई० 455) के दरबारी कवि थे और 385-500ई० के बीच में कभी रहे होंगे। वे मध्यभरत के निवासी थे, सम्भवतः मालव के वैष्णेव और सुबन्धु वररुचि की बहन के पुत्र थे। इनके गुरु का नाम दामोदर था। सुबन्धु के काल एवं निवास-स्थान के विषय में डॉ० मानसिंह का मत भी उक्त बिन्दुओं को पुष्टु करने में सहायक हो सकता है।

सुबन्धु का जीवन परिचय—

'सर्वानुक्रमणी में एक सुबन्धु का उल्लेख किया गया है जिनको ऋग्वेद के चार ऋषियों में से एक तथा गोपायन तथा लोपायन का पुत्र बताया गया है। एक और सुबन्धु है जिनका उल्लेख दण्डी ने किया है। नाट्यशास्त्र की टीका 'अभिनवभारती' में अभिनवगुप्त ने 'नाट्यायित' के दृष्टाईन्त के रूप में 'वासवदत्तानाट्यधारा' नामक रूपक का उल्लेख किया है जिसके कृत्तिकार का नाम उन्होंने महाकवि सुबन्धु बताया है। रामचन्द्र और गुणचन्द्र के 'नाट्यदर्पण में भी इसी रूपक का वर्णन मिलता हैं। शारदातनय ने अपने 'भावप्रकाशन' में सुबन्धु नामक एक नाट्यशास्त्री का उल्लेख किया है जिसने नाटक के पाँच विभाग किये है। लेकिन पी०वी० काणे के अनुसार यह सुबन्धु 'वासवदत्तनाट्यधारा' वाले सुबन्धु से भिन्न है।

'वासवदत्ता' के रचनाकार सुबन्धु उपर्युक्त सभी सुबन्धु नामक व्यक्ति से भिन्न हैं । इनकी एकमात्र कृति 'वासवदत्ता' ही है जिसमें प्रदर्शित अपनी विद्वता और विलक्षण श्ले षयुक्त शैली के कारण सुबन्धु ने संस्कृत गद्यसाहित्य में प्रतिष्ठादपूर्ण स्थान प्राप्त किया है। 'वासवदत्ता' की एक पाण्डुलिपि के अनुसार सुबन्धु को वररूचि की बहन का पुत्र बताया गया है। 'वासवदत्ता' के प्रारम्भ के तृतीय श्लोक के आधार पर आर०जी० हर्षे का अनुमान है कि दामोदर सुबन्धु के गुरु थे। 'वासवदत्ता' के प्रारम्भ में सुबन्धु ने विष्णु की स्तुति दो श्लोरकों में किया है। जबकि शिव की स्तुति में एक ही श्लोकक लिखा है। इसके अतिरिक्त 'वासवदत्ता' में शिव की अपेक्षा विष्णुक के संकेत बहुलता से मिलते है। इस आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि सुबन्धु वैष्णोव थे, यद्यपि उन्होंने शिव और अन्य देवो देवताओं के प्रति भी अपनी श्रद्धा दिखायी हैं।

सुबन्धु का कर्तृत्व—

सुबन्धु का नाम संस्कृत साहित्य के लिए अपरिचित नहीं है। संस्कृत साहित्य में इनकी ख्याति 'वासवदत्ता नामक कथाग्रन्थ के रचनाकार के रूप में ही हैं परन्तु संस्कृत साहित्य मं इनसे इतर अन्य सुबन्धुओं का भी विवरण मिलता है, जिनका यहाँ पर उल्लेख कर देना समीचीन होगा । नाट्यशास्त्र की टीका 'अभिनवभारती' में

अभिनवगुप्त ने 'नाटयायिका' के दृष्टाकन्त के रूप में 'वासवदत्तनाट्यधारा' नामक रूपक का उल्लेख किया है जिसके कृतिकार का नाम उन्होंने महाकवि सुबन्धु बताया हैं रामचन्द्र और गुणचन्द्र के 'नाट्यदर्पण' में भी सुबन्धु नामक एक नाट्यशास्त्री का उल्लेख किया है जिसने नाटक के पाँच विभाग किया है लेकिन पी०वी० काणे के अनुसार यह सुबन्धु 'वासवदत्तनाट्यधारा' वाले सुबन्धु से भिन्न है। 'वासवदत्ता' रचनाकार सुबन्धु उपर्युक्त सभी सुबन्धुओं से भिन्न हैं। इनकी एक मात्र कृति 'वासवदत्ता' ही है जिसमें प्रदर्शित अपनी विद्वता और विलक्षण श्लेषयुक्त शैली के कारण सुबन्धु ने संस्कृत गद्यसाहित्य में प्रतिष्ठाय पूर्ण स्थान प्राप्त किया है।

बाणभट्ट का जीवन परिचय—

हर्षचरित प्रारम्भिक उच्छवासों से बाणभट्ट के जीवन के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी मिलती है। वे वत्सगोत्रीय ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम चित्रभानु और माता का नाम राजदेवी था। बाण की माता का निधन उनकी वाल्यावस्था में ही हो गया था। बालक बाणभट्ट का पालन-पोषण उनके पिता चित्रभानु ने किया। जब बाण की आयु चौदह वर्षकी थी तभी दुर्भाग्य से उनके पिता का भी देहावसान हो गया। इसके पूर्व ही उनके पिता ने बाण के सभी ब्राह्मणोचित संस्कार यथासमय शास्त्रसम्मत रीति से अपनी कुलपरम्परा के अनुसार सम्पन्न करा दिया था। बचपन में ही बाण के सिर से माता-पिता के हाथों की छाया उठ जाने से बाण अत्यन्त सन्तप्त हो गये किन्तु काल-प्रभाव से जब शोक कम हुआ तो बाण में सहज चपलता पूरी तरह घर कर गयी। पिता, पितामहादि के द्वारा अर्जित और संचित धन-वैभव प्रभूत मात्रा में था। अतः बाण की मित्र-मण्डली खूब जम गयी और वे उन सबके साथ देशाटन के लिए घर से निकल पड़े। इस तरह विभिन्न स्थलों का भ्रमण करने के पश्चानत् वे अपनी जन्मभूमि में वापस आ गये। हर्षचरित के अनुसार, ग्रीष्मणकाल में एक दिन महाराज हर्ष के भाई कृष्णग ने बाण को बुलवाया बहुत विचार करके युवक बाण ने वहाँ जाने का निश्चभय किया। प्रातःकाल तैयार होकर वे अपने ग्राम प्रीतिकूट से निकले। प्रथम दिन मल्लकूट तथा दूसरे दिन यष्टिग्रहक नामक ग्राम में रात बिताने के पश्चाटत् तीसरे दिन मणितार के समीप अजिरवती के तट पर स्थित महाराज हर्षदेव के स्कन्धावार में पहुँचे तथा राजभवन के समीप ही निवास किया।

सायंकाल बाणभट्ट महाराज हर्ष से मिलने पहुँचे। प्रथमतः उन्होंने हर्षके हाथी 'दर्पशात' को देखा और तब राजभवन में प्रविष्टी होकर हर्षके दर्शन किये। किन्तु 'यह वही भुजंग बाण है'-कहकर हर्ष ने बाण से बात नहीं की। बाण ने अपनी भुजंगता (लम्पटता) के भ्रम को मिटाने के लिए अपनी ओर से पर्याप्त स्पष्टी।करण दिया किन्तु हर्ष उन पर प्रसन्न न हुए फिर भी हर्ष के प्रति बाण के हृदय में श्रद्धा भर गयी। वे राजभवन से निकलकर अपने मित्रों के यहाँ रूक गये। राजा ने धीरे-धीरे बाण के सम्बन्ध में अच्छी तरह पता किया और उनके वैदुष्यक तथा ब्राह्मणोचित स्वभाव से परिचित होने पर प्रसन्न हो गये। पुनः बाण राजभवन में प्रविष्टर हुए तो राजा ने उन्हें प्रेम, मान, विश्वा स और धन की पराकाष्ठाय पर पहुँचा दिया। महाराज हर्ष के साथ बहुत समय तक रहकर बाण पुनः अपनी जन्मभूमि प्रीतिकूट को लौट आए।

बाणभट्ट विवाहित थे। बाण के पुत्र का नाम भूषणभट्ट या पुलिनभट्ट था। इस नाम के विषय में ऐकमत्य नहीं है। भूषणबाण, पुलिन्द, पुलिन्ध्र या पुलिन नाम भी कहे जाते हैं। कादम्बरी विषयक एक जनश्रुति के अनुसार बाणभट्ट के दो पुत्र थे। बाण के चन्द्रसेन और मातृशेण नामक दो भाई भी थे। बाणभट्ट के गुरु का नाम भत्सु या भर्वु था। इनके अन्य भी पाठभेद पाये जाते हैं। यह स्पष्टव नहीं है कि गुरु का सही नाम क्या था? वल्लभदेव की 'सुभाषितावली' में 'भश्रु ' द्वारा निर्मित श्लो क उद्धृत किये गये हैं। महाराजा हर्ष के यहाँ लौटने के पश्चाहत् अपने बन्धु-बान्धवों के आग्रह पर बाणभट्ट ने महाराज हर्षवर्धन का चरित सुनाया था (अर्थात् अपनी अलंकृत गद्य-शैली में 'हर्षचरित' की रचना की)। इसके पश्चा(त् बाण के शेष जीवन का वृत्त उपलब्ध नहीं होता। हाँ, किंवदन्ती है कि बाण 'कादम्बरी' को पूरी नहीं कर सके थे और मृत्यु-शैया पर पड़ गये। अपने जीवन के अन्तकाल में

उन्होंने अपने दोनों पुत्रों को बुलाकर पूछा कि कादम्बरी कौन पूरी करेगा ? दोनों पुत्रों ने इसके लिए हामी भरी। तब उन्होंने कादम्बरी के अनुरुप भावकल्पना और भाषा-प्रयोग के सम्बन्ध में परीक्षा लेकर भूषणभट्ट या पुलिनभट्ट को कादम्बरी पूर्ण करने की आज्ञा दी।

बाण का समृद्ध ब्राह्मण-परिवार में पैदा हुए थे। महाराज हर्ष ने भी उन्हें पर्याप्त धन प्रदान किया था। अतः भोग-ऐश्वर्य की प्रचुर सामग्री उन्हें उपलब्ध थी। इस तरह उन्हें किसी भी प्रकार का अभाव न था और उनका जीवन आर्थिक दृष्टि से निरापद एवं सुखमय था। बाण और मयूर के सम्बन्ध की चर्चा अनेकत्र प्राप्त होती है। बाण की मित्रमण्डली में स्त्री-पुरुष मिलाकर प्रायः चालीस की संख्या में तरह-तरह के लोग थे। इनमें से एक विषवैद्य 'मयूरक' भी था। मित्रों के नाम और उनके गुण वैशिष्ट्यक का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि ये नाम उनके गुणों के आधार पर रख दिये गये थे (यथा-विषवैद्य मयूरक, पुस्तक-वाचक सुदृष्टि, स्वर्णकार चर्मकर आदि)। किन्तु जिस मयूर के साथ बाण के मैत्री-सम्बन्ध की चर्चा मिलती है, वे हर्ष के सभाकवि के रूप में जाने जाते हैं। कुछ लोग मयूर को बाण का श्वचसुर और कुछ लोग साला कहते हैं। प्रभाचन्द्राचार्य द्वारा विरचित 'प्रभावकचरित' में बाण और मयूर का श्लोकबद्ध आख्यान मिलता है। तद्नुसार मयूर ने विद्वान् कवि युवक बाण के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया था। एक बार बाण अपनी रूठी हुई पत्नी को मना रहे थे चूँकि बाण पद्य-कवि नहीं थे अतः एक श्लोक की तीन पंक्तियाँ ही बराबर दुहरा रहे थे, चौथी पंक्ति नहीं बन पा रही थी। बाहर उनसे मिलने के लिए आये हुए मयूर खड़े थे। उनसे नहीं रहा गया और उन्होंने श्लो-क के भावानुरूप चौथी पंक्ति बनाकर ऊँचे स्वर में कह दी। इस पर पिता का स्वर पहचाने बिना बाण की पत्नी ने चौथी पंक्ति बनाने वाले उस व्यक्ति को मान-रस-भंग करने के अपराध के लिये कुष्ठं होने का शाप दे दिया । बाद में अपने पिता को तत्काल कुष्ठस हुआ देखकर उसे बड़ा पश्चा ताप हुआ। फिर मयूर ने 'सूर्यशतक' की रचना करके भगवान सूर्य की आराधना की और उनके प्रभाव से कुष्ठय रोग से मुक्त हो गये। मयूर की काव्यात्मक स्तुति का अद्भुत प्रभाव देखकर बाणभट्ट ने भी अपना प्रभाव प्रकट करने के लिए अपने हाथ-पैर काट डाले और देवी चण्डिका की स्तुति की। भगवती की अनुकम्पा से बाण पुनः पूर्ववत् कमनीय भक्तों वाले हो गये। बाणभट्ट द्वारा विरचित 'चण्डीशतक' प्राप्त होता है। 'प्रबन्धचिन्तामणि' में भी इसी प्रकार का बाण-मयूर विषयक आख्यान मिलता है। अन्यत्र भी इस विषय में संकेत प्राप्त होते हैं। आचार्य मम्मट ने भी काव्यप्रकाशमें मयूर के सम्बन्ध में संकेत किया है।

बाणभट्ट का स्थितिकाल—

संस्कृत साहित्य के जिन कवियों के स्थितिकाल का निर्धारण अत्यन्त दुष्कवर है, महाकवि बाणभट्ट उनमें से नहीं है। अन्तः साक्ष्यों के आधार पर बाणभट्ट के स्थितिकाल का निर्धारण सरलता से हेा जाता है। सम्राट हर्षवर्धन के साथ बाणभट्ट का संबंध ऐतिहासिक प्रमाणों से पुष्टज है। बाण, हर्ष की सभा के सम्मानित सदस्य थे। हर्षवर्धन का शासनकाल 606 ई० से 647 ई तक था। बाणभट्ट का समय सातवीं शताब्दी ई० निश्चित ही है। चीनी यात्री ह्वेनसांग 629 ई० से 645 ई० तक भरत में रहा और उसने अपने यात्रा-विवरण में हर्षवर्धन और उनकी राज्यव्यवस्था पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। बाण ने भी हर्ष के जीवनवृत्त का कुछ अंश साहित्यिक रीति से हर्षचरित में सन्निविष्टत किया है। दोनों वर्णनों की तात्विक तुलना करने पर सिद्ध होता है कि दोनों द्वारा वर्णित हर्ष एक ही हैं। बाणभट्ट के समय सम्बन्ध में बर्हिःसाक्ष्यों पर दृष्टिपात करना समीचीन होगा। क्षेमेन्द्र (11वीं शताब्दी ई०) ने अपने रचनाओं में अनेकश: बाण का उल्लेख किया है। भोजराज अपने सरस्वती- कण्ठाभरण में बाण की रचनाओं से उदाहरण देते हैं भोजराज भी 11वीं शताब्दी ई० के पूर्वार्द्ध में शासन करते थे ऐसा प्रमाणों से पता चलता है। सोड्ढल ने उदयसुन्दरीकथा में कई श्लोवकों में बाण की प्रशंसा की है। सोड्ढल का समय प्रायः 1000 ई० है। आचार्य धनंजय (10 वीं शताब्दी ई० का उत्तरार्ध) ने कादम्बरी और बाण का उल्लेख कई बार किया है। धनपाल ने भी 'तिलकमंजरी' वाणभट्ट और उनकी कृतियों-हर्षचरित तथा कादम्बरी की प्रशंसा की है

। धनपालका का समय भी 10वीं शताब्दी का उतरार्ध है । त्रिविक्रम भट्ट ने 'नलचम्पू' का रचनाकाल 10वीं शताब्दी ई० का पूर्वाद्ध है । आन्दवर्धन-कृत 'ध्वन्यालोक' में बाण और कादम्बरी का उल्लेख हुआ है। उसमें 'हर्षचरित' के भी उद्धरण प्राप्त होते हैं। आनन्दवर्धन कश्मीर नरेश अवन्तिवर्मा के समकालिक थे जिनका शासनकाल 855 ई०से 884 ई० तक था । अभिनन्द का समय नवीं शताब्दी ई० का पूर्वार्द्ध है । अभिनन्द ने 'कादम्बरीकथासार' की रचना की है जिसमें कादम्बरी-कथा संक्षेपतः श्लो8कबद्ध निबद्ध है । आचार्य वामन ने अपनी'काव्यलंकारसूत्रवृति' में कादम्बरी से उद्धरण दिये हैं । वामन का स्थितिकाल 800 ई० के आसपास माना जाता है । प्रकाशवर्ष ने अपने रसार्णवालंकार में बाण का उल्लेख किया है । प्रकाशवर्षका समय सातवीं शताब्दी ई० का उत्तरार्ध है ।

उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर हमें यह ज्ञात होता है कि बाणभट्ट का उल्लेख तथा उनकी कृतियों से उद्धरणों का प्रयोग सातवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से ही किया जाने लगा था । अतः बाणभट्ट के स्थितिकाल की पूर्व सीमा सातवीं शताब्दी ई० के पश्चारत् कथमपि नहीं रखी जा सकती । सम्प्रति अन्तः साक्ष्यों का अवलोकन कर उन पर भी विचार कर लेना समीचीन होगा । बाणभट्ट की कृतियों में अनेक लेखकों और ग्रंथों का उल्लेख प्राप्त होता है । कादम्बरी और हर्षचरित में रामायण और महाभारत (वाल्मीकि और व्यास) का उल्लेख हुआ है । ये दोनों आर्ष महाकाव्य निश्चित रूप से ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व विरचित हो चुके थे । हर्षचरित में महाकवि (नाटककार) भास का उल्लेख हुआ है । भास का समय ई० पूर्व चतुर्थ पंचम शताब्दी माना जाता है । कादम्बरी में 'अर्थशास्त्र' के प्रणेता कौटिल्य का नामोल्लेख किया गया है । अर्थशास्त्र की रचना ई० पू० 321 से 300 के मध्य की गयी होगी । हर्षचरित में महाकवि कालिदास की सूक्तियों की प्रसंशा बाण ने मुक्तकण्ठ से की है । अधिकांश विद्वान कालिदास का समय ई० पू० प्रथम शताब्दी मानते हैं। कुछ विद्वान कालिदास को गुप्तकाल (350 ई० से 450 ई० के मध्य) में मानते हैं । बाणभट्ट ने गुणाढ्यकृत 'बृहत्कथा' का प्रशंसार्य हर्षचरित में की है । 'बृहत्कथा' अब उपलब्ध नहीं है किन्तु बाणभट्ट ने अवश्यि ही इसका अवलोकन किया होगा । 'बृहत्कथा' की रचना पैशाची प्राकृत में की गयी थी । 'बृहत्कथा' पर आधारित कथासरित्सागर' (सोमदेव) और 'बृहत्कथामऋजरी' (क्षेमेन्द्र) दो ग्रंथ में पद्यात्मक रूप में उपलब्ध होते हैं। उनसे तुलना करने पर प्रतीत होता है कि बाणभट्ट की 'कादम्बरीकथा' अवश्यो ही बृहत्कथा की वस्तु और रचनाशिल्प से प्रभावित है । बृहत्कथा का रचना काल प्रथम शताब्दी ई० अनुमानित है । हर्षचरित में ही बाण ने 'सेतुबन्धु' के रचयिता प्रवरसेन का उल्लेख किया है । यह प्रवरसेन वाकाटक वंश के राजा प्रवरसेन द्वितीय हैं, जिनका समय पांचवी शताब्दी ई० है ।

उपर्युक्त प्रमाणों की समीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि बाण ने अपनी रचानाओं में जिन कृतियों और कृतिकारों का उल्लेख किया वे ई०पूर्व से लेकर पांचवी ई० तक के हैं । इससे भी सातवीं शताब्दी ई०, बाण का स्थिति काल पुष्टक होता है । सबसे पुष्टं प्रमाण तो सम्राट हर्ष की समकालिक होना ही है ।

बाणभट्ट के ग्रन्थों का परिचय—

बाणभट्ट की तीन कृतियां प्रसिद्ध हैं-हर्षचरित, कादम्बरी और चण्डीशतक । प्रथम दो गद्यकाव्य है और तीसरी कृति पद्यकाव्य है ।

हर्षचरित—

हर्षचरित में बाण ने अपना और अपने वंश का समग्र विवरण दिया है। बाण संस्कृत के कुछ गिने-चुने लेखकों में से एक हैं जिनके जीवन एवं काल के विषय में निश्चित रूप से ज्ञात है। कादम्बरी की भूमिका में तथा हर्षचरित में बाण ने अपने वंश के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक सूचना दी है। हर्ष के सभापण्डित होने के कारण प्रायः इनका भी स्थितिकाल सप्तम शती निश्चित है। आठ उच्छवासों में उपलब्ध हर्षचरित एक आख्यायिका है। प्रारम्भ के इक्कीस श्लोकों में भगवान् शिव और पार्वती का वन्दन किया गया है। तदनन्तर संस्कृत साहित्य के प्रमुख

कवियों तथा ग्रन्थों की भी स्तुति की गई है। प्रथम उच्छ्वास में बाण का स्वयं का वर्णन, मित्रवर्णनादि विषय संवलित है। तीन उच्छ्वासों के पश्चात बाण हर्षचरित सुनाना प्रारम्भ करते हैं।

कादम्बरी—

कादम्बरी विश्वसाहित्य के अनुपम और समस्त दृष्टियों से उन्नतकोटि का गद्यकाव्य स्वीकार किया गया है। कादम्बरी का वर्ण्य विषय गुणाढ्य की बृहत्कथा से लिया गया है। इस कथा में तीन जन्मों की कथा आपस में गुंथी हुई है। इसका नायक प्रथम जन्म में चन्द्रमा, द्वितीय में चन्द्रापीड तथा तृतीय में शूद्रक बना है। प्रथम जन्म का पुण्डरीक, द्वितीय जन्म में वैशम्पायन तथा तृतीय जन्म में शुक बना है। कथा तीन भागों में विभक्त है - कथामुख, पूर्वभाग तथा उत्तर भाग। बाण की सहज प्रफुल्लित प्रकृति, चित्रग्रहिणी प्रतिभा, कल्पनाशील मन और असाधारण पाण्डित्य का जो प्रदर्शन हमें हर्षचारित में दृष्टिगोचर होता है, वह कादम्बरी में नितान्त परिपक्व और पुष्ट होकर निखर उठता है। अर्थ के अनुरूप शब्द की योजना, घटना के अनुसार और असमास, अल्पसमास या दीर्घसमास की संरचना, प्रकृति का अद्भुत तद्रूप निरूपण एवं पात्रों का सटीक चरित्र चित्रण करने की अद्भुत क्षमता बाण में है। पाञ्चाली रीति और ओज गुण के लिए विख्यात बाण काव्य की सभी विधाओं में निष्णात हैं ।

अभ्यास प्रश्न (1)

(1). बहुविकल्पीय प्रश्न:-

1. मुख्य रूप से काव्य के कितने भेद माने गए हैं-

(क) तीन (ख) चार

(ग) छः (घ) दो

2. साहित्य की दृष्टि से संस्कृत गद्यकाव्य को मुख्यतः कितने भागों में विभाजित कर सकते हैं-

(क) तीन (ख) छः

(ग) चार (घ) दो

3. महाभाष्य के रचयिता हैं-

(क) मनु (ख) पाणिनी

(ग) कौटिल्य (घ) पतञ्जलि

4. ध्वन्यालोक के रचनाकार हैं-

(क) शबरस्वामी (ख) शंकराचार्य

(ग) आनन्दवर्धन (घ) जयन्त भट्ट

5. अष्टाध्यायी के वार्तिककार का क्या नाम है।

(क) पतञ्जलि (ख) कौटिल्य

(ग) कात्यायन (घ) इनमें से कोई नही

6. अग्निपुराण में गद्यकाव्यर के कितने भेदों का वर्णन मिलता है।

(क) पाँच (ख) पांच

(ग) तीन (घ) दो

7. हर्षचरित एक है-

(क) नाटक (ख) कथा

(ग) प्रकरण (घ) आख्यायिका

8. कादम्बरी कथा कितने भागों में विभक्त है-

(क) दो भागों में (ख) चार भागों में

(ग) तीन भागों में (घ) पांच भागों में

9. काव्यादर्श में कितने परिच्छेदों हैं।

(क) दो परिच्छेद (ख) नौ परिच्छेद

(ग) चार परिच्छेद (घ) तीन परिच्छेद

10. धनपाल का समय क्या है-

(क) दसवीं शताब्दी (ख) नवीं शताब्दी

(ग) आठवीं शताब्दी (घ) सातवीं शताब्दी

महाकवि दण्डी-जीवन एवं कृतित्व—

संस्कृत गद्यकाव्य के इतिहास में सरस गद्य लेखक के रूप में दण्डी का नाम अमर है। बाण के अनन्तर प्रसिद्ध गद्यकार दण्डी हैं। संस्कृत वाड्मय के विश्रुत महाकवि भारवि के प्रपौत्र थे। इनकी विद्वत्ता की इतनी ख्याति थी कि बाल्मीकि और व्यास की कोटि में इन्हें गिना जाता था। इनका स्थिति काल बाण के पश्चात अर्थात् सातवीं शती ई0 का अन्तिम चरण और आठवीं का पूर्वार्द्ध माना जाता है। क्योंकि नवम शताब्दी में ग्रन्थकारों ने इनका उल्लेख किया है और अपने काव्यादर्श में दण्डी ने राजवर्मा का उल्लेख किया है। पल्लवराज नरसिंहवर्मा द्वितीय का उपनाम राजवर्मा था और उसका शासनकाल 690 से 715 ई0 है। **'त्रयो दण्डीप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुता:'** राजशेखर कि इस उक्ति से ज्ञात होता है कि दण्डी ने तीन ग्रन्थों की रचना की जो निम्न है—

1- काव्यादर्श, 2- अवन्तिसुन्दरीकथा 3- दशकुमारचरित। 'ओज: समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्' इनका यह वाक्य उनके प्रखर गद्यकार होने का साक्षी है।

1-काव्यादर्श—

काव्यादर्श तीन परिच्छेदों का पद्यात्मक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ है, प्रथम परिच्छेद में काव्य का महत्व, लक्षण, भेद, महाकाव्य, गद्यकाव्य, भाषाभेद, तथा काव्यगुणों का विचार है। द्वितीय परिच्छेद में अलंकारों का विवेचन एवं तृतीय परिच्छेद में यमक अलंकार, चित्रकाव्य तथा काव्यदोषों का विवेचन है। इस ग्रन्थ के आधार पर भामह के काव्यालंकार तथा दण्डी के पौर्वापर्य पर विवाद रहा है। किन्तु काव्यादर्श में काव्यालंकार के सिद्धान्तों का खण्डन दिखाई पड़ने से दण्डी ही परवर्ती लगते हैं। दोनों ग्रन्थ सरस शैली में विवेचन परक है किन्तु काव्यादर्श में कहीं-कहीं शास्त्रार्थ का भी दृष्टिगोचर होता है।

2- अवन्तिसुन्दरीकथा—

दशकुमारचरितम् की पूर्वपीठिका में मालव नरेश की पुत्री अवन्तिसुन्दरी का प्रणय वृत्त संक्षेप में वर्णित है, उसी का विस्तार निरूपण इस अवन्तिसुन्दरीकथा में किया गया है। अवन्तिसुन्दरीकथा ही दण्डी की मुख्य रचना है, इसी का सार दशकुमारचरित की पूर्वपीठिका के रूप में किसी ने प्रस्तुत किया होगा।

प्राचीन साहित्य में दशकुमारचरित की अपेक्षा इसी ग्रन्थ को दण्डी की रचना के रूप में अधिक ख्याति मिली थी। नामसंग्रहमाला में अप्यदीक्षित ने कहा है, 'इत्यवन्तिसुन्दरीये दण्डीप्रयोगा:' इसमें सुबन्धु, मयूर और बाण की प्रशंसा की गई है, जिसके आधार पर दण्डी का काल इनके अनन्तर 700 ई0 में माना गया है। आचार्य बलदेव उपाध्याय का मत है कि अवन्तिसुन्दरीकथा के शैली सौन्दर्य के आधार पर पण्डितों ने यह प्रशस्ति चली थी- 'दण्डीन: पदलालित्यम्' जो लोग इस ग्रन्थ को दण्डी की कृति नहीं मानते, उनका कथन है कि इसके कवि ने दण्डी और बाण के प्रमुख विशेषताओं को लेकर इसका वर्णन किया था। तदनुसार दसकुमारचरित से पूर्वपीठिका का कथानक एवं भाषा में पदलालित्य का ग्रहण किया गया है। अवन्तिसुन्दरीकथा की प्रमाणिकता पर इसका काल मुख्त: आश्रित है।

3- दशकुमारचरित—

गद्यकवि दण्डी द्वारा रचित दशकुमारचरित हस्तलिखित तथा प्रकाशित संस्करणों में प्रायः तीन खण्डों में विभाजित है। पूर्वपीठिका, दशकुमारचरित और उत्तरपीठिका। दशकुमारचरित चौदह उच्छ्वासों में विभक्त है। पर्वू पीठिका में पाँच, दशकुमारचरित में आठ तथा उत्तरपीठिका में एक उच्छ्वास है। पूर्वपीठिका के पाँच उच्छ्वासों में अवन्तिसुन्दरी की कथावस्तु वर्णित की गई है। मध्यभाग के आठ उच्छ्वासों में आठ राजकुमारों का चरित्र वर्णन प्राप्त है और उत्तरपीठिका में दो कुमारों का वर्णन प्राप्त है।

सुबन्धु एवं बाण की कृतियां पश्चाद्वर्ती गद्य लेखकों के लिए आदर्श रूप में प्रस्तुत हुई। पश्चाद्वर्ती लेखकों में निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं। धारा के सम्राट मुंज और भोज के सभापण्डित धनपाल ने दसवीं शताब्दी में 'तिलकमंजरी' की रचना की। यह कादम्बरी को आदर्श मानकर लिखी गई है। यद्यपि धनपाल की कृति में भाषा एवं शैली के अलंकरण उपस्थित हैं तथापि उसमें बाण के काव्यात्मक गुणों का अभाव है। ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जैन उदयदेव वादीभसिंह ने 'गद्यचिन्तमामणि' की रचना की। गुणमद्र के उत्तर पुराण में उपलब्ध जीवन्धर की गाथा पर यह आधरित है। यह शैली के प्रयोग में लगभग बाण का अनुकरण है। वामनभट्ट बाण ने रेड्डी सम्राट वीरनारायण के प्रशस्तिभूत 'वेमभपालचरित' नामक ग्रन्थ की रचना की। वह बाणरचित हर्षचरित से स्पष्ट रूप में प्रभावित हुआ परन्तु बाण के कवित्व के सौन्दर्य को प्राप्त करने में सफल न हुआ। सोड्ढल की 'उदयसुन्दरीकथा' जो कभी चम्पूकाव्य भी माना जाता था, बाण की शैली को अपना कर लिखी गई है। उसके वर्णन विस्तृत हैं और भाषा तथा अलंकार के प्रयोग करने में कवि का अधिकार है। परन्तु वास्तविक काव्य का सौन्दर्य उपलब्ध नहीं होता। सोड्ढ को लाटाधिपति वत्सराज 1026-1050 ई0 का राजाश्रय प्राप्त था।

दण्डी आदि पूर्ववर्ती लेखकों ने संस्कृत गद्यकाव्य को जिन ऊँचाइयों पर पहुँचाया था परवर्ती कवियों के लिए वह अनुकरणीय हो गया, किन्तु गद्य का वैसा स्वरूप परवर्ती काब्यों में प्राप्त नहीं होता है। कुछ गद्य लेखकों और उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है—

धनपाल—

10 वीं शती के उत्तरार्ध एवं एकादश शती के पूर्वार्ध में धनपाल ने तिलकमञ्जरी की रचना की । ये राजा भोज के चाचा मुञ्जराज के सभा में सम्मानित कवि थे। राजामुञ्ज ने इनकी काव्य प्रतिभा से अभिभूत होकर उन्हें 'सरस्वती' विरुद्ध के से सम्मानित किया था । तिलकमञ्जरी पर कादम्बरी का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है तथा तात्कालिक भारत की सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों प्रतिबिम्बित होती हैं, साथ ही तात्कालिक शिल्पकला एवं मूर्तिकला का सुन्दर चित्रण तिलकमञ्जरी में प्राप्त होता है ।

वादीभसिंह—

11वीं शताब्दी धनपाल के कुछ दिनों बाद महाकवि वादीभसिंह हुए थे जिन्होंने गद्यचिन्तामणि नामक गद्य काव्य लिखा । ये तमिल राज्य के निवासी थे । इनके नाम से स्याद्वादसिद्धि, नवपदार्थनिश्चय आदि पांच कृतियां निर्दिष्ट हैं ।

प्रभाचन्द्र—

प्रभाचन्द्र का समय 12 वीं शताब्दी तथा जिनभद्र (13 वीं शताब्दी) था । प्रभाचन्द्र ने गद्यकथाकोष के रूप में 89 कथाओं की काव्य कथा प्रस्तुत की है। इनमें मुख्यत: गुजरात, राजस्थान, मालवा तथा वाराणसी के प्रसिद्ध महापुरुषों की कथाएं हैं।

मेरुतुगाचार्य—

14 वीं शताब्दी में प्रबन्धचिन्तामणि नामक ग्रन्थ के लेखक, मेरुतंग चंद्रप्रभ मुनि के शिष्य थे। प्रबन्ध चिन्तामणि के कुल 11 प्रबन्ध है, जिनमें ऐतिहासिक महापुरुषों के जीवन से सम्बद्ध घटनाओं का वर्णन है।

राजशेखरसूरी—

इनका समय 14 वीं शताब्दी है। इनकी कई कृतियां प्रसिद्ध है जिसमें गद्यकाव्य प्रबन्धकोश भी है। इसकी रचना 1405 विक्रमाब्द 1348 ई0 में पूरी हुई थी। इसका दूसरा नाम चतुर्विंशतिप्रबन्ध भी है क्योंकि इसमें 24 महापुरुषों के जीवन वृत्त हैं। इतिहास की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है यद्यपि दन्तकथाओं का भी इसमें समावेश है।

बामनभट्टबाण—

1450 ई0 बामनभट्टबाण का समय है। बाणभट्ट के समान ये भी वत्स गोत्र के थे। तेलंगाना के शासक वेमभोपाल की राज्यसभा में इन्होंने आदर पाया था, उनके जीवनवृत्त को वेमभोपालचरित नामक आख्यायिका में गुम्फित किया। यह हर्षचरित से प्रेरित गद्यकाव्य है। वेमभोपाल स्वयं भी कवि थे जिन्होंने अमरुशतक पर श्रृंगारमंजरी टीका लिखी थी। बामनभट्ट ने बाण की ख्याति और पौढि का दावा किया है। इन्होंने अन्य भी कई ग्रन्थ लिखे।

विश्वेश्वरपाण्डेय—

इनका समय 18 वीं शती का पूर्वार्ध माना गया है। यह अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि के थे तथा व्याकरण, दर्शन, साहित्य, के प्रकाण्ड पण्डित थे। इन्होंने विविध विषयों से सम्बन्धित लगभग 20 ग्रन्थों का प्रणयन किया मंदार। मन्दारमञ्जरी इनकी उत्कृष्ट गद्य रचना है जिस पर कादम्बरी का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। भाषा सरस एवं ललित कादम्बरी की कथा के समान मुख्य कथा में अनेक कथाओं का नियोजन किया गया है। इनके अन्य ग्रन्थ इस प्रकार हैं- वैयाकरणसिद्धान्तसुधनिधि, तर्ककुतूहल, श्रृंगारमंजरी, रसचन्द्रिका, अलंकाप्रदीप, रोमावलीशतक आदि।

बोध प्रश्न—

अभ्यास प्रश्न (2)

(1). बहुविकल्पीय प्रश्न:-

1. अर्थशास्त्र के प्रवर्तक हैं-

(क) कौटिल्य (ख) पतञ्जलि

(ग) वेदव्यास (घ) कालिदास

2. शावरभाष्य के प्रणेता का क्या नाम है-

(क) शबरस्वामी (ख) शंकराचार्य

(ग) आनन्दवर्धन (घ) जयन्त भट्ट

3. न्यायमंजरी के प्रवर्तक हैं-

(क) सायणाचार्य (ख) जयन्त भट्ट

(ग) अभिनवगुप्त (घ) शंकराचार्य

4. सुबन्धु का समय किस उत्तकरार्ध में माना गया है-

(क) छठी शताब्दी के (ख) सातवीं शताब्दी के

(ग) आठवीं शताब्दी के (घ) नवीं शताब्दी के

5. आचार्य विश्वनाथ ने काव्य के कितने भेद बताए हैं-

(क) चार (ख) दश

(ग) दो (घ) एक

2.3.1.2 चम्पूकाव्य परम्परा—

गद्य और पद्य के विशिष्ट सम्मिश्रण से निर्मित काव्य को चम्पू काव्य कहते हैं। गद्य काव्य अपने अर्थगौरव और विन्यास शैली से महिमा मंडित होता है तथा पद्य काव्य सुललित रागलय के साथ रमणीय अर्थ के प्रतिपादन में गौरवशाली बनता है। इन दोनों के एकत्र सम्मिश्रण में चम्पू काव्य अधिक चमत्कारी होता है। जैसे मनोहर वाद्य

के साथ मधुर गान अधिक आनंद प्रदान करता है, वैसे ही अर्थगौरवाश्रित गद्य रागलयाश्रित पद्य के साथ मिलकर अपूर्व काव्य सौन्दर्य को प्रकट करता है।

चम्पू काव्य की व्युत्पत्ति—

चम्पू शब्द की व्यूत्पत्ति चुरादिगणीय गत्यर्थक चापि धातु से उष्प्रत्यय लगाकर होति है।–' चम्पयति चम्पति इति वा चम्पू' भट्टाचार्य के अनुसार चम्पू काव्य में शब्द चमत्कार और अर्थ प्रसाद गुण होना चाहिए। वस्तुतः चमत्कार प्रदर्शन की प्रवृत्ति चम्पू काव्य में सर्वाधिक रहती है। चम्पू काव्य मिश्र दृश्य काव्य का रूप है। दण्डी के काव्यादर्श में सर्वप्रथम चम्पू शब्द का उल्लेख प्राप्त होता है। इसी परिभाषा को साहित्यकार अचार्य विश्वनाथ ने लगभग ज्यों का त्यों प्रस्तुत किया है। किन्तु इस परिभाषा से चम्पू काव्य का स्वरूप सम्यग्तया स्पष्ट नहीं है। चम्पू काव्य के उपलब्ध उदाहरण दण्डी के लगभग ढाई सौ वर्ष बाद से मिलने प्रारंभ होते हैं। उनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि चम्पू काव्य कथानक वद्ध गद्य-पद्य मिश्रित काव्य रूप है। एक और तो चम्पू काव्य कथा, आख्यायिका आदि से भिन्न है, क्योंकि कथा आदि में पदों का प्रयोग उपदेश अथवा नीति कथन के रूप में किया जाता है किन्तु चम्पू में गद्य और पद्य प्राय: समानुपात होते हैं। पद्य भी गद्य भाग की ही भांति कथानक से संबंध होकर ही प्रस्तुत होते हैं। चम्पू में गद्य और पद्य का वैसा ही सुंदर पारस्परिक संबंध पाया जाता है। जैसे संगीत के वाद्य के सहयोग से गीत का। 'गद्यपद्यमयी काचिच्चम्पूरित्यादि विद्यते' इस परिभाषा से ऐसा प्रतित होता है कि सप्तम शताब्दी में चम्पू का अस्तित्व अवश्य था।

कविराज विश्वनाथ ने उदाहरण स्वरूप दसराजचरित नामक चम्कू का उल्लेख करते हुए चम्पू को इस प्रकार परिभाषित किया है।– गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते' इस प्रकार की परिभाषा से समीचीन नहीं है। कारण, गद्यपद्यमयी रचनाएं तो अनेक हैं जो चम्कू नहीं है। जैसे— ऐतरेयब्राह्मण, कठोपनिषद्, जातकमाला, हितोपदेश, पंचतन्त्र आदि।

चम्पू काव्य का लक्षण—

आचार्य दण्डी में 'काव्यादर्श' में गद्य-पद्यमयी रचना को चम्पू कहा है। हेमचन्द्र अपने काव्यानुशासन में चम्पू की परिभाषा करते हुए लिखते हैं कि— **'गद्यपद्यमयीसाड्कासोच्छवासा चम्पू'** इसकी पुष्टि बाग्भट्ट ने भी अपने काव्यानुशासन में की है। डॉ0 सूर्यकान्त ने नृसिंहचम्पू की भूमिका में एक अज्ञात कर्त्तृक चम्पू लक्षण उद्धृत किया है। तदनुसार चम्पू काव्य में गद्य पद्य के मिश्रण, साड्कत्व और सोच्छवासत्व साथ उक्ति प्रयुक्ति तथा विश्कमम्भक का साहित्य भी आवश्यक है। चम्पू की इस कसौटी पर त्रिविक्रमभट्ट की नलचम्पू ही खरी उतरती है, जिसमें लक्षण घटक सभी विषय उपलब्ध हैं। किन्तु अब्याप्ति दोष ग्रस्त इस लक्षण के अनुसार अनेक चम्पूओं को चम्पू की लक्ष्यता मान्यता प्राप्त नहीं होगी। क्योंकि भागवतचम्पू, पुरुदेवचम्पू, आनंदवृंदावनचम्पू, रामानुजचम्पू आदि स्थबकों में यशस्तिलचम्पू, वसुचरित्रचम्पू, विरुपाक्ष वसंतोत्सवचम्पू आदि काण्डों में शंकर मंदारसौरचम्पू, विद्वन्मोदतरड्गिणीचम्पू आदि तरंगों में बालभागवत चम्पू, भारतेश्वराभ्युदय चम्पू आदि सर्गों में रघुनाथविजयचम्पू, वरदाभ्युदयचम्पू प्रभृति विलासों में जीवनधरचम्पू लम्भकों में, आचार्यदिग्विजचम्पू कल्लोलो में, मन्दारचम्पू मनोरथों में, रामचन्द्रचम्पू परिच्छेदों में विभक्त हैं। अतः सड्कत्व और सोच्छवासत्व चम्पू के स्वरूप विधायक तत्व नहीं हो सकते है। ऐसे ही उक्ति प्रयुक्ति शून्यत्व और विश्कम्भक साहित्य भी चम्पू के लक्षणों में नहीं आ सकते क्योंकि अनेक मान्य प्रसिद्ध चम्पू उक्ति प्रत्युक्तियों से युक्त हैं और विश्कम्भक का विधान केवल दृश्य काव्य में होता है, अत: चम्पू में उसकी संभावना ही होती है। उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि महाकाव्य में सर्ग बन्धता की तरह चम्पू में साड्कता और सोच्छवास्ता अनिवार्य नहीं है। गद्य और पद्य का मिश्रण भी अनिवार्य है। ऐसी स्थिति में विवेचन करने पर डॉ. कैलासपति त्रिपाठी लिखित 'नलचम्पू' की भूमिका में निर्दिष्ट चम्पू का निम्न लक्षण ही उपयुक्त ही प्रतीत होता है।

गद्य-पद्यमयं श्रव्यं सम्बद्धं बहुवर्णितम्।

सालंकृतं रसै: सिक्तं चम्पूकाव्यमुदाहृतम्।।

यहॉ श्रव्य कहने से गद्य, पद्य, मिश्रित नाटकादि दृश्यकाव्य का व्यावर्तन होता है। सम्वद्ध प्रबन्ध कहने से जालकमाला, पंचतत्र, विरूद, दानपत्र आदि की व्यववृत्ति हो जाती है। निष्कर्षत: चम्पूकाव्य में गद्य-पद्य का मिश्रण, श्रव्यत्व , प्रबन्धरूपता, वर्णन की प्रधानता, रस गुणालंकारों की अभिव्यंजकता ये सभी आवश्यक माने जाते हैं, जो सभी प्रख्यात चम्पू कृतियों में मिलते हैं।

चम्पू काव्य का उद्भव एवं विकास—

गद्य तथा पद्य काव्य का उद्भव जैसे अतिप्राचीन काल में ही देखा जाता है, वैसे ही गद्य-पद्यमय चम्पू काव्य का भी प्रकार प्राचीन समय में ही हुआ था। ऐतरेय ब्राह्मण के हरिश्चन्द्रोपाख्यान में गद्य पद्य का मिश्रण प्राप्त होता है। वहां भी वर्णनात्मक विषय गद्य के द्वारा और भावनात्मक विषय पद्य के द्वारा प्रदर्शित किया गया है। यह मिश्र शैली प्रश्न, कठ, मुंडक आदि उपनिषदों में भी देखी जाती है। जो सर्वथा स्वभाविक अकृतिम है। चम्पू की मिश्र शैली में कृत्रिमता समुद्रगुप्त की दिग्विजय प्रशस्ति (३५०ई0) में पाई जाती है, जहां हर क्षण में रस, भाव, गुण, अलंकार, कला, चातुर्य आदि के विधान से सहृदयों को चमत्कृत करने का प्रयास किया है। अतएव यह प्रशस्ति चम्पू काव्य की पूर्णपीठिका मानी जाती है।

हरिषेण के बाद और त्रिविक्रमभट्ट से पूर्व सुबंधु, बाण, दंडी भारवी, माघ, कुमारदास, रत्नाकर आदि महाकवियों ने प्राय: इस मिश्र शैली में काव्य सृष्टि नहीं की इसका कारण मृग्य है। इस प्रकार संस्कृत साहित्य में भावों को प्रकटन के निमित्त अनेक शताब्दीयों तक लोकप्रिय माध्यम होने पर भी उत्तर भारतीय भाषा साहित्य में चम्पू काव्य दृढमूल न हो सका। द्रविडी भाषा के साहित्य में सामान्यतः केरली तथा आन्ध्र साहित्य में विशेषता चम्पू काव्य आज भी लोकप्रिय है जिसके प्रणयन की ओर कवि जनों का ध्यान आकृष्ट है।

2.3.1.3 कथा साहित्य की परम्परा—

कथा शब्द कथ् धातु से 'चितिपूजिककथिकुम्बिचीज्वश्सचेति' सूत्र से अड् प्रत्यय होकर स्त्रीलिड् में अजाद्यष्टाप् सूत्र से टाप् प्रत्यय मिश्रण से निष्पन्न होता है। कथ धातु का अर्थ वाक्य प्रबन्ध अर्थात् वाक्यों के प्रबन्धात्मक विवेचन को कथा कहा जाता है।

कथा की व्युत्पत्ति—

यूं तो कथा के व्युत्पत्ति को समझने के लिए ' कत्थ एवं कथक' यह दो शब्द भी विचारणीय है, इन दोनों शब्दों का कथा से अटूट संबंध है। 'कत्थ' का अर्थ होता है जो कहा जाए और 'कथक' कहते हैं 'कथा कहने वाले को' इस प्रकार जब कोई वक्ता अपने वाक्य प्रबन्ध को सुमधुर शैली से अभिव्यक्त करता है तो उस वाक्य प्रबन्ध को कथा संज्ञा की संज्ञा दी जाएगी।

कथा की परिभाषा को सीमित या निश्चित शब्दों में प्रस्तुत करना कुछ असंभव सा ही है क्योंकि कथा के रूप में समय-समय पर परिवर्तन के कारण या क्षेत्र की व्यापकता के कारण विद्वानों ने कथा को विभिन्न प्रकार से समय-समय पर परिभाषित करने का प्रयास किया है। साहित्य दर्पण कार आचार्य विश्वनाथ ने कथा को परिभाषित करते हुए कहा है— **'कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम् क्वाचित भवेदाया क्वचित् वक्त्रापवक्त्रे'।** अर्थात् कथा में एक सरस कथावस्तु होती है संपूर्ण कथावस्तु गद्य में ही निबंद्ध होती है। कथा में कहीं-कहीं आर्यों तथा वक्त्र अपवक्त्र छन्दों का प्रयोग होता है, तथा कथा के आदि में दुष्टों व देवताओं को कुछ पद्यों द्वारा नमस्कार किया जाता है। संस्कृत साहित्य ने विश्व साहित्य को एक बहुत ही महत्वपूर्ण देन प्राप्त की है और वह देन है कथा साहित्य या आख्या साहित्य की दुनिया का प्राय: ऐसा कोई देश नहीं बचा जहां भारत की ये कथा कृतियॉ अनुवाद के रूप में ना पहुॅची हों।

जो मनुष्य किन्ही कारणों से वेद, स्मृति, पुराण इत्यादि में पठन-पाठन नहीं कर पाते थे, उन्हें भी नीति, धर्म इत्यादि का ज्ञान देने के लिए कथा साहित्य का विकास हुआ। कथा साहित्य में इतिहास, पुराण संबंधी ज्ञान नहीं होता

उनकी कथाएं पूर्णरूपेण काल्पनिक होती हैं तथा कल्पनाओं की घटनाओं की हास्य विनोद मौलिकता आदि का ऐसा समन्वय होता है जिससे पाठक श्रोता हठात् इसकी तरफ आकर्षित हो जाता है। इन कथाओं में से कुछ तो तात्कालिक जीवन के पराक्रम आधारित हैं, कुछ समुद्री यात्राओं के संबंध है, कुछ आश्चर्य पूर्ण घटनाओं से युक्त हैं, कुछ आकाशलोक एवं गंधर्वलोक का चित्रण करने वाली हैं, कुछ धर्म की प्रेरणा से पूरित है कुछ नीतिपरक हैं तो कुछ अधिकांश शिक्षात्मक तथा उपदेशात्मक हैं। इन कहानियों की रोचकता और मनोहरता से नर-नारी, बाल, वृद्ध, शिक्षित, अशिक्षित, निर्धन, धनवान, मूर्ख व ज्ञानी सभी आनंद प्राप्त करते हैं। इसी कारण से पश्चात विद्वानों ने भी भारतीय साहित्य की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

कथा साहित्य का उद्भव एवं विकास—

समस्त विश्व के साहित्य में कथा या आख्यान साहित्य का उद्भव सर्वप्रथम भारत में ही हुआ संस्कृत में इन कथा साहित्य की रचना प्रायः उपदेशात्मक काव्य के रूप में हुई है। इन उपदेशों में प्राय: पशु जगत् को माध्यम बनाकर उनके कृत्यों के आधार पर कर्तव्याकर्तव्य का निर्धारण किया गया है। इन उपदेशात्मक नीतिपरक कथाओं ने विश्व को सभी चिंतकों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया है। सरल, सुबोध, भाषा और सीधी-सादी शैली में कथाओं के माध्यम से दिया गया उद्देश्य मानव जीवन के लिए अत्यंत महत्वशाली है। अखिल विश्व के साहित्य में इन्हीं आंख्यानों के अनुकरण पर पशु कथाएँ प्रचलित है। अंग्रेजी में ऐसे कथाओं को (febkes) कहा जाता है। संस्कृत कथा-साहित्य में एक और विशेषता है। इसमें न तो महाकाव्यों की भांति किसी उदात्त व ऐतिहासिक चरित्र की अवधारणा की गई है और ना ही किसी प्रख्यात पौराणिक आख्यान को प्रश्रय मिला है। इन कथाओं में विशुद्ध रूप से कल्पना का सहारा लिया गया है इनके पात्र भी चलते फिरते जगत् के पात्र हैं। संक्षेप में काल्पनिक जगत्, घटना वैचित्र्य, हास्य, विनोद, कौतूहल तथा गंभीर व्यावहारिक जीवन दर्शन इन कथाओं का मूल प्रतिपाद्य विषय है। साहित्किता कि दृष्टि से भी यह अत्यंत उच्च कोटि की है। सीधी सादी अलंकार वाहिनी भाषा छोटे-छोटे तथा जटिल समायरहीत वाक्य बीच-बीच में सुन्दर उपदेशात्मक पद्यों की अवतारणा, से सभी मिलकार इन कथाओं को उच्च कोटि की साहित्यिक प्रदान करती है। इन कथाओं की सबसे बड़ी विशेषता है यह कहानियां आज भी देश के कोने-कोने में मौखिक परंपरा में प्रचलित हैं। सामान्य मानव जगत् कथओं में निहित मानवेतर प्राणियों के व्यवहार से जो शिक्षा ग्रहण करता है, वह मानवीय व्यवहार से ग्रहण की गई शिक्षा से कहीं अधिक महत्वशालिनी है। संस्कृत की इन कथाकृतियों में मूलत: दो प्रकार की कथाएं हैं। 1. लौकिक कथाएँ 2. नीतिपरक या उपदेशात्मक कथाएँ। लौकिक कथओं का सर्वप्रसिद्ध एवं अतिप्राचीन कथा संग्रह 'बृहत्कथा' है। नीतिपरक व उपदेशात्मक कथा संग्रहों में पंचतत्र तथा हितोपदेश विशेष उल्लेखनीय है।

2.4 संस्कृत नाट्य साहित्य की परम्परा

2.4.1 संस्कृत नाट्य साहित्य का परिचय—

साहित्यशास्त्र में काव्य के दो भेद हैं 1 दृश्य काव्य , श्रव्य काव्य । दृश्य काव्य के द्वारा भावक किसी भी घटना या वस्तु का चाक्षुष ज्ञान ग्रहण करता है, किन्तु श्रव्य काव्य के द्वारा केवल श्रवण ही प्राप्त होता है । श्रव्य काव्य मेंआनन्दानुभूति कल्पना मार्ग से प्राप्त होती है जबकि दृश्य काव्य के द्वारा इसी आनन्द की प्राप्ति रंगमंच पर साकार रूप से होती है ।

जिसका अभिनय किया जा सके उसे दृश्य काव्य कहते हैं **'दृश्यं तत्राभिनेयं'** । इसी दृश्य काव्य को रूप या रूपक संज्ञा से भी जाना जाता है । रूपक शब्द की निष्पत्ति रूप धातु में ण्वुल प्रत्यय के योग से होती है । ये दोनों ही शब्द साहित्य में 'नाट्य' के द्योतक है । नाट्यशास्त्र में 'दशरूप' शब्द का प्रयोग नाट्य की विधाओं के अर्थ में हुआ है । अब प्रश्न यह उठता है कि नाट्य क्या है ? दशरूपककार आचार्य धनंजय नाट्य की परिभाषा इस प्रकार देते हैं —**'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्'** अर्थात् अवस्था के अनुकरण को नाट्य कहते हैं ।

नाट्य साहित्य का उद्भव—

संस्कृत रूपकों के उद्भव एवं विकास का प्रश्न भी नाम रूपात्मक जगत की सृष्टि के समान विवादास्पद है। अधिकांश विद्वानों का दृष्टिकोण है कि परमात्मा ने जिस प्रकार नामरूपात्मक जगत की सृष्टि की है उसी प्रकार नाट्य विद्या की भी नाट्य विद्या के सम्बन्ध में भारतीय तत्ववेत्ता मनीषी यह अवधारणा रखतें हैं कि इसकी उत्पत्ति के मूल में परमात्मा ही है। यहां हम भारतीय एवं पाश्चात्य मतों को संक्षेप में प्रस्तुत कर रहे हैं —

उद्भव सम्बन्धी भारतीय मत—

दैवीय उत्पत्ति सिद्धान्त —

नाट्य विद्या की उत्पत्ति के सम्बन्ध में शुभंकर ने अपने संगीत दामोदर में लिखा है कि एक समय देवराज इन्द्र ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि वे एक ऐसे वेद की रचना करें जिसके द्वारा सामान्य लोगों का भी मनोरंजन हो सके। इन्द्र की प्रार्थना सुनकर ब्रह्मा ने समाकर्षण कर नाट्य वेद की सृष्टि की। सर्वप्रथम देवाधिदेव शिव ने ब्रह्मा को इस नाट्य वेद की शिक्षा दी थी और ब्रह्मा ने भरतमुनि को और भरत मुनि ने मनुष्य लोक में इसका इसका प्रचार प्रसार किया। इस प्रकार शिव , ब्रह्मा भरत मुनि नाट्य विद्या के प्रायोजक सिद्ध होते हैं।

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में नाट्यविद्या के उद्भव के सम्बन्ध में कहा है कि सभी देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि वे जनसामान्य के मनोरंजन के लिए किसी ऐसी विधा की रचना करें। उनके इस कथन से ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य सामवेद से गायन यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस ग्रहण करके इस नाट्य वेद नामक पंचम वेद की रचना की। दशरूपककार आचार्य धनंजय ने भी इसी मत को स्वीकार किया है।

भारतीय विद्वानों की यह मान्यता है कि पृथ्वी पर सर्वप्रथम इन्द्रध्वज महोत्सव के समय पर नाट्य का अभिनय हुआ था।

संवादसूक्त सिद्धान्त —

इस सिद्धान्त के प्रतिपादकों का विचार है कि ऋग्वेद के अनेक सूक्तों में संवाद प्राप्त होते हैं। यथा — 'यम यमी संवाद', पुरूरवा उर्वशी,शर्मा पाणि संवाद,इन्द्रमरूत, इन्द्र इन्द्राणी , विश्वामित्र नदी आदि प्रमुख संवाद है। यजुर्वेद में अभिनय सामवेद में संगीत और अथर्ववेद में रसों की संस्थिति है। इन्हीं तत्वों से धीरे धीरे रूपको का विकास हुआ।

उद्भव सम्बन्धी पाश्चात्य मत— संस्कृत नाटकों के उद्भव के सम्बन्ध में पाश्चात्य विचारकों के मत इस प्रकार है।

वीरपूजा सिद्धान्त —

पाश्चात्य विद्वान डा0 रिजवे का मत है कि रूपकों के उद्भव में वीर पूजा का भाव मूल कारण है। दिवंगत वीर पुरूषों के प्रति समादर का भाव प्रकट करने की रीति ग्रीस, भारत आदि देशों में अत्यधिक प्राचीन काल से है।दिवंगत आत्माओं की प्रसन्नता के लिए उस समय रूपकों का अभिनय हुआ करता था। परन्तु डा0 रिजवे के इस सिद्धान्त से विद्वान सहमत नहीं हैं।

प्रकृति परिवर्तन सिद्धान्त —

डा0 कीथ के मतानुसार प्राकृतिक परिवर्तन को मूर्त रूप में देखने की स्पृहा ने इस सिद्धान्त को जन्म दिया। इसके प्रबल समर्थक डा0 कीथ प्रकृति परिवर्तन से नाटक की उत्पत्ति को स्वीकार करते हैं। 'कंसवध' नामक नाटक में हम इसके मूर्त रूप का दर्शन कर सकते हैं। परन्तु डा0 कीथ के इस मत को भी विद्वानों का समर्थन प्राप्त न हो सका।

पुत्तलिका नृत्य सिद्धान्त —

जर्मन के प्रसिद्ध विद्वान डा0 पिशेल संस्कृत नाटक का उद्भव पुत्तलिकाओं के नृत्य तथा अभिनय से मानते हैं। 'सूत्रधार' एवं स्थापक शब्दों का नाटक में प्रयोग हुआ है। इन शब्दों का सम्बन्ध पुत्तलिका नृत्य से है

महाभारत, बाल रामायण ,कथासरित्सागर इत्यादि में दारूमयी , पुत्तलिका आदि शब्दों का प्रयोग इस मत को पुष्टता प्रदान करते हैं। परन्तु विद्वानों के मध्य यह मत भी सर्वमान्य न हो सका

छाया नाटक सिद्धान्त —

छाया नाटकों से रूपक की उत्पत्ति एवं विकास का समर्थन करने वाले प्रसिद्ध विद्वान डा0 लूथर्स एवं क्रोनो है। अपने मत के समर्थन में वे महाभाष्य को प्रगाढ रूप में प्रस्तुत करते हैं। महाभाष्य में शौभिक छाया नाटकों की छाया मूर्तियों के व्याख्याकार थे पर दूतांगद नामक छाया नाटक अधिक प्राचीन नही है। अत: इसे नाटकों की उत्पत्ति का मूलकारण मानना न्यायोचित नहीं। अत: विद्वानों का यह मत भी अधिक मान्य नहीं हुआ ।

मेपोलनृत्य सिद्धान्त —

इस सिद्धान्त के समर्थक इन्द्रध्वज नामक महोत्सव को नाटक की उत्पत्ति का मूल कारण स्वीकार करते हैं। पाश्चात्य देशों में मई के महीने में लोग वसन्त की शोभा को देखकर एक लम्बा बाँस गाडकर उसके चारों तरफ उछलते कूदते एवं नाचते गाते हैं। यह इन्द्रध्वज जैसा ही महोत्सव है ऐसे ही उत्सवों से शनै: शनै: नाटक की उत्पत्ति हुई। परन्तु दोनो महोत्सवों के समय में पर्याप्त अन्तर है तथा इनके स्वरूप में भी परस्पर भिन्नता है अत: यह सिद्धान्त भी सर्वमान्य नहीं है।

उपर्युक्त सिद्धान्तों के अतिरिक्त कुछ विद्वान लोकप्रिय स्वांग सिद्धान्त तथा वैदिक अनुष्ठान सिद्धान्त को भी रूपकों की उत्पत्ति का कारण मानते हैं। किन्तु विद्वान इस मत से भी सहमत नहीं हैं। विद्वानों के उपर्युक्त मतों के अनुशीलन से हम इस निष्कर्ष पर पहुचंते हैं कि रूपकों के उद्भव का विषय अत्यन्त विवादास्पद है। प्राचीन भारतीय परम्परा नाट्यवेद का रचयिता ब्रह्मा को इंगित करती है और लोक प्रचारक के रूप में भरतमुनि को निर्दिष्ट करती है। आधुनिक विद्वान इससे भिन्न मत रखते हैं य़द्यपि यह माना जा सकता है कि इन मतों में से कोई मत नाटक की उत्पत्ति का कारण हो सकता है परन्तु यह कहना अत्यन्त कठिन है कि अमुक मत ही नाटक की उत्पत्ति का मूल कारण है।

नाटक का विकास–

ऋग्वेद से ही हमें नाट्य के अस्तित्व का पता चलने लगता है। सोम के विक्रय के समय यज्ञ में उपस्थित दर्शकों के मनोरजंन के लिए एक प्रकार का अभिनय होता था। ऋग्वेद के संवाद सूक्त भी नाटकीयता का द्योतन करते हैं। यजुर्वेद में 'शैलूष' शब्द का प्रयोग किया गया है जो नट (अभिनेता) वाची शब्द है। सामवेद में तो संगीत है ही। इस प्रकार नाटक के लिए आवश्यक तत्व गीत, नृत्य,वाद्य सभी का प्रचार वैदिक युग में था। यह निश्चित है कि भारतीय नाट्य परम्परा के मूल उदगम ग्रंथ वेद ही है। आदिकाव्य रामायण में नाट्य तत्त्वों का उल्लेख हुआ है। महर्षि वेदव्यास प्रणीत महाभारत में भी नट, नर्तक, गायक, सूत्रधार आदि का स्पष्ट उल्लेख है। हरिवंशपुराण में उल्लेख हुआ है कि कोबेररम्भाभिसार नामक नाटक का अभिनय हुआ था जिसमें शूर रावण के रूप में और मनोवती ने रम्भा का रूप धारण कर रक्खा था। मार्कण्डेय पुराण में भी काव्य संलाप और गीत शब्द के साथ नाटक का भी प्रयोग हुआ है। संस्कृत भाषा के महान वैयाकरण महर्षि पाणिनी ने अपनी अष्टाध्यायी में नट सूत्रों का स्पष्ट उल्लेख किया है। महर्षि पतंजलि ने अपने महाभाष्य में 'कंसवध' और 'बलिबन्ध' नामक नाटकों का उल्लेख करते हुए 'शोभनिक' शब्द का प्रयोग किया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में नट,नर्तक, गायक एवं कुशीलव शब्दों का प्रयोग हुआ है।भरतमुनि नाट्यशास्त्र के प्रमुख आचार्य माने गये हैं। भरतमुनि ने सुप्रसिद्ध 'नाट्यशास्त्र' की रचना की है। इसमें नाट्य से सम्बन्धित विषयों का विधिवत् विवेचन हुआ है। इन्होनें कोटल शाण्डिल्य, वात्सम, धूर्तिल आदि आचार्यों के नामों का उल्लेख किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि इनके समय तक अनेक नाटकों की रचना हो चुकी थी और नाट्यकला का विधिवत् विकास हो चुका था।

वेदों से लेकर भरतमुनि प्रणीत नाट्यशास्त्र के अनुशीलन से हम यह कह सकते हैं कि संस्कृत नाटकों की रचना पुरातन काल से होती चली आ रही है परन्तु परिष्कृत नाटकों की रचना ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के पूर्वाद्ध में मानी जाती है। संस्कृत नाटकों में महाकवि भास के नाटक अत्यधिक प्रतिष्ठा को प्राप्त हुए हैं। परिष्कृत रूपक रचनाओं में भास के रूपकों को प्राचीन माना जाता है। भासक्पश्चात्शूद्रक, कालिदास, अश्वघोष, हर्ष, भवभूति, विशाखादत्त, मुरारि, शक्तिभद्र, दामोदर मिश्र, राजशेखर, दिंगनाग, कृष्ण मिश्र, जयदेव, वत्सराज आदि आते हैं। इनके उच्चकोटि के नाटकों ने संस्कृत साहित्य की सम्यक् श्री वृद्धि ा की है।

2.4.2 संस्कृत नाट्य साहित्य के प्रमुख नाट्ककार

कालिदास का जीवन वृत्त —

संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ महाकवि कालिदास के जन्म स्थान,समय और जीवनवृत्त के विषय में अन्य कवियों की भांति निश्चित रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है। कुछ किंवदन्तियों तथा अनुमानों के आधार पर ही थोडा बहुत जाना जा सकता है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् की प्रस्तावना तथा भरतवाक्य के आधार पर इतनी जानकारी तो अवश्य ही प्राप्त होती है कि ये विक्रमादित्य के राजकवि थे। महाकवि कालिदास के विषय में यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि वे आरम्भ में इतने मूर्ख थे कि जिस डाल पर बैठे हुए थे उसी को काट रहे थे। कुछ पण्डित जो एक विदुषी राजकुमारी से शास्त्रार्थ में पराजित हो गये थे वहां के राजा से रूष्ट होकर धोखे से उनका विवाह उनकी विदुषी पुत्री विद्योत्तमा से करा देते हैं। एक दिन जब वह ऊँट को उट्र कहकर पुकारने लगे और प्रयत्न करने पर भी उष्ट्र न कह सके तब उनकी पत्नी ने उन्हें धक्का देकर घर से निकाल दिया। खिन्न होकर वह काली देवी के मन्दिर में गये ओर अपनी जीभ काट कर देवी पर चढा दी। माँ काली ने इन्हें सम्पूर्ण शास्त्रों का ज्ञान दिया और तभीसे यह कालिदास कहलायें। वहाँ से लौटकर अपने घर वापस आने पर इन्होने 'अनावृतं कपाटं द्वारं देहि' कह कर अपनी पत्नी से किवाड खुलवाये। विद्योत्तमा ने 'अस्ति कश्चित वाग्विशेष: ' कहकर इनका सम्मान किया। कालिदास ने अस्ति शब्द से 'अस्त्युत्तरस्याम् दिशि देवतात्मा ' कुमारसंभवम् ,कश्चित से 'कश्चितकान्ताविरहर्गुरूणां ' से मेघदूत और वाग्विशेष: से 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ ' से रघुवंश महाकाव्य की रचना की। इनके वर्णनों से ज्ञात होता है कि इन्होनें दूर दूर तक भ्रमण किया था। प्रकृति से इन्हें विशेष लगाव था। ऐसा माना जाता है कि इनकी मृत्यु 50 वर्ष की अवस्था में सिंहलद्वीप में इनके मित्र कुमारदास की दरबारी वेश्या के द्वारा हुई थी। इसी प्रकार इनके जन्म स्थान भी काश्मीर, बंगाल,विदर्भ तथा उज्जयिनी बतलाये जाते हैं किन्तु उज्जयिनी को ही इस महाकवि की जन्मभूमि कहलाने का गौरव हुआ है।

स्थितिकाल —

महाकवि कालिदास के स्थितिकाल के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत है। इनका स्थितिकाल ईसा की छठी शताब्दी से लेकर ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी तक माना जाता है। इसका विवरण निम्नलिखित है —

ईसा की छठी शताब्दी का मत —

कालिदास ने अपने नाटकों में स्वयं को उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य की राजसभा का कवि बतलाया है। किन्तु विक्रमादित्य नाम के कई राजा हुए हैं अत: कालिदास किस विक्रमादित्य के समय में हुए हैं यह एक विवादास्पद विषय है। डा0 फर्ग्युसन का मत है कि उज्जयिनी के राजा हर्ष विक्रमादित्य ने 544 ई0 में शकों को पराजित करके विक्रम सम्वत् चलाया उन्होनें इस सम्वत् को प्राचीन बनाने के लिए इसका आरम्भ अपने समय से 600 वर्ष पूर्व अर्थात् ईसा से 57 वर्ष पूर्व रखा। कालिदास इन्हीं विक्रमादित्य की सभा के कवि थे। इस मत को मानने वाले कहते हैं कि कालिदास के ग्रन्थों में शक, यवन और हूण आदि जातियों का उल्लेख है। हूणों ने भारत पर 500ई0 में आक्रमण किया था अत: कालिदास का समय ईसा की छठवीं शताब्दी है।

समीक्षा —

डा0 फर्ग्युसन के इस मत की पुष्टि में कि विक्रम सम्वत् को 600 वर्ष चलाया कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है । कालिदास ने अपने ग्रन्थों में शक,यवन और हूण आदि जातियों का वर्णन विदेशी आक्रमणकारियों के रूप में नहीं किया है बल्कि रघु की दिग्विजय के प्रसंग में ही किया है। अत: शकादि के आक्रमण से पूर्व भी उनका वर्णन न्यायोचित नहीं है । 473 ई0 में मन्दसौर बाली वत्स भट्ट द्वारा लिखित प्रशस्ति में ऋतुसंहार और मेघदूत की स्पष्ट झलक दिखाई पडती है अत: कालिदास इससे पूर्व के ही होगें ।

गुप्तकालीन मत —

'कीथ' महोदय का मत है कि कालिदास गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (375— 413) की सभा के कवि थे। इन्हीं चन्द्रगुप्त ने शकों को भारत से बाहर निकाल कर विक्रमादित्य की उपाधि को धारण किया था और पहले से ही चले आने वाले मालव सम्वत् को विक्रमसम्वत् के नाम से चलाया था । इस मत को मानने वालों के निम्न तर्क हैं —

कालिदास के कुमार संभव महाकाव्य की रचना चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमार गुप्त के नाम को ध्यान में रख कर की थी। कालिदसा के ग्रन्थों में वर्णित भारत की सुख समृद्धि गुप्तकाल की सुख समृद्धि से समानता रखती है । रघुवंश में वर्णित अश्वमेध यज्ञ का वर्णन समुद्रगुप्त के अश्वमेध यज्ञ से समानता रखता है । इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि कालिदास गुप्त काल में विशेषत: चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल में हुए होगें ।

समीक्षा —

कालिदास ने कुमार संभव महाकाव्य में कुमार शब्द का प्रयोग पुत्र के अर्थ में किया है । अत: इससे कुमारगुप्त संकेत निकालना अनुचित है । रघु की दिग्विजय का वर्णन एक काल्पनिक कवित्वपूर्ण वर्णन है, ऐतिहासिक नहीं। किसी भी गुप्त सम्राट का नाम 'विक्रमादित्य'नहीं था यह केवल उनकी उपाधि मात्र थी। इससे सिद्ध है कि उनके पूर्व विक्रमादित्य नाम का अति प्रतापी राजा हुआ होगा और उसका नाम बाद में उपाधि के रूप में स्वीकार कर लिया होगा इस प्रकार यह मत भी उचित नहीं है ।

ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी का मत—

ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर यह बात सिद्ध हो चुकी है कि विक्रम की प्रथम शताब्दी में विक्रमादित्य नामक राजा उज्जयिनी का शासक था। अत: कालिदास इसी के समकालीन रहे होगें क्योंकि प्रथम शताब्दी के उत्तरार्ध में महाकवि अश्व घोष की स्थिति सिद्ध होती है और उनके ऊपर कालिदास का प्रभाव है। अत: कालिदास का काल विक्रम की प्रथम शताब्दी में ही सिद्ध होता है। उक्त प्रमाणें से स्पष्ट हे कि कालिदास का समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी ही होना चाहिए।

रचनाएं —

महाकवि कालिदास की कविता देववाणी का श्रंगार है । कालिदास ने दो महाकाव्य , दो गीतिकाव्य तथा तीन नाटकों की रचना की । इस प्रकार इनकी कुल सात रचनाऐं हैं जिसमें अभिज्ञानशाकुन्तलम् इनका विश्व प्रसिद्ध नाटक है ।

महाकाव्य—

कुमारसंभव तथा रघुवंश कालिदास के प्रसिद्ध महाकाव्य हैं । कुमारसंभव में 18 सर्ग हैं किन्तु विद्वान 8 सर्गों को ही कालिदास द्वारा रचित मानते हैं । इसमें पार्वती जन्म, कामदहन , पार्वती तपस्या, शिव विवाह, कार्तिकेय जन्म आदि का अत्यन्त सुन्दर वर्णन है । **रघुवंश** महाकाव्य में19 सर्ग हैं । इसमें दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक के इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं का वर्णन है। यह उनका सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है ।

गीतिकाव्य —

ऋतुसंहार तथा मेघदूत कवि के प्रसिद्ध गीतिकाव्य हैं। ऋतुसंहार में षडऋतुओं का छ: सर्गों में अत्यन्त सुन्दर वर्णन है। प्रत्येक सर्ग में क्रमश: एक—एक ऋतुओं का वर्णन है। मेघदूत कालिदास का प्रसिद्ध गीतिकाव्य है। इसमें कवि ने विरही यक्ष के द्वारा मेघ के माध्यम से अपनी प्रियतमा को भेजे गये सन्देश का वर्णन किया है। भौगोलिक वर्णन, प्राकृतिक दृश्यों का चित्रण, तथा विरहिणी की मर्म व्यथाओं को देखकर मेघदूत को संस्कृत काव्य जगत का सर्वोत्तम गीतिकाव्य कहा जाता है।

नाटक —

विक्रमोर्वशीयम् , मालविकाग्निमित्रम् तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् कालिदास के प्रसिद्ध नाटक हैं। कथावस्तु, चरित्र चित्रण , कथोपकथन , नाटकीय सन्धि तथा रसपरिपाक की दृष्टि से कालिदास केनाटकअद्वितीयहैंअभिज्ञानशाकुन्तलम् विश्व के सर्वोत्तम नाटकों में गिना जाता है। मालविकाग्निमित्रम् कालिदास का प्रथम नाटक है इसमें अग्निमित्र तथा मालविका की प्रणय कथा का पाँच अंको में वर्णन है। विक्रमोर्वशीयम् पाँच अंको का नाटक है। इसमें पुरूरवा तथा उर्वशी की प्रणय कथा वर्णित है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् कवि का सर्वश्रेष्ठ नाटक है। इसमें सात अंक है। इसके सात अंको में दुष्यन्त तथा शकुन्तला के मिलन , वियोग तथा पुर्नमिलन का सुन्दर वर्णन है।

कालिदास की काव्यकला —

महाकवि कालिदास की कविता देववाणी का श्रंगार है। भाषा, भाव कल्पना तथा वर्णन के क्षेत्र की दृष्टि से संस्कृत साहित्य में उनके समान कोई कवि दिखाई नहीं देता। संस्कृत साहित्याकाश के वह दैदीप्यमान दिनमणि है। उनकी कविता कामिनी कला तथा भाव दोनों पक्षों से समलंकृत है। महाकवि कालिदास की काव्यकला के सम्बन्ध में आचार्य बलदेव उपाध्याय का कथन है कि ' कालिदास की शैली की एक उत्कृष्ट विशेषता यह है कि इसमें किसी भाव का बहुत लम्बा चौडा वर्णन न करके उसके सूक्ष्म तत्त्व की मार्मिक व्यंजना मात्र कर दी जाती है '।

भाषा— महाकवि कालिदास की भाषा सरल, सरस तथा प्रसादगुणोपेत है। उन्होंने अपनी भाषा में पाण्डित्य प्रदर्शन नहीं किया है। उनकी भाषा की यह असाधारण विशेषता है कि वह जिस भाव को व्यक्त करना चाहते हैं भाषा वहां पर तदनुरूप प्रस्तुत हो जाती है। कोमल तथा सुकुमार भावों के चित्रण में वह सिद्ध हस्त हैं। उनकी भाषा पात्र के अनुरूप होती है। शकुन्तला के निष्कलंक सौन्दर्य का वर्णन कवि ने कितनी सुन्दरता के साथ किया है —

'' अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररूहै:
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितासम्।
अखण्डपुण्यानां फलमिव मे तद्रूपमनघं
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधि: ।। ''

कालिदास का भाषा में स्थान — स्थान पर मुहावरों के सुन्दर प्रयोग से भाषा अत्यधिक प्रवाहमयी हो जाती है। उदाहरणार्थ जब अनसूया प्रियंवदा से कहती है कि दुर्वासा के शाप का हृदयविदारक समाचार कोमलहृदय शकुन्तला तक न पहुँच जाये तब प्रियंवदा उत्तर देते हुए कहती है — **' को नामोष्णोदकेन नवमालिकां सिंचति '।**

गुण एवं रीति —

महाकवि कालिदास की रचनाओं में प्रसादगुण युक्त ललित काव्यशैली एवं वैदर्भी रीति का प्रयोग हुआ है। वैदर्भी रीति के वे सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। वैदर्भी रीति को परिभाषित करते हुए आचार्य विश्वनाथ ने कहा है।

'' माधुर्यव्यंजकैवर्णै: रचना ललितात्मिका
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भीरीतिरिष्यते ।। ''

अर्थात् माधुर्यव्यंजक वर्णो का प्रयोग, ललित रचना, समासों का अभाव या स्वल्प समासों का प्रयोग वैदर्भी रीति की प्रमुख विशेषतायें हैं। माधुर्य गुण कालिदास की कविता का आभूषण है। जो हृदय में परमानन्द की निर्झरिणी को प्रवाहित करता है। शकुन्तला जैसी अद्वितीय सुन्दरी के द्वारा वृक्ष सिंचन जैसा कठोर कार्य उन्हें किसी भी स्थिति में स्वीकार्य नहीं है अपने इस विद्रोही भावों को कितने सुमधुर शब्दों में कवि अभिव्यक्त करता है —

इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तप: क्षमं साधयितुं य इच्छति
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति ।।

यद्यपि कालिदास की रचनाओं में प्रसाद एवं माधुर्य गुण की प्रधानता है तथापि ओजगुण भी उनकी रचनाओं में यत्र —तत्र दृष्टिगोचर होता है। दुष्यन्त के सैन्य बल को देखकर भयग्रस्त हाथी के वर्णन में ओजगुण के दर्शन होते हैं —

तीव्राघात प्रतिहततरूस्कन्धलग्नैकदन्त:
पादाकृष्टव्रततिवलयासंग संजातपाश: ।
मूर्तो विघ्नस्तपस इव नो भिन्न सारंगयूथो
धर्मारण्यं प्रविशति गज: स्यन्दनालोकभीत: ।।

अलंकार — महाकवि कालिदास ने अपनी कविता वनिता को अवसर के अनुकूल विभिन्न अलंकारों से अलंकृत किया है।कालिदास ने शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनों का ही प्रयोग किया है। उपमा उनका सर्वप्रिय अलंकार है। कालिदास की उपमाऐं तो जगत प्रसिद्ध है इसीलिए कहा भी गया है — 'उपमा कालिदासस्य' । इसके अतिरिक्त कालिदास ने अनुप्रास, यमक, श्लेष, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों का भी प्रयोग किया है।

छन्द — छन्द काव्य का आह्लादक तत्त्व है। महाकवि कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तल में 24 छन्दों का प्रयोग किया है।

रस परिपाक —

कालिदास के काव्यों में सर्वत्र ही रसमयता दर्शनीय है। यद्यपि कालिदास ने अपने काव्यों में सभी रसों का प्रयोग किया है पर मुख्यत: उनकर हृदय श्रंगार रस में ही रमा है। श्रंगार के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का उन्होने अत्यन्त मनोहारी वर्णन किया है। मेघदूत में विप्रलम्भ श्रंगार चरम सीमा तक पहुँच गया है। कुमार संभव तथा अभिज्ञानशाकुन्तल में संयोग श्रंगार का सात्विक रूप दृष्टिगोचर होता है। इसके अतिरिक्त नाटकों में विदूषक के कथन में हास्य, कुमारसंभव के 'रति विलाप' तथा रघुवंशम् के 'अज विलाप' में करूण , रघु — इन्द्र और राम —रावण के युद्ध में वीर तथा अन्य स्थानों पर विभिन्न रसों का सुन्दर चित्रण दर्शनीय है।

भावाभिव्यंजना —

कालिदास व्यंजना व्यापार के कवि है। उनकी भावाभिव्यंजना अत्यन्त हृदयस्पर्शी है। इसी व्यंजना व्यापार के द्वारा कवि ने विस्तृत एवं रहस्यात्मक विषयों की सुन्दर अभिव्यक्ति की है। अभिज्ञानशाकुन्तल की प्रस्तावना के निम्नलिखित श्लोक में व्यंजना व्यापार देखिये —

'' सुभगसलिलावगाहा: पाटलसंसर्गसुरभिवनवाता: ।
प्रच्छायसुलभनिद्रा दिवसा: परिणामरमणीया: ।।''

'दिवसा: परिणामरमणीया:' से यह ध्वनित होता है कि नाटक का अन्त सुखद होगा। इसी प्रकार दुष्यन्त शकुन्तला के परिचय को जान लेने के बाद भी अपने मन के भावों को इस प्रकार व्यक्त करता है —

'' भव हृदय साभिलाषं सम्प्रति सन्देहनिर्णयो जात:
आशंकसे यद्ग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नं ।।''

अत: हम कह सकते हैं कि कालिदास की काव्यकला की यह विशेषता है कि वह भाव एवं कला पक्ष से समलंकृत है। भाषा की मधुरता, सरलता , सरसता, और प्रसादमयता में वह अद्वितीय हैं और उसमें व्यंजना शक्ति की प्रधानता है। इसीलिए कालिदास की प्रशंसा में कहा गया है —

'' पुरा कवीनां गणनाप्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदास: ।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव ।। ''

शूद्रक का जीवन परिचय—

मृच्छकटिक के रचियता शूद्रक का कुछ परिचय ग्रन्थ के आरम्भ (1। 4. 1। 5) में ही जीवन परिचय मिलता है। उसके अनुसार शूद्रक हस्तिशास्त्र में परम प्रवीण थें, भगवान शिव के अनुग्रह से उन्हे ज्ञान प्राप्त हुआ था, बड़े ठाट बाट से उन्होने अश्वमेध यज्ञ किया था, अपने पुत्र को राज्य सिहांसन पर बैठा दस दिन तथा सौ वर्ष की आयु प्राप्त कर अन्त में अग्नि में प्रवेश किया। वह युद्वो से प्रेम करते थे, प्रमाद रहित थे, तपस्वी तथा वेद जानने वालों में श्रेष्ठ थे, राजा शूद्रक को बड़े हाथियों के साथ बाहुयुद्ध करने का बड़ा शौक था, उनका शरीर था शोभन , उसकी गति थी मतंग समान नेत्र थे चकोर की तरह, मुख था पूर्ण चन्द्रमाँ की भाँति। तात्पर्य यह है कि उनका समग्र शरीर सुन्दर था। वे द्विजो में मुख्य थे प्रतीत होता है की किसी अन्य लेखक ने यहाँ जान बूझ कर कह दिया है 'शूद्रकोऽग्निप्रविष्ट' स्वयं लेखक की लेखनी इस भूतकाल का प्रयोग कैसे कर सकती है। निः संदेह यह अंश प्रक्षेप है।

शूद्रक नामक राजा की संस्कृत - साहित्य में खूब प्रसिद्धि है। जिस प्रकार विक्रमादित्य के विषय में अनेक दंतकथायें है उसी प्रकार शूद्रक के विषय में भी है। कादम्बरी विदिशा नगरी में कथा- सरित्सागर में शोभावती तथा वेतालपंचविंशति में वर्धमान नामक नगर में शूद्रक के राज्य करने का वर्णन पाया जाता है। कथा सरित्सागर का कथन है कि किसी ब्राह्मण ने राजा को आसन्नमृत्यु जानकर उसे दीर्घ जीवन की आशा में अपने प्राण निछावर कर दिये थे। हर्षचरित में लिखा है शूद्रक चकोर राजा चन्द्रकेतू का शत्रु था। राजतरंगिणीकार स्थिर- निश्चलता के दृष्टान्त के लिये शूद्रक का स्मरण करते है। स्कन्दपुराण के अनुसार विक्रमादित्य के सत्ताईस वर्ष पहले शूद्रक ने राज्य किया था। प्रसिद्ध है की कालिदास के पूर्ववती रामिल तथा सोमिल नामक कवियों ने मिलकर 'शूद्रक कथा' नामक कथा लिखी थी। अतः शूद्रक इसके कर्ता नहीं है बहुत से लोग तो शूद्रक की सत्ता में ही विश्वास नहीं करते। परन्तु ये सब श्रान्त धारणाऐं हैं। तथ्य यह प्रतीत होते है कि विक्रमादित्य के समान ही शूद्रक भी ऐतिहासिक क्षेत्र से उठकर कल्पना जगत के पात्र माने जाने लगे थे। और जिस प्रकार ऐतिहासिक लोग प्रथम शतक में विक्रमादित्य के अस्तित्व के विषय में ही सन्देहशील थे उसी प्रकार शूद्रक के विषय में भी। आधुनिक शोध में दोनों ही ऐतिहासिक व्यक्ति सिद्ध होते है। ऐसी दशा में शूद्रक को मृच्छकटिक का रचियता न मानने वाले डा0 सिल्वाँ लेवी तथा कीथ मत स्वयं ध्वस्त हो जाता है। पिशेल ने जो दण्डी को इसका रचियता होने का श्रेय दिया है वह भी कालविरोध होने से भ्रान्त प्रतीत होता है। शूद्रक ऐतिहासिक व्यक्ति थे और वे ही मृच्छकटिक के यथार्थ लेखक थे।

जन्म समय - पुराणों में आन्ध्रभृत्य - कुल के प्रथम राजा शिमुक का वर्णन मिलता है। अनेक भारतीय विद्वान राजा शिमुक के साथ शूद्रक की अभिन्नता को अंगीकार कर इनका समय विक्रम की प्रथम शताब्दी में मानते है। यही यह अभिन्नता सप्रमाण सिद्ध की जा सके तो शूद्रक कालिदास के समकालीन अथवा उनके कुछ पूर्व के ही माने जायेंगे। परन्तु मृच्छकटिक की इतनी प्राचीनता स्वीकार करने में बहुतों को आपत्ति है।

वामनाचार्य ने अपनी काव्यालंकार - सूत्र वृति में 'शूद्रकादिरचिषु' प्रबन्धेषु' शूद्रक-विरचित प्रबन्ध का उल्लेख किया और 'द्यूतं हि नाम पुरूषस्य असिंहासनं राज्यम् ' इस मृच्छकटिक के द्यूत - प्रशंसा-परक वाक्य को उद्धृत भी किया है , जिससे हम कह सकते है कि आठवीं शताब्दी के पहले ही मृच्छकटिक की रचना की गई होगी। वामन के पूर्ववर्ती आचार्य दण्डी (सप्तम शतक) ने भी काव्यादर्श में 'लिम्पतीव तमोऽङानि' मृच्छकटिक के इस प़द्यांश को अलंकारनिरूपण करते समय उद्धृत किया है। इन बहिरंग प्रमाणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि मृच्छकटिक की रचना सप्तम शताब्दी के पहले ही हुई होगी। समय-निरूपण में मृच्छकटिक के अन्तरंग प्रमाणों से भी बहुत सहायता मिलती है। नवम अंक मे वसन्तसेना की हत्या करने के लिए शकार आर्य चारूदत्त पर अभियोग लगता है। अधिकरणिक के सामने यह पेश किया जाता है अन्त में मनु के अनुसार ही धर्माधिकारी निर्णय करता है।

अयं हि पातकी विप्रो न बध्यो मनुरब्रवीत्।
राष्ट्रादस्मातु निर्वास्यो विभवैरक्षतैः सह॥

इससे स्पष्ट ही है कि मनु के कथनानुसार अपराधी चारूदत्त अवध्य सिद्व होता है और धनसम्पति के साथ उसे देश से निकल जाने का दण्ड दिया जाता है। यह निर्णय ठीक मनुस्मृति के अनुरूप है।

न जातु ब्राह्मणं हन्यात् सर्वपापेष्वपि स्थितम्।
राष्ट्रादेनं बहिः कुर्यात् समग्रधनमक्षतम्॥
न ब्राहमणवधाद् भूयानधर्मो विद्यते भुवि।
तस्मादस्य वधं राजा मनसपि न चिन्तयेत्॥

अतः मृच्छकटिक की रचना मनुस्मृति के अनन्तर हुई होगी। मनुस्मृति का रचना काल विक्रम से पूर्व द्वितीय शतक माना जाता है जिसके पीछे मृच्छकटिक को मानना होगा। भास कवि के 'दरिद्र चारूदत' तथा शूद्रक के 'मृच्छकटिक' में अत्यन्त समानता पाई जाती है। मृच्छकटिक का कथानक बहुत विस्तीर्ण है, दरिद्रचारूदत्त का संक्षिप्त। मृच्छकटिक भास के रूपक के अनुकरण पर रचा गया है , अतः शूद्रक का समय भास के पीछे चाहिए। मृच्छकटिक के नवम अंक में कवि ने बृहस्पति को अंगारक (अर्थात् मंगल) का विरोधी बतलाया है। परन्तु वराहमिहिर ने इन दोनों ग्रहों को मित्र माना है। , प्रसिद्व1 अङारकविरूद्वस्य प्रक्षीणस्य बृहस्पतेः
ग्रहोऽयमपरः पार्श्वे धूमकेतुरिवोत्यितः॥ (मृच्छ0 9 ।33)

ज्योतिषी वराहमिहिर का सिद्वान्त ही आजकल फलित ज्योतिष में सर्वमान्य है। आज कल भी मंगल तथा बृहस्पति मित्र ही माने जाते है , परन्तु वराहमिहिर के पूर्ववर्ती कोई-कोई आचार्य इन्हें शत्रु मानते थे, जिसका उल्लेख बृहज्जातक में ही पाया जाता है। वराहमिहिर का परवर्तीग्रन्थकार बृहस्पति को मंगल का शुत्र कभी नहीं माना जा सकता। अतः शुद्रक वराहमिहिर से पूर्व के ठहरते है। वराहिमिहिर की मृत्यु 589 ईस्वी में हुई थी , इसीलिए शूद्रक का समय छठी सदी के पहिले होना चाहिये।

इन सब प्रमाणों का सार है कि शूद्रक दण्डी (सप्तम शतक) और वराहमिहिर (षष्ट शतक) के पूर्ववर्ती थे, अर्थात् मृच्छकटिक की रचना पंचम शतक में मानना उचित है। और यह अविर्भावकाल नाटक में वर्णित सामाजिक दशा से पुष्ट होता है।

मृच्छकटिक की नाटकीय विशेषता—

मृच्छकटिक में 10 अंक है। पहले अंक का नाम 'अलंकारन्यास' है। इसमें उज्जयिनी की प्रसिद्व वारवनिता वसन्तसेना को राजा का श्यालक शकार वंश में करना चाहता है। रास्ते में अँधेरी रात में विट तथा चेट के साथ शकार उसका पीछा कर रहा है। मूर्ख शकार के कथन से वसन्तसेना को पता चलता है कि वह आर्य चारूदत्त के मकान के पास ही है। अतः उसके घर में घुसती है। विदूषक मैत्रेय शकार को डॉट-डपट कर घर में घुसने से रोकता है। चारूदत्त से वार्तालाप करने के बाद शकार से बचने के लिये वसन्तसेना अपना गहना उसके घर पर रख आती

है। दूसरे अंक का नाम 'द्युतक-संवाहक' है। दूसरे दिन सवेरे दो घटनाएं घटती हैं। संवाहक पहले चारूदत की सेवा में था , पीछे पक्का जुआरी बन जाता है। वह जुएं में बहुत सा धन हार जाता है जिससे वह चारूदत के घर भाग आता है। चारूदत उसे ऋण मुक्त कर देते है। संवाहक बौद्व भिक्षु बन जाता है उसी दिन प्रातः काल वसन्तसेना का हाथी रास्ते में किसी भिक्षुक को कुचलना ही चाहता है कि उसका सेवक कर्णपूरक उसे बचाता है। चारूदत अपना बहु मूल्य दुशाला को उपहार में दे देते हैं। तीसरे अंक का नाम संधिच्छेद है। वसन्तसेना की दासी मदनिका शर्विलक सेवा से मुक्त करना चाहता है। वह ब्राह्मण है, परन्तु प्रेमपाश में बंधकर आर्य चारूदत्त के घर में सेंध मारता है। और वसन्तसेना का गहना चुरा लेता है। चतुर्थ अंक का नाम 'मदनिका-शर्विलक ' है जिसके शर्विलक अलंकार लेकर वसन्तसेना के घर जाता है और मदनिका को सेवा-मुक्त कर देता है। चारूदत की पतिव्रता पत्नी धूता अपनी बहुमूल्य रत्नावली उसके बदले में देती है। मैत्रेय रत्नावली लेकर वसन्तसेना के महल में जाता है और जुए में हार जाने का बहाना कर रत्नावली देता है। वसन्तसेना सायंकाल चारूदत्त के घर आने के लिए वादा करती है। पाँचवें अंक का नाम 'दुर्दिन' है। इसमें वर्षा का विस्तृत वर्णन है सुहावने वर्षाकाल में आर्य चारूदत उत्सुकता से वसन्तसेना की राह जोहते बैठे हैं। चेट वसन्तसेना के आगमन की सूचना देता है।

1. जीवो जीवबुधौ सितेन्दुतनयो व्यर्का विभौमाः कमात्
वीन्द्वर्का विकुजेन्दश्च सुहदः केषाच्चिदेवं मतम्।। (2।91)

चारूदत्त से प्रेम सम्मिलन होता है। उस रात वह वहीं बिताती है । षष्ठ अंक का नाम 'प्रवहणविपर्यय' है। तथा सप्तम का 'अर्थकापहरण'। प्रातः काल चारूदत पुष्पकरण्डक नामक बगीचे में गये है। उनसे भेंट करने के लिए वसन्तसेना जाना चाहती है, परन्तु भ्रम से शकार की गाड़ी में, जो समीप में खड़ी थी , जा बैठती है। इधर राजा पालक किसी सिद्व की भविष्यवाणी पर विश्वास कर गोपाल के पुत्र आर्यक को कैदखाने में बन्द कर देता है आर्यक कारागृह से भागकर चारूदत्त की गाड़ी में चढ़ जाता है। श्रृंखला की आवाज को भूषण की झनझनाहट समझ गाड़ी हाँक देता है। रास्ते में दो सिपाही गाड़ी देखने जाते हैं जिनमें से एक आर्यक को देख उसकी रक्षा करने का वचन देता है और अपने साथी से किसी बहाने झगड़ा कर बैठता है आर्यक बगीचे में चारूदत से भेंट करता है, 'अष्टम अंक' का नाम 'वसन्तसेना' - मोचन' है। जब वसन्तसेना पुष्पकरण्डक उद्यान में पहुँचती है , तब प्राणप्रिय चारूदत्त के स्थान पर दुष्ट शकार - संस्थानक मिलता है , जो उसकी प्रार्थना न स्वीकार करने से वसन्तसेना का गला घोंट डालता है संवाहक भिक्षु बन गया है। वसन्तसेना को समीप के विहार में ले जाते है और योग्य उपचार से उस पुनरूज्जीवित करता है। नवम अंक में जिनका नाम 'व्यहार ' है, शकार चारूदत्त पर वसन्तसेना के मारने का अभियोग लगाता है कचहरी में जज के सामने मुकदमा पेश होता है। उसी समय चारूदत का बालक पुत्र रोहसेन-मृच्छकटिक (मिट्टीकी गाड़ी) लेकर आता है, जिसमें वसन्तसेना के दिये सोने के गहने है। इसी आधार पर चारूदत को फाँसी का हुक्म होता है। 'संहार 'नामक दशम अंक में उसी समय राज्य-परिवर्तन होता है। पालक को मार चारूदत का परम मित्र आर्यक राजा बन जाता है। वह चारूदत को क्षमा ही नहीं कर देता, प्रत्युत मिथ्याभियोग के कारण शकार को फाँसी का हुक्म देता है., परन्तु चारूदत के कहने से क्षमा कर देता है। वसन्तसेना के साथ चारूदत का व्याह सम्पन्न होता है। इसी अन्तिम प्रेम-मिलन के साथ यह रूपक समाप्त होता है। दस प्रकरण के कथावस्तु के दो अंश है -पहिला भाग चारूदत् तथा वसन्तसेना का प्रेम दूसरा भाग आर्यक की राज्यप्राप्ति। शूद्रक ने पहले अंश को भास के 'दरिद्र-चारूदत्त नाटक से अविकल लिया है। शब्दतः और अर्थतः दोनो प्रकार की अपनी सम्पति प्राचीन ऐतिहासिक घटना के आधार पर लिखा गया मानते है। दोनों अंशों को शूद्रक ने बड़ी सुन्दरता के साथ सम्बद्व किया हैं।

विशाखदत्त का जीवन परिचय एवं कृतित्व—

विशाखदत्त राजनीति-विषयक नाटकों की रचना में प्रवीण प्रतीत होते है। इनकी विश्रुत रचना तो 'मुद्राराक्षस' ही है, जो चन्द्रगुप्त मौर्य के जीवन से सम्बद्ध है और जो अमात्य चाणक्य की बुद्धिमत्ता तथा कुटनीतिमत्ता का एक विमल निदर्शन है।

विशाखदत्त का समय निर्धारण—

विशाखदत्त के कालनिर्णय में बहिःसाक्ष्य बहुत कम सहायक हैं। इनके आधार पर यही कहा जा सकता है कि सर्वप्रथम मुद्राराक्षस की चर्चा धनिक कृत दशरूपावलोक (1/68) में है-तत्र बृहत्कथामूलं मुद्राराक्षसम्। धनिक का समय 1000ई०है। एक अन्य स्थल (2/55) पर भी इस ग्रन्थ में धनिक ने इस नाटक में प्रयुक्त मन्त्रशक्ति और अर्थशक्ति के उदाहरण दिये हैं। भोज ने सरस्वतीकण्ठाभरण (5/65) में मुद्रारक्षस का नाम लिये बिना इसके दो पद्य (1/22 तथा 3/21) उद्धृत किये हैं। यह 11 वीं शताब्दी ई० का ग्रन्थ है। इनकी अपेक्षा इसीलिए अन्तः साक्ष्य अधिक चर्चित और व्यवस्थित है। अन्त:साक्ष्य की दृष्टि से चार महत्त्वपूर्ण विचारणीय विषय हैं-(1) भरतवाक्य में 'चन्द्रगुप्त' आदि

पाठ, (2) भरतवाक्य में म्लेच्छों के आक्रमणकी चर्चा, (3) प्रस्तावना में चर्चित चन्द्रग्रहण तथा (4) जैन-बौद्ध धर्मों के प्रति विचार। इनका क्रमश: विवेचन किया जाता है। भरतवाक्य में चन्द्रगुप्तादि पाठ-मुद्राराक्षस के भरत-वाक्य (7/18) में उत्तरार्ध इस प्रकार है-

म्लेच्छैरुद्वीज्यमाना भुजयुगमधुना संश्रिता राजमूर्तेः
स श्रीमद्बन्धुभृत्यश्चिरमवतु महीं पार्थिवश्चन्दगुप्तः।

इसमें राजा चन्द्रगुप्त के द्वारा पृथ्वी की चिर-रक्षा का आशीर्वाद है। भरतवाक्य कथानक का अंक नहीं होता, अपितु उसमें नाट्यकार अपने समकालिक किसी राजा के प्रशंसा करता है। यद्यपि इस प्रसंग में 'पार्थिवोऽवन्तिवमां' 'पार्थिवो दन्तिवर्मा' 'पार्थिवो रन्तिवर्मा' इत्यादि अनेक पाठ मिलते हैं, तथापि बहुसंख्यक विद्वानों ने 'चन्द्रगुप्त' वाले पाठ को मूल एवं अन्य पाठों को परिवर्तित (ऊह-रूप) कहा है। यह चन्द्रगुप्त प्रसिद्ध गुप्तवंशीय नरेश चन्द्रगुप्त द्वितीय था जिसका शासन-काल 375ई० से 413 ई० तक माना जाता है। विशाखदत्त का अन्य नाटक 'देवीचन्द्रगुप्त' भी इसी राजा के सिंहासनारोहण से सम्बद्ध है। गुप्तवंशीय राजा विष्णु के उपासक थे। उक्त भरतवाक्य में भी विष्णु की वराहमूर्ति की चर्चा है। गुप्तकाल के ही उदयगिरि-अभिलेख वाली गुफा में चित्रित वराह की मूर्ति मिली है जिसमें असुरों से पृथ्वी की रक्षा वराह कर रहे हैं, भरतवाक्य का सीधा सम्बन्ध इस गुहाचित्र से है। मुद्राराक्षस की विषय-वस्तु और अभिनेयता ने इसका अभिनय बार-बार कराया था; संकट के बाद राज्य पाने वाले राजाओं ने इसके मंचन को शुभ मानकर इसका अभिनय कराया और उनके प्रशंसकों ने राजा का नाम भरत-वाक्य में बदलना आरम्भ कर दिया। इसीलिए अवन्तिवर्मा आदि अनपेक्षित नामों वाले पाठ उत्पन्न हुए। तेलंग, ध्रुव तथा पं० बलदेव उपाध्याय ने अवन्तिवर्मा (मौखरिवंश के राजा, षष्ठ शताब्दी ई० का उत्तरार्ध) वाले पाठ को प्रामाणिक मानकर विशाखदत्त का समय 550-600ई० माना है। किन्तु वस्तुस्थिति इसके प्रतिकूल है। लेखक ने चुन्द्रगुप्त मौर्य और चन्द्रगुप्त द्वितीय की राज्य-प्राप्ति में साम्य देखकर इस नाटक की रचना की प्रेरणा पायी थी; उसका प्रबल समर्थन उन्होंने 'देवीचन्द्रगुप्त' लिखकर किया।

भारतवर्षके जिस रूप की प्रशंसा मुद्राराक्षस (3/19 आ शैलेन्द्रात्.....आतीरात् दक्षिणस्यार्णवस्था) में की है, वह अवन्तिवर्मा के राज्य में सम्भव नहीं था; अपितु चन्द्रगुप्त द्वितीय का ही राज्य था। गुप्तकाल में ही पाटलिपुत्र में समारोह-पूर्वक कौमुदी-महोत्सव मनाया जाता था जिसकी मुद्राराक्षस में (3/19 के बाद), भले ही कृतककलह के निमित्त उसके निषेध के लिए, चर्चा है। चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन-काल में, फाहियान के अनुसार, बौद्ध धर्म की स्थिति अच्छी थी। मुद्राराक्षस में वर्णित व्यवस्था से उसकी संगति बैठ जाती है। इस प्रकार विशाखदत्त को 400-450 ई० में मानने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती।

मुद्राराक्षस का नाट्यशास्त्रीय परिचय—

मुद्राराक्षस अपने ढंग का अनुपम नाटक है जिसमें लेखक ने परम्परागत नाट्य-रूढ़ियों का परित्याग करके नवीन मार्ग का प्रवर्तन किया है। लेखक नाट्यशास्त्र का महापण्डित होकर भी अपने मौलिक गुण के कारण एक शक्तिशाली नवीन नाट्य-पद्धति पर चलता है जिसका अनुकरण तक लोग नहीं कर सके। कौटिल्य के अर्थशास्त्र का व्यावहारिक रूप देकर विशाखदत्त ने इस नाटक की सर्जना की है। इसमें नाट्य-सुलभ प्रेम-कथा का परित्याग कर कूटनीति-विषयक वस्तु-विन्यास किया गया है, राजा को नायक न बनाकर निरीह ब्राह्मण चाणक्य को नायक बनाया गया है, नायिका को स्थान न देकर प्रतीकात्मक नायिका चाणक्य की बुद्धि का प्रयोग है, वीररस के अभिनव रूप कूटनीति-वीर का निवेश करके विदूषकादि पात्रों के बहिष्कार के अतिरिक्त हास्य या श्रृंगार रस का स्वल्प-प्रयोग भी नहीं है। यथार्थ के कठोर धरातल पर कथानक लुढ़कता है, रक्तपात के बिना ही केवल बुद्धि का खेल दिखाकर नायक की विजय वर्णित है - ऐसे अभिनव वीररस-प्रधान नाटक के रूप में मुद्राराक्षस का संस्कृत नाट्य-जगत में अपूर्व स्थान है।

विशाखादत्त ने इस नाटक को घटना-प्रधान बनाया है, चरित्रमूलक नहीं। सभी पात्र अपनी-अपनी विशिष्टताओं के साथ घटनाओं को आगे बढ़ाने में सन्नद्ध हैं। सभी घटनाओं को मुख्य फल के लाभ की दिशा में त्वरित गति से प्रेरित किया गया है। एक भी अप्रासंगिक या अनावश्यक कथांश या वाक्य तक इसके विकास-क्रम में प्रयुक्त नहीं है। इस प्रकार पूरा नाटक कसा हुआ है। घटनाओं के पर्त जैसे-जैसे खुलते हैं, कुतूहल और उत्सुकता का शमन होता जाता है किन्तु उत्सुकता के भी नये आयाम बनते हैं जिनका निवारण क्रमश: होता रहता है। इसीलिए कार्यान्विति की दृष्टि से इसके घटना-चक्र की महत्ता है।

राजनीतिक-विषयक नाटक में रहस्य-रोमांच का समावेश करते हुए लेखक ने अपनी अद्भूत नाट्यकाल के कारण इसे श्रृंगार -प्रधान नाटकों के समान रोचक बनाया है। नाटक की पृष्ठभूमि की पूर्ति के लिए प्रथम अंक में चाणक्य का लम्बा स्वागत भाषण (1/11 के पूर्व से 1/16 तक) एवं द्वितीय अंक में खण्ड-खण्ड करके विराधगुप्त (राक्षस के गुप्तचर का प्रतिवेदन) (2/13 के पूर्व से 2/16 के पूर्व तक) प्रस्तुत किये गये हैं। चाणक्य के भाशण में कोई संवाद नहीं, पूरा भाषण एकांश है जबकि विराधगुप्त के प्रतिवेदन पर राक्षस की प्रतिक्रियाएँ दिखायी गयी हैं। कूटनीति में प्रवीण दोनों मन्त्रियों (चाणक्य तथा राक्षस) की नीतियों के घात-प्रतिघात की घटनाएँ नाटक को सार्थक तथा गतिशील बनाती हैं। इनके स्वागत-भाषणों से सामाजिक को इनका वास्तविक कार्य समझने में सुविधा होती है।

विशाखदत्त ने राक्षस के मुख से नाटक-कर्ता और राजनीति में खेलनेवाले की समानता प्रकट करायी है- कर्ता व नाटकानामिममनुभवति क्लेशमस्मद्विधो वा (4/3 अन्तिम चरण)। दोनों को समान रूप से क्लेशका अनुभव करना पड़ता है; दोनों ही संक्षिप्त कार्योपक्षेप (आरम्भ) करके उस कार्य का विस्तार चाहते हैं, गर्भित बीजों के अत्यन्त गहन और गूढ़ फल को उद्भिन्न करते हैं, बुद्धि का प्रयोग करके विमर्श (कर्तव्याकर्तव्य का विश्लेषण, विमर्श सन्धि का निर्माण) करते हैं एवं फैले हुए कार्य-समूह का उपसंहार भी कर लेते हैं। इस प्रकार नाट्य-रचना और राजनीतिक दाव-पेंच समान ही है, जब विधि-सम्मत (शास्त्रीय) नाट्य-रचना कठिन है, तब स्वतन्त्र एवं प्रगतिवादी रचना की कठिनाई का क्या कहना? लेखक ने इतिवृत्त-निर्माण में तथा उसके विकास में पूरी स्वाधीनता दिखायी है।

मुद्राराक्षस में कुल 29 पात्र है, एकमात्र स्त्रीपात्र चन्द्रनदास की पत्नी है जो सप्तम अंक में चन्दनदास के मृत्युदण्ड-दृश्य में करूण-रस का उद्भव करती है। शेष सभी पात्र अपनी-अपनी विशिष्टता रखते हुए भी चाणक्य के हाथों की कठपुतली हैं। इन दोनों पात्रों के संघर्ष का ही प्रतिफल पूरे नाटक में हुआ है। चाणक्य प्रखर कूटनीतिज्ञ, शाठ्यनीति का प्रयोक्ता, निरन्तर सावधान, कर्मठ पुरुषार्थवादी, राजनीति के खेलों (दाँव-पेंच, जोड़-तोड़) में परम प्रवीण, बहुत बड़ी परीक्षा के बाद किसी पर विश्वास करने वाला, दम्भ किन्तु अत्यन्त साधारण स्तर का जीवन जीने वाला अमात्य है; उसमें राक्षस के गुणों को पहचानने की क्षमता है इसीलिए स्वयं चन्द्रगुप्त का अमात्य न

बनकर राक्षस को उस पद पर स्थापित करने में कूटनीति का प्रयोग करता है। वह प्रधान पात्र या नायक है, उसे ही अपनी नीतियों के प्रयोग का फल मिलता है। दूसरी ओर राक्षस कूटनीति होते हुए भी ऋजुनीति का प्रयोक्त है। वह भाग्यवादी, कपटी मित्रों पर भी विश्वास करनेवाला, अपने घर के भेदियों को न समझने वाला, नीति का प्रयोग करके निश्चिन्त हो जाने वाला, उदार मित्र के लिए त्याग करने वाला एवं चाणक्य के अनुसार प्रज्ञा-विक्रम-भक्ति का समुदित रूप है।

ये दोनों अमात्य क्रमशः चन्द्रगुप्त ओर मलयकेतु को आधार बनाकर नीति-कौशल दिखाते हैं। ये दोनों पात्र परस्पर विरोधी चरित्र के हैं। चन्द्रगुप्त योग्य राजा है किन्तु चाणक्य के हाथों में समर्पित है। मलयकेतु स्वतन्त्र बुद्धि वाला, पुरुषार्थी किन्तु मूर्ख और उद्दण्ड है। इसीलिए भावुक राक्षस उससे दूर चला जाता है। बुद्धिवादी चाणक्य के हाथों में खेलने वाले चन्द्रगुप्त का राज्य शक्तित्रय-सम्पन्न होकर स्थिर बन जाता है। शकटदास और चन्दनदास राक्षस के विश्वसनीय मित्र हैं, मित्र के लिए सर्वस्व त्याग करते हैं।

इस नाटक में कूटनीति-वीररस है जो अन्य किसी संस्कृत नाटक में नहीं है, शास्त्रों में विवेचित तक नहीं हुआ है। 'मुद्राराक्षस की वीरसाभिव्यक्ति में समसामयिक राजनीतिक जीवन की उन्नतिशीलता के लिए उत्सुक एक कर्मठ राजनीतिक नेतृत्व की अदम्य आत्मोसर्ग-भावना और उत्साह की प्रबल प्रेरणा का हाथ है और यही वह रहस्य है कि संस्कृत नाटककार किसी अन्य मुद्राराक्षस की रचना न कर सके। इस नाटक में राष्ट्रकी सुरक्षा के लिए कर्तव्य-भावना का ऐसा प्राबल्य है कि उसके समक्ष रति (प्रेम) आदि के भाव शून्यवत् हैं। इसीलिए इसमें सभी पात्र अपूर्व उत्साह से भरे हैं, अपने-अपने कार्यों के प्रति तन्मयता से समर्पित हैं। जय-पराजय की भावना से ऊपर यह कर्तव्यपालन का नाटक है जो अपने प्रयोजन में पूर्णतः सफल है।

नायक का प्रश्न-मुद्राराक्षस के नायक को लेकर प्रायः तीन मत प्रचलित हैं जिनमें राक्षस, चन्द्रगुप्त और चाणक्य को नायक कहा गया है। सामान्यतः नायक के विषय में परम्परा से यही कहा गया है-

प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरदात्तः प्रतापवान्।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो व गुणवान्नायको मतः।। (साहित्यदर्पण)

इस सिद्धान्त के अनुसार राजकुल में उत्पन्न व्यक्ति ही नायक की कोटि में आता है। आधुनिक लोग फलप्राप्ति करने वाले को नायक बताते हैं तो तर्क की दृष्टि से नाटक में प्रधान भूमिका धारण करने वाला नायक होता है। इसीलिए तीन पात्रों का नायकत्व विभिन्न मतों का आधार है।

जहाँ तक राक्षस के नायकत्व का प्रश्न है वह उसके मन्त्रिपद प्राप्त करने अर्थात् फललाभ की घटना पर आश्रित है, जो राक्षस भूतपूर्व राजा (धननन्द) का अमात्य था, वह इस नाटक के अन्त में चन्द्रगुप्त का अमात्य बन जाता है-इसलिए मुख्य फल का अधिकारी होने से नायक हुआ। किन्तु इस पर आक्षेप होता है कि जिस फल को राक्षस प्राप्त करता है, उसके लिए न तो उसे स्पृहा है ओर न वह इसके लिए चेष्टाशील ही है। वस्तुतः चाणक्य की महानुभावता ओर गुणग्राहकता का यह परिणाम है कि राक्षस पर यह फल (मन्त्रिपद-लाभ) आरोपित होता है। अतः फललाभ का तर्क उस पर असंगत है। फललाभ के प्रति ईच्छा या चेष्टा आवश्यक है। राक्षस जन्म से ब्राह्मण है, क्षत्रिय नहीं अर्थात् राजवंश का नहीं।

चन्द्रगुप्त का नायकतव कुछ अधिक महत्त्व रखता है क्योंकि वह नन्द का पुत्र है, राजवंश का है। उसमें राज्य की दो शक्तियाँ हैं-प्रभुशक्ति और उत्साह-शक्ति। उसे तीसरी शक्ति (मन्त्रशक्ति)की प्राप्ति चाणक्य के बुद्धिबल से नाटक के अन्त में हो जाती है। राजकुल से सम्बन्ध एवं फललाभ की दृष्टि से उसे नायक कहा गया है। किन्तु यह मत भी दोषपूर्ण है। चन्द्रगुप्त राजा अवश्य है किन्तु इस नाटक में उसे राजकुलोत्पन्न नहीं माना गया है। चाणक्य तो उसे सदा 'वृशल' (शूद्र) कहकर सम्बोधित करता है। वह कुलीन नहीं, अपितु कुलहीन है। राक्षस राजलक्ष्मी को कोसते हुए कहा है-

पृथिव्यां किं दग्धाः प्रथितकुलजा भूमिपतयः?

पति पापे, मौर्य यदसि कुलहीनं वृतवती ? (मुद्रा०2/7 पृ०)

अतः परम्परावादियों का यह मत खण्डित हो जाता है कि वह कुलीन था। दूसरी बात यह है कि उसका चरित्र इस नाटक में विकसित नहीं हुआ है। वह एक गौण ही है केवल तृतीय और सप्तम अंकों में वह मंच पर आता है। ऐसी स्थिति में चाणक्य को ही नायक कहा जा सकता है, यही नाट्यकार की लालसा है। उसने इस राजनीतिक नाटक की रचना में रूढ़िगस्त एवं जड़ीभूत नाट्य-परम्परा को नहीं माना, स्वयं नाट्यशास्त्र का वह पण्डित जो था, 'पथि यदि कुपथे वा वर्तयामः स पन्थाः' का निर्माता था। लेखक नाटक के आरम्भ से ही चाणक्य का पक्षधर है, सभी पात्रों के ऊपर वह उसे दिखाता है। मुद्राराक्षस से इतिवृत्त की विकास ही चाणक्य के पक्ष में और विपक्ष में होने वाले घटना-क्रमों के प्रवर्तन के रूप में होता हैः क्रमशः विपक्ष सिकुड़ता जाता है और पक्ष उस पर भारी पड़ने लगता । 'प्रतिहत-परपक्षा आर्यचाणक्यानीतिः' (6/1) कहकर नाटककार ने भी इसका समर्थन किया है। विशाखदत्त की नाट्यशाला का अनुपम रत्न चाणक्य ही है जो सम्पूर्ण कथानक को और तद्नुसार पात्रों को भी अपनी मुट्ठी में रखता है। लेखक ने नायिका तो नहीं रखीं, किन्तु कूटनीति-प्रधान नाटक में प्रीतकात्मक बुद्धि को ही चाणक्य की अनवरत सहचरी के रूप में प्रस्तुत किया है। चाणक्य कहता है कि मेरे पास से सभी लोग चले जायें किन्तु नन्दों के उन्मूलन में शक्ति का प्रदर्शन कर चुकी केवल मेरी बुद्धि ही पास रहे तो सब देख लूँगा-

ये यातः किमपि प्रधार्य हृदये पूर्वं गता एव ते
ये तिष्ठिन्ति भवन्तु तेऽपि भवन्तु तेऽपि गमने कामं प्रकामोद्यमाः।
एका केवलमर्थसाधनविधौ सेनाशतेभ्योऽधिका
नन्दोन्मूलनदृष्टवीर्यमहिमा बुद्धिस्तु मा गान्मम।।

विशाखदत्त ने नाट्य के अनेक उपादानों में स्वाधीनता दिखायी है तो नायक की रूढ़ि के भश् में भी उनकी स्वाधीनता आश्चर्यजनक नहीं है। फलप्राप्ति की बात उठायें तो राक्षस के अमात्य बनने से न स्वयं राक्षस को वैसी प्रसन्नता होती है और न चन्द्रगुप्त की ही, जैसी प्रसन्नता अपनी प्रति (मौर्यवंश का सर्वतोभावेन प्रतिष्ठा न) पूर्ण करने से चाणक्य को होती है। चाणक्य ही इस कार्य के लिए उत्सुक था और नाटक के आरम्भ से ही तद्विशयक प्रयत्नों में लगा था। आरम्भ यत्न, प्राप्त्याशा, नियताप्ति और फलागम-इन पाँच अवस्थाओं की दृष्टि से विचार करें तो सर्वत्र चाणक्य ही मिलेगा। राक्षस के गुणों के पारखी भी वही है, जो राक्षस चन्द्रगुप्त की हत्या और चाणक्य के निर्वासन के प्रति कृतसंकल्प था, उसका हृदय-परिवर्तन करके चन्द्रगुप्त की शरण में आने को विवश करना चाणक्य की बुद्धि के कौशल का अद्भुत चमत्कार था। स्वयं राजसत्ता का सुख छोड़कर राष्ट्र को सामर्थ्यवान् बनाने की दुर्लभ भावना से वह आद्यन्त भरा हुआ है। निःस्पृह ब्राह्मण को नायक बनाकर विशाखदत्त ने नायक की इस निरुक्ति को चरितार्थ किया है- नयति घटनाचक्रं फलप्राप्तिपर्यन्त इति नायकः। अपनी सहचरी बुद्धि की क्षमता पर उसे पूर्ण विश्वास है कि राक्षस का निग्रह वह आरण्यक गज के समान चन्द्रगुप्त के कार्य के लिए कर लेगा-

बुद्ध्या निगृह्य वृशलस्य कृते क्रियाया-
मारण्यकं गजमिव प्रगुणीकरोमि। (1/27उ०)

इस प्रकार मुद्राराक्षस का नायक चाणक्य ही है जो अपने विचित्र रहस्यमय व्यक्तित्व से पूरे नाटक के घटनाक्रम पर छाया रहता है।

भवभूति का जीवन परिचय एवं उनकी कृतियाँ—

भारतीय मत (सिद्धान्त मत) वेदो में ही नाटक के बीच उपलब्ध होते है। सभी नाटकीय तत्वों को वेद में देखा जा सकता है। जैसे-ऋग्वेद के संवाद सूक्तों में यम यमी संवाद, उर्वशी पुरूरवा संवाद, सरमा पाणी संवाद, सामवेद में संगीततत्व की सत्ता, यजुर्वेद में धार्मिक कृत्यों के अवसर पर नृत्य विधान आदि । इससे नाटक तत्वों की वेदमूलकता स्पष्टतया सिद्ध होती है। रामायण और महाभारत रंगशाला नट, कुशीलव आदि शब्दो के प्रयोग से

भारतीय नाटयकला की प्राचीनता द्योतित होती है। पाणिनी के पाराषर्यशिलाभ्यां भिक्षु नट सुत्रयोः तथा कर्मन्द कुशाश्वादिनिः सूत्र से सिद्ध होता है कि पाणिनी से पहले ही शिलाली और कुशाश्व दो आचार्य हो चुके थे, जिन्होने नटसूत्र (नाटयशास्त्र) का प्रवचन किया था अर्थात् भारतीय नाटयकला पूर्ण विकसित हो चुकी थी। पतन्जलि ने महाभारत में 'कंसवध' और 'बलिबन्ध' नामक दो नाटको का स्पष्ट उल्लेख किया है। हरिवंश में भी रामायण की कथा के अभिनय का उल्लेख देखा जाता है। बुद्धदेव ने अपने अनुशासन में नाटयाभिनय न करने का उपदेश दिया है। मगधराज दिम्बराज ने

नागराज का सम्मान करने के लिए नाटय का अभिनय कराया था, ऐसा ऐतिहासिक दृष्टान्तों से प्रतीत होता है। 'नाटयशास्त्र' में भरतमुनि ने नाटक के आविभार्व और उसके उद्देश्य के विषय में एक अत्यन्त मनोरंजक कथा का उल्लेख किया है। वह इस प्रकार है- वैवस्वत् मनु के दूसरे युग (त्रेता) में लोग बहुत दुःखी हुए। इस पर इन्द्र तथा अन्य देवताओं ने जाकर ब्रह्मा से प्रार्थना की कि आप मनोविनोद का कोई ऐसा साधन उत्पन्न कीजिए जिससे सबका मनोरंजन हो सके। इस पर ब्रह्माजी ने ऋग्वेद से संवाद, सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से नाट्य (अभिनय) अथा अथर्ववेद से रस लेकर नाटकरूप 'पंचमवेद' की रचना की।

नाटक का प्रयोजन—

नाटक का प्रयोजन बहुत ही महत्वपूर्ण है। आचार्य भरत ने नाटक को 'सार्ववर्णिक वेद' कहा है। वेद में स्त्री और शूद्रों का अधिकार नही है। किन्तु नाटक में सबका अधिकार है। कवि कालिदास ने विभिन्न रूचि वाले मनुष्यों के लिए नाटक को मनोरंजन का सर्वश्रेष्ठ साधन कहा है। आचार्य भरत ने नाटक का उद्देश्य बतलाते हुए कहा है- नाटक उत्तम, मध्यम और अधम पात्रों के क्रम का प्रदर्शन कर अत्यन्त प्रभावपूर्ण हितोपदेश करता है। नाटक मनुष्यों में धैर्य, क्रीडा और सुख आदि को उत्पन्न करता है। दुःखार्त, श्रमार्त, शोकार्त, तपस्वी आदि सभी जनो के लिए नाटक उचित अवसर पर विश्रामजनक (मनोरंजन का हेतु) होता है। (नाटयशास्त्र,) अग्नि पुराण का वचन है- नाटय (नाटक) एक ऐसी वस्तु है जिससे धर्म, अर्थ और काम तीनो पुरूषार्थ की प्राप्ति होती है। **त्रिवर्ग साधनं नाटयम.....'। (अग्नि पुराण)** इस विवेचन से सिद्ध होता है कि नाटक जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

साहित्य में नाटक का स्थान—

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि साहित्य में नाटक का स्थान अत्यन्त मनोरंजक एवं नितान्त जीवनोपयोगी है। अतः यह उक्ति अक्षरश: सत्य है-'काव्येषु नाटक रम्यम्' तथा 'नाटकान्तं कवित्वम्'। अर्थात् काव्यों में नाटक मनोहर होता है और नाटक काव्य के उत्कर्ष की चरम सीमा है। यों तो कुशल साहित्कार किसी भी क्षेत्र में अपने असाधारण कला का सफलता के साथ प्रदर्शन कर सकता है। इसके विपरीत नाटक के दृश्य प्रधान होने के कारण वह अतिशय रमणीय तो होता ही है, उसका प्रभाव भी चिरस्थायी होता है। इस प्रकार कवि अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल होता है। महाकवि कालिदास की विश्वविश्रुतता में उनके अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक का ही अपेक्षाकृत अधिक हाथ है तथा महाकवि भवभूति को उनके अपने 'उत्तररामचरित' नाटक ने ही विश्व में अमरता प्रदान की है। इस प्रकार साहित्य में नाटक का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

2.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से आपने संस्कृत गद्य काव्य की परम्परा, गद्यकाव्य का उद्भव एवं उत्कर्ष को विस्तार पूर्वक पढ़ा। आपने जाना कि संस्कृत वाङ्मय का क्षेत्र बहुत विशाल है। उह मुख्यतया गद्य व पद्य दो भागों में विभक्त है। पद्य काव्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है, किन्तु गद्य साहित्य में भी अनेकानेक गरिमामय कृतियों का सृजन हुआ है। अधिकांश शास्त्र ग्रन्थ, दर्शन ग्रन्थ, टीकाएँ आदि भी गद्य में ही रची गई हैं। प्राचीन संस्कृत गद्य साहित्य में कथा, आख्यायिका, परिकथा, मणिकुल्या जैसे भेद दृष्टिगोचर होते हैं, मुख्यद रूप से महाकवि सुबन्धु, बाणभट्ट, दण्डी, धनपाल, प्रभाचन्द्र, मेरुतुगाचार्य, राजशेखरसूरी, बामनभट्टबाण, विश्वेश्वरपाण्डेय आदि प्रमुख

संस्कृत गद्यकाव्यकारों ने गद्य साहित्य के भण्डागार में अपनी लेखनी से श्री वृद्धि कर गद्य लेखन को समृद्ध किया। तथा संस्कृत नाट्य साहित्य की परम्परा एवं संस्कृत नाट्य साहित्य के प्रमुख नाट्ककारों का अध्ययन कर आप इस इकाई के माध्यम से अन्य वैशिष्ट्य को बता सकेंगे।

2.6 शब्दावली

आरम्भिक	-	शुरूवाद के
उत्कृष्टतम	-	सबसे अच्छा
मनोभिलास	-	मन के अनुकूल इच्छा
परिष्कार	-	शुद्ध
उच्छवास	-	आख्यायिका के अंक विभाजन का नाम
पार्थक्य	-	अलग
चूर्णक	-	गद्य काव्यक का भेद
कविकल्पित	-	कवि द्वारा रचित

2.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न (1)

(1). बहुविकल्पीय प्रश्न :-

1. (क) 2. (ख) 3. (घ) 4. (ग) 5. (ग) 6. (क) 7. (घ) 8. (ग) 9. (घ) 10. (क)

अभ्यास प्रश्न (2)

(1). बहुविकल्पीय प्रश्न :-

1. (क) 2. (क) 3. (ख) 4. (क) 5. (ग) 6. (क) 7. (ग) 8. (क) 9. (क) 10. (क)

2.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.संस्कृत साहित्य का इतिहास – बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक- शारदा निकेतन, कस्तुरवानगर, वाराणसी।

2.संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ0 उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' चौखम्बाभारतीअकादमी, वाराणसी।

3. संस्कृत वाङ्मय का बृहद इतिहास – जगन्नाथ पाठक सप्तम खण्ड, ।

4. अमरकोश – अमर सिंह

5 . संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ वाचस्पति गैरोला – चौखम्भासुरभारती प्रकाशन, वाराणसी

6. आचार्य बलदेव उपाध्याय -संस्कृत साहित्य का इतिहास

7. आचार्य विश्वनाथ -साहित्य दर्पण

2.9 अन्य उपयोगी ग्रंथ

1. वासवदत्ता– सुबन्धु

2. कादम्बरी– बाणभट्ट, चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

3. दशकुमारचरित – आचार्य दण्डी

4. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास – सप्तम खण्ड, जगन्नाथ पाठक

5. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय

6. संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ वाचस्पति गैरोला – चौखम्भा प्रकाशन

7. आचार्य धनंजय - दशरूपक

8. महाकवि भारवि -किरातार्जुनीयम्

2.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गद्यकाव्य का प्रयोजन सिद्ध कीजिए ?
2. प्रमुख संस्कृयत गद्यकाव्यकारों का परिचय दीजिए ?
3. आधुनिक संस्कृयत गद्यकाव्यकारों पर प्रकाश डालिए ?
4. बाणभट्ट के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए ?
5. कादम्बरी एक कथा है सिद्ध कीजिए ?
6. सुबन्धु के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का विवेचन कीजिए ?
7. संस्कृत नाट्य साहित्य पर प्रकाश डालिए ?
8. संस्कृत नाट्य साहित्य के प्रमुख नाट्ककारों का परिचय दीजिए ?

इकाई-3 चाणक्य नीति परिचय एवं प्रतिपाद्य विषय

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 आचार्य चाणक्य का व्यक्तित्व एवं कृतित्व
3.4 चाणक्य नीति का परिचय एवं प्रतिपाद्य
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 अन्य उपयोगी ग्रन्थ
3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

संस्कृत भाषा एवं साहित्य से सम्बन्धित यह तृतीय खण्ड की अन्तिम इकाई है। पूर्व के खण्डों में आपने संस्कृत भाषा के स्वरूप एवं छन्द तथा अलंकारों को समझा। प्रस्तुत इकाई में आप चाणक्य नीति के परिचय एवं उसके प्रतिपाद्य विषय के बारे में अध्ययन करेंगे। संस्कृत साहित्य के नीति ग्रथों में आचार्य चाणक्य द्वारा विरचित चाणक्य नीति का महत्वपूर्ण स्थान है। आचार्य चाणक्य ने भारतीय अर्थव्यवस्था, राजनैतिक व्यवस्था, शैक्षणिक व्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था को सुनियोजित बनाए रखने की एक उत्कृष्ट बौद्धिक परम्परा को जन्म दिया, जिसने अपने कूटनीतियों से शत्रुओं का दमन किया। साथ ही अपनी प्रतिभा से संस्कृत-साहित्य को अत्यंत महत्त्वपूर्ण बनाया। अत: प्रस्तुत इकाई के माध्यम से चाणक्य नीति विषयक गूणार्थ को हम जान सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप—

- चाणक्यानीति का परिचय जान सकेंगे।
- आचार्य चाणक्य के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के विषय में अवगत हो सकेंगे।
- चाणक्यानीति के प्रतिपाद्य विषय एवं अन्य ग्रन्थों के विषय में जानेंगे।

3.3 आचार्य चाणक्य का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

आचार्य चाणक्य का व्यक्तित्व— चाणक्य का जन्म लगभग चार सौ साल पूर्व भारत के तक्षशिला नामक स्थान में हुआ। चाणक्य के बचपन का नाम विष्णुगुप्त शर्मा था। कुटज गोत्र के होने के कारण ये कौटिल्य कहलाये। चणक के पुत्र होने के कारण चाणक्य कहलाये, अपने चातुर्य के कारण भी इन्हें चाणक्य कहा जाता है। ये विद्वान और नीतिमान् थे। भारतीय राजनीति में कूटनीतिज्ञ के रूप में चाणक्य का स्थान सर्वश्रेष्ठ व सर्वोपरि माना जाता है। चाणक्य ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा तक्षशिला में प्राप्त की, प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् ये उच्च शिक्षा अध्ययन के लिए पाटलिपुत्र आये। मगध के सिंहासन पर उस समय अत्यन्त लोभी व अत्याचारी राजा घनानन्द अधिष्ठित था। अनोखी प्रतिभा के धनी व महाविद्वान चाणक्य के सानिध्य में आकर घननन्द दानी हो गया। चाणक्य विद्वान तो थे किन्तु उनका रूप अच्छा नहीं था, ये कृष्ण वर्ण के थे।

एक बार राजा घनानन्द ने चाणक्य को दरबार में आमंत्रित किया। वहां राजा ने इनके रूप को लेकर इनका अपमान किया। चाणक्य को राजा की बातों पर अत्यधिक क्रोध आया, तब उन्होंने दरबार में अपनी चोटी खोल दी और राजा से बोले- दरबार में आज जो तुमने मेरा अपमान किया है मैं तुमसे उसका बदला अवश्य लूँगा। जब तक मैं किसी योग्य व्यक्ति को मगध के सिंहासन पर आरूढ़ नहीं करूँगा तब तक अपनी चोटी नहीं बाँधूगा। चाणक्य ने एक साधारण युवक चन्द्रगुप्त को विशाल मगध के साम्राज्य का अधिपति बनाया, इसीलिए इन्हें कूटनीति का सम्राट भी कहते हैं। इससे हमें ज्ञात होता है कि चाणक्य दृढ़ निश्चयी थे।

आचार्य चाणक्य का कृतित्व— आचार्य चाणक्य के लघु चाणक्य, वृद्ध चाणक्य, चाणक्य नीतिदर्पण, कौटलीय अर्थशास्त्र तथा चाणक्य सूत्र आदि अनेक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। चाणक्य के द्वारा लिखी पुस्तक अर्थशास्त्र में शासन सम्बन्धी जो सिद्धान्त हैं वे आज भी अद्वितीय हैं। चाणक्य के द्वारा लिखी हुई नीतियों को चाणक्य नीति के नाम से जाना जाता है प्रस्तुत इकाई में आप चाणक्य के कुछ नीति वचनों का अध्ययन करेंगे-

1- आचार्य चाणक्य ने अपने चाणक्य नीति में कहा कि यदि किसी राज्य में राजा नहीं है तो अच्छा है, किन्तु बुरे राजा अर्थात् अत्याचारी राजा का होना अच्छा नहीं है। यदि किसी का मित्र नहीं है तो अच्छा है, किन्तु कुमित्र अर्थात् बुरे मित्र का होना अच्छा नहीं है। यदि किसी का कोई शिष्य न हो तो अच्छा है, किन्तु निन्दित शिष्य का होना अच्छा नहीं है। पत्नी न हो तो अच्छा है, किन्तु पत्नी यदि दुःश्चरित्रा हो तो अच्छा नहीं है।

वरं न राज्यं न कुराजराज्यं
वरं न मित्रं न कुमित्रमित्रम्
वरं न शिष्यो न कुशिष्यशिष्या
वरं न दारा न कुदारदारा ।।

2- आचार्य चाणक्य ने मैत्री के सम्बन्ध में बताते हुए अपने नीति ग्रंथ में कहा है कि हमें कैसे मित्रता की कसौटी की पहचान करनी चाहिए-

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत् तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्।।

परोक्ष रूप में अर्थात् पीठ पीछे बुराई करके काम बिगाड़ने वाले और प्रत्यक्ष अर्थात् सामने मीठा बोलने वाले मित्र का तो अवश्य ही त्याग कर देना चाहिए। वह मित्र उस विष से भरे हुए घड़े के समान है जिसके अग्रभाग अर्थात् मुख के ऊपर थोडा़ दूध लगा रहता है।

3- आचार्य चाणक्य ने अपने नीति ग्रन्थों में बताया है कि एक पिता को अपने पुत्र के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए-

लालयेत् पंचवर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्।।

पुत्र को पाँच वर्ष तक प्यार करना चाहिए, जब वह दस वर्ष का हो जाय तो उस पर अनुशासन रखना चाहिए, जब वह सोलह वर्ष का हो जाय तो उसके साथ मित्रवत् अर्थात मित्र के समान व्यवहार करना चाहिए।

4- लौकिक सुख के विषय में बताते हुए चाणक्य कहते हैं कि-

यदि रामा यदि च रमा यदि तनयो विनयगुणोपेतः।
तनये तनयोत्पत्तिः सुरवरनगरे किमाधिक्यम्।।

जिस व्यक्ति के घर में सुन्दर स्त्री हो, लक्ष्मी भी हो अर्थात् धन-धान्य से सम्पन्न हो, पुत्र व पौत्र गुणों से युक्त हो, वह घर तो इस पृथ्वीलोक में इन्द्रलोक से भी अधिक सुन्दर है कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार इन्द्रलोक में सभी प्रकार के सुख वैभव हैं उसी प्रकार वह घर भी है।

5- चाणक्य ने मूर्ख व्यक्ति के विषय में बताते हुए उससे दूर रहने के विषय में कहा है-

मूर्खस्तु परिहर्तव्यः प्रत्यक्षो द्विपदः पशुः।
भिनत्ति वाक्यशल्येन निर्दृशाः कण्टका यथा।।

चाणक्य कहते हैं कि मूर्ख व्यक्ति से दूर रहना चाहिए, क्योंकि मूर्ख व्यक्ति दो पैरों वाले पशु के समान है। जिसमें प्रत्यक्ष रूप से काँटे तो दिखलायी नहीं पड़ते हैं , किन्तु वह बार-बार वाक्यशल्य से काँटे बोता रहता है। वास्तव में देखा जाय तो चाणक्य ने जिन नीतियों का प्रतिपादन किया वह कल्याण के मार्ग पर बढ़ने के लिए प्रेरित करती हैं। आचार्य चाणक्य ने अपनी नीतियों में जीवन के कटु सत्य को उजागर किया है। देखा जाय तो ऐसे नीतिकार बहुत कम होते हैं, आचार्य एक महान कूटनीतिज्ञ हैं, कूटनीतिज्ञों में उनका नाम सर्वोपरि है व सदैव रहेगा। कुरूप कहे जाने वाले आचार्य चाणक्य ने अपने अलौकिक तेज से व्याप्त व्यक्तित्व से विश्व को अनूठी नीतियां प्रदान की, जो विश्व में चाणक्य नीति के नाम से प्रसिद्ध हुई। देखा जाय तो आज के भौतिकवादी युग में जहाँ नैतिकता का पतन हो रहा है वहां महान आचार्य चाणक्य की नीतियां समाज के प्रत्येक मनुष्य को सही मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती हैं जिससे प्रत्येक वर्ग व सम्पूर्ण राष्ट्र का कल्याण होगा।

3.4 चाणक्य नीति का परिचय एवं प्रतिपाद्य

आचार्य चाणक्य द्वारा रचित चाणक्यनीति सत्रह (17) अध्यायों में विभक्त है। इन अध्यायों का संक्षिप्त वर्णन यहॉ किया जा रहा है।

1. प्रथम अध्याय— प्रथम अध्याय में 17 श्लोक हैं। आचार्य चाणक्य द्वारा संस्कृत वांग्मय की ग्रन्थ परम्परा का अनुसरण करते हुए मंगलाचरण उपरान्त ग्रन्थ का प्रयोजन बताया गया है। मंगलाचरण में भगवान विष्णु को प्रणाम किया गया है। उसके बाद शुभ एवं अशुभ कार्यों का बोध, उपदेश के लाभ, जन कल्याण के लिए राजनीति, पात्र विचार आदि का विवेचन किया गया है। मानव को परखने का समय जीवन के महत्वपूर्ण पांच तत्व तथा सत्य और असत्य में से एक का चयन ,विश्वसनीयता के लक्षण आदि विषयों का वर्णन किया गया है।

2. द्वितीय अध्याय— द्वितीय अध्याय में 20 श्लोक हैं। जिसमें महिलाओं के गुण दोष, पुण्य करने का फल, पृथ्वी पर ही स्वर्ग का चिंतन, सच्चे मित्र का लक्षण, मूर्खों के लिए आवश्यक क्रिया, दुखों के साधन, अध्ययन अध्यापन से लाभ, दुष्टों के साथ मित्रता से हानि इत्यादि विषयों का बहुत ही सुंदर वर्णन आचार्य ने इस अध्ययन में किया है।

3. तृतीय अध्याय— तृतीय अध्याय में 21 श्लोक हैं। इसमें दोष कहां नहीं होता, सब जगह है, व्याधि और व्यसन में कौन नहीं फसता है, किसकी मित्रता स्थिर रहती है, किसके द्वारा देश आदि की प्रसिद्धि होती है, कन्या, पुत्र, मित्र और शत्रु को कहां लगाना चाहिए अर्थात उनको कौन से कार्य में प्रवृत्त करना चाहिए, साधु और सागर की क्षमता और मित्रता , तपस्वी का स्वरूप, परिश्रम के समान दूसरा कोई विकल्प नहीं है, अति नहीं होनी चाहिए, सुयोग्य पुत्र का अलंकृत हो जाना पुत्र के प्रति पिता का व्यवहार आदि का वर्णन प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

4. चतुर्थ अध्याय—चतुर्थ अध्याय में 21 श्लोक हैं। जिसमें धर्म द्वारा ही सब कृत्य एवं आकृत्यों का वर्णन, पुत्रों के पालन में सज्जनों का दृष्टान्त,आत्महित के लिए मनन, मूर्ख पुत्र का ना होना, अग्नि के अभाव में भी छ: वस्तुएँ शरीर को जलाने वाली, विद्वान एवं भक्तिमान, संतान नहीं पैदा करने वाली, स्त्री का दूध न देने वाली और बछडें न देने वाली गाय में समानता, पॉच प्रकार के पिता और पॉच प्रकार के माता आदि का वर्णन प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

5. पंचम अध्याय—पंचम अध्याय में 21 श्लोक हैं। इस अध्याय में आचार्य चाणक्य ने सभी के लिए स्वर्ण तथा सज्जन पुरुषों के चार प्रकार से परीक्षण के प्रकार, भय की स्थिति में आचरण, पंडित, धनी और कुलस्त्री से द्वेष करने वाले, आलस्य से हानि, अभ्यास से लाभ, धन एवं विद्या से धर्म की रक्षा, काम, मोह आदि के समान शत्रु तथा ज्ञान के के समान मित्र नहीं, शास्त्रोक्त कर्म हीं स्वर्ग और नरक को ले जाने वालें, जिनके पास जो अत्यधिकता में विद्यमान है उसी वरस्तु को देना आदि का वर्णन इस अध्याय में किया गया है।

6. षष्ठ अध्याय—छठे अध्याय में 21 श्लोक हैं। धर्मशास्त्र सुनने मात्र से मोक्ष की प्राप्ति, पशु, पक्षी, मुनि, चांडाल का विवेचन, कांसा, तांबा, नारी और नदी में शुद्धता का प्रकार, राजा ब्राह्मण और योगी के भ्रमण से लाभ, कर्मफल का भोग, गुरु का पाप, माता-पिता स्त्री और पुत्र का शत्रुवर्णन, मुर्गा, कौवा और कुत्ते से शिक्षा प्राप्त करने वाला सर्वत्र विजयी होता है। राजा, मित्र, शिष्य, पानी का वास्तविक स्वरूप तथा उससे हानियां तथा जो मनुष्य पशु पक्षियों से शिक्षा ग्रहण करते हैं वे हमेशा ही विजयी होते हैं। इस प्रकार का वर्णन प्रस्तुत अध्याय में आचार्य चाणक्य ने किया है।

7. सप्तम अध्याय—सप्तम अध्याय इस अध्याय में 21 श्लोक हैं। जिसमें न प्रकाशित करने योग्य वस्तु, जहां लज्जा नहीं करनी चाहिए, संतोष की महत्ता, लाभ और हानि, किन के मध्य में गमन नहीं करना चाहिए, अग्नि गुरु, ब्राह्मण आदि को पाव से स्पर्श नहीं करना चाहिए, राजा, ब्राह्मण, स्त्री का बल, अति सरलता का अच्छा न होना, विद्या के बिना जीवन व्यर्थ, शुचिता के प्रकार शरीर में आत्मा की सत्ता इत्यादि विषयों का वर्णन इस अध्याय में किया गया।

8. अष्टम अध्याय—अष्टम अध्याय मैं 22 श्लोक हैं। जिसमें सज्जनों का धन, दूध, फल, औषध खाने के बाद भी दानादि धर्म का विधान, अन्न के समान संतान, स्नान के बिना चांडाल होना, भोजन में जल की महत्ता, भावना से मूर्ति पूजा का महत्व इस प्रकार का वर्णन प्रस्तुत अध्याय में आचार्य चाणक्य ने किया है।

9. नवम अध्याय—नवम अध्याय में 14 श्लोक हैं। जिसमें मुक्ति की इच्छा के विषयों का त्याग, धर्म की प्रधानता का विधान सूर्य चंद्रमा की गति जानने वाले को पंडित कहना, खुश और क्रोधित होने के लाभ का अभाव होना, स्वरूप को भयडकर बनाकर रखना, दिन यापन करने का साधन, महाभारत, रामायण एवं भगवत ,परिश्रम से प्राप्त वस्तु की उपयोगिता का वर्णन इस अध्याय में किया गया है।

10. दशम अध्याय—दशम अध्याय में 20 श्लोक हैं। इसमें विद्या की माहत्ता, आलस्य का त्याग कर विद्या प्राप्त करना, विधि का विधान सर्वश्रेष्ठ, प्रज्ञा की महत्ता, विप्रों का उद्देश्य वेदों की रक्षा, भाषाविद् होने से लाभ आदि विषयों का वर्णन दशम अध्याय में किया है।

11. एकादश अध्याय—एकादश अध्याय 18 श्लोक है। जिसमें मनुष्य के संभावित चार गुण, अपने धर्म ग्रहण से लाभ-हानि, तेज की महत्ता, कलयुग में विष्णु गंगा और ग्रामदेवता का निवास समय, विद्यार्थी को आठ वस्तुओं का त्याग, ब्राह्मण का लक्षण उसके कर्मों के अनुसार वैश्य, शूद्र, मिलेच्छत्व एवं चांडाल आदि को प्राप्त होने का विषय इस अध्याय में वर्णित है।

12. द्वादश अध्याय—बारहवें अध्याय में 22 श्लोक है। इसमें गृहस्त जीवन के सौभाग्,दान के लाभ, लोकव्यवहार में कुशलता, शरीर की विशेषता, सत्संगति का प्रभाव, आत्मीयता इत्यादि विषयों का वर्णन किया गया है।

13. त्रयोदश अध्याय—तेरहवें अध्याय में 19 श्लोक है। जिसमें जीवन में अच्छे कर्मों का फल, वर्तमान के विषय में विचार करना, सत्पुरूष और पिता को संतुष्टि देखना, महापुरुषों का लक्ष्मी के प्रति व्यवहार, राजा के अनुसार प्रजा का निर्माण धर्मादी पुरूषार्थ बिना जीवन निरर्थक, गुरु की महिमा आदि का वर्णन प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

14. चतुर्दश अध्याय—चतुर्दश अध्याय में 20 श्लोक है। इसमें पृथ्वी पर तीन रत्नों का वर्णन, पात्र के अनुसार वस्तु का फेलाव, धर्मस्थल, दुरावस्था का स्वभाव, बंधन से मुक्ति, प्रियवचन कहना, गुरु, राजा और अग्नि से व्यवहार करना, साधुओं की संगति का चयन आदि का वर्णन किया गया है।

15. पंचदश अध्याय—प्रस्तुत अध्याय 18 श्लोक है। जिसमें सभी प्राणियों के प्रति उचित दृष्टि, प्रयोजन के कारण ही लोक में संबंध होना, अन्याय से प्राप्त धन का अस्थयी होना, अतिथि सत्कार के बिना भोजन करने की स्थिति, प्रेम का बंधन, अनिर्वचनीय, शीलगुणों की विशेषता आदि का वर्णन प्रस्तुत अध्याय में किया गया है।

16. षोडश अध्याय—प्रस्तुत अध्याय में 19 श्लोक हैं। इसमें संसार में आकर मोक्ष, धर्म और गृहस्त नियम के अनुसार काम का उपभोग, स्त्री के विभिन्न रूप वर्णन,विनाश काल में विपरीत बुद्धि, आत्मप्रशंसा से विनास, प्रिय वाणी का प्रयोग आदि का वर्णन इस अध्याय में किया गया है।

17. सप्तदश अध्याय—प्रस्तुत अध्याय में 20 श्लोक हैं। जिसमें गुरु के पास पढ़ने का महत्व, प्रतिकार में कोई दोष नहीं, भाग्याधीन फल की प्राप्ति, माता के समान कोई नहीं , परोपकार समस्त विपत्ति की शांति, एक गुण मात्र सभी दोषों का उपचार इत्यादि बातों के विषयों का वर्णन इस अध्याय में किया गया है।

बोध प्रश्नः1-

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र ग्रंथ के लेखक है।

(क)महाकवि कालिदास

(ख)महाकवि भारवि

(ग) आचार्य चाणक्य

(घ) पंडित नारायण

2. पिता द्वारा आचार्य चाणक्य को किस नाम से पुकारा जाता था।

(क) चंद्रगुप्त

(ख) महेशगुप्त

(ग) कौटिल्य

(घ) विष्णुगुप्त

3. आचार्य चाणक्य किन के दरबार की शोभा थे।

(क) कनिष्क

(ख) चंद्रगुप्त

(ग) विक्रमादित्य

(घ) श्रीहर्ष

4. अर्थशास्त्र कितने प्रकरणों में विभक्त है।

(क) 140

(ख) 150

(ग) 160

(घ) 180

5. चाणक्य नीति में कितने अध्याय हैं।

(क) 20

(ख) 19

(ग) 17

(घ) 18

6. चाणक्य नीति के मंगलाचरण में किस देवता का स्मरण किया गया है।

(क) ब्रह्मा

(ख) विष्णु

(ग) महेश

(घ) गणेश

7. चाणक्य नीति के पंचम अध्याय में कितने श्लोक हैं।

(क) 21

(ख) 20

(ग) 19

(घ) 17

8. चाणक्य नीति के प्रथम अध्याय में कितने श्लोक हैं।

(क) 17

(ख) 11

(ग) 18

(घ) 20

9. चाणक्य नीति के चतुर्थ अध्याय में कितने श्लोक हैं।

(क) 21

(ख)20

(ग) 24

(घ) 26

10. चाणक्य नीति के दशम अध्याय में कितने श्लोक हैं।

(क)20

(ख)23

(ग) 21

(घ) 22

3.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपने जाना कि चाणक्य नीति का नीति ग्रन्थों में क्या स्थान है। इसके रचयिता आचार्य चाणक्य है। आचार्य चाणक्य का व्यक्तित्व, कृतित्व, चाणक्य नीति के अध्याय का संक्षिप्त परिचय और लेखन के काल के विषय में इस इकाई में बताया गया है। दैनिक व्यवहार विधि को सम्यक रूप से इस ग्रन्थ में प्रतिपादित किसा गया है। अत: इस इकाई का अवलोकन कर आप चाणक्य नीति के साहित्यिक, सामाजिक तथा अन्य वैशिष्ट्य को बता सकेंगे।

3.6 शब्दावली

उद्भावक	-	उत्पन्न करने वाला
परोक्ष	-	पीठ पीछे
दीर्घदर्शी	-	दूर तक दृष्टि रखने वाला
हितकारी	-	हित करने वाले
प्रेरणादायक	-	प्रेरणा देने वाला
सर्वजनहिताय	-	सभी लोगों के हित में
नीतिशास्त्रज्ञ	-	नीति शास्त्र में निपुण
प्रतिपाद्य	–	विषय वस्तु

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न:1-

1.ग 2.घ 3.ख 4.घ 5.ग 6.ख 7.क 8.क 9.क 10.क

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.संस्कृत साहित्य का इतिहास – बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक- शारदा निकेतन, कस्तुरवानगर, वाराणसी।

2.संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ0 उमाशंकर शर्मा 'ऋषि' चौखम्बाभारतीअकादमी, वाराणसी।

3. संस्कृत वाङ्मय का बृहद इतिहास – जगन्नाथ पाठक सप्तम खण्ड।

4. अमरकोश – अमर सिंह

5 . संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ वाचस्पति गैरोला – चौखम्भासुरभारती प्रकाशन, वाराणसी

3.9 अन्य उपयोगी ग्रन्थ

1. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास – सप्तम खण्ड, जगन्नाथ पाठक

2. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास – डॉ वाचस्पति गैरोला – चौखम्भा प्रकाशन
4. चाणक्य नीति- आचार्य चाणक्य

3.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. आचार्य चाणक्य के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय दीजिए।
2. चाणक्य नीति का परिचय अपने शब्दों में लिखें।